अप्रैल - जून, 2012 [संयुक्तांक]

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
अनूप कुमार वार्ष्णेय

संपादक
जुगल किशोर

महत्वपूर्ण निर्णय

संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (1882 का 4)– धारा 5 – पारिवारिक समझौता – पारिवारिक समझौता संपत्ति अंतरण नहीं होता – उच्च न्यायालय द्वितीय अपील में प्रथम अपील न्यायालय द्वारा निकाले गए तथ्य संबंधी निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता – प्रथम अपीली न्यायालय द्वारा सुसंगत साक्ष्य के आधार पर निकाले गए तथ्य संबंधी निष्कर्ष मान्य ठहराते हुए उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त किया गया ।

गणेशी (मृतक) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से और अन्य बनाम **अशोक और एक अन्य** 179

संसद् के अधिनियम

किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 का हिंदी में प्राधिकृत पाठ (26) – (47)

पृष्ठ संख्या 1 – 184 **[2012] 2 उम. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका – अप्रैल - जून, 2012 [संयुक्तांक] [पृष्ठ संख्या 1 – 184]

संपादक-मंडल

श्री विनोद कुमार भसीन,
सचिव, विधायी विभाग

डा. संजय सिंह,
अपर सचिव (प्रशा.), विधायी विभाग

श्री आर. डी. मीना, संयुक्त सचिव,
राजभाषा खंड

डा. बी. एन. मणि, अधिवक्ता,
(पूर्व संपादक) वि.सा.प्र.

डा. प्रीती सक्सेना, प्रोफेसर,
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ

डा. वैभव गोयल, संकायाध्यक्ष
विधि संकाय, स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ

श्री सुरेन्द्र शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, गुरू गोविद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय, दिल्ली

डा. आर. पी. सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव,
राजभाषा खंड

श्री लालजी प्रसाद,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक,
वि.सा.प्र.

श्री के. जी. अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय,
प्रधान संपादक

श्री महमूद अली खां,
संपादक

श्री जुगल किशोर,
संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पाण्डेय,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री विनोद कुमार आर्य, कमला कान्त, अविनाश शुक्ल और असलम खान

उप-संपादक : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, एम. पी. सिंह, जसवन्त सिंह और बी. के. भटनागर

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 57

वार्षिक : ₹ 225

© 2012 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

अप्रैल - जून, 2012

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक, कोल इंडिया लिमिटेड **बनाम** अनंत साहा	1
उत्तर प्रदेश आवास एवं विकास परिषद् लखनऊ **बनाम** शिव नरायण कुशवाहा	30
गणेशी (मृतक) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से और अन्य **बनाम** अशोक और एक अन्य	179
जोगा सिंह **बनाम** हरियाणा राज्य (देखिए - पृष्ठ संख्या 81)	
निशाबर सिंह और एक अन्य **बनाम** हरियाणा राज्य (देखिए - पृष्ठ संख्या 81)	
नूरूल हुदा मकबूल अहमद **बनाम** राम देव त्यागी	50
भजन सिंह **उर्फ** हरभजन सिंह और अन्य **बनाम** हरियाणा राज्य	81
मृत्युंजय सेत्त (मृतक) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से **बनाम** जादूनाथ बसाक (मृतक) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से	40
राम जेठमलानी और अन्य **बनाम** भारत संघ	108
सचिव, ए. पी. डी. जैन पाठशाला और अन्य **बनाम** शिवाजी भागवत मोरे और अन्य	158

संसद् के अधिनियम

किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 का हिंदी में प्राधिकृत पाठ	(26) – (47)

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)

– धारा 154 – प्रथम इत्तिला सूचना – प्रथम इत्तिला सूचना दर्ज कराए जाने में कोई विलंब न होने पर अभियोजन पक्षकथन प्रबल होता है ।

भजन सिंह उर्फ **हरभजन सिंह और अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य** 81

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 302/34, 143, 144, 145, 147, 149, 307/34 और 120-ख [सपठित आयुध अधिनियम, 1959 – धारा 325 और 327] – उपद्रवियों द्वारा पवन (सुलेमान बेकरी) के भीतर से पुलिस पर गोली-बारी करना तथा बम इत्यादि फेंकना – पुलिस अधिकारियों पर गोली-बारी करने का आरोप लगाया जाना, जबकि कुछ आरोपित पुलिस अधिकारियों द्वारा एक भी गोली नहीं चलाई गई – अभियुक्त पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध निर्दोष व्यक्तियों की हत्या करने का सामान्य उद्देश्य और आशय साबित न होने पर उनके उन्मोचन के विचारण न्यायालय का आदेश मान्य ठहराया गया ।

नूरूल हुदा मकबूल अहमद बनाम **राम देव त्यागी** 50

– धारा 302, 307 और 149 – हत्या – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में विलंब न होना – प्रत्यक्षदर्शी साक्षी, चिकित्सीय साक्ष्य से अपीलार्थी अभियुक्तों की दोषिता संदेह के परे साबित होने पर निचले न्यायालय द्वारा की गई उनकी दोषसिद्धि में हस्तक्षेप न करते हुए अपील खारिज की गई तथा दोषसिद्धि मान्य ठहराई गई ।

भजन सिंह उर्फ **हरभजन सिंह और अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य** 81

पृष्ठ संख्या

पश्चिमी बंगाल परिसर किराया अधिनियम, 1956 (1956 का 12)

– धारा 13(6) [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – धारा 100] – द्वितीय अपील – किराया नियंत्रण और बेदखली – बेदखली डिक्री/आदेश – धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील में हस्तक्षेप किया जाना आवश्यक नहीं है जब विधि का कोई सारभूत प्रश्न उद्भूत न हुआ हो या प्रथम अपीली न्यायालय के निर्णय में कोई अनुचितता न हो – उच्च न्यायालय का निर्णय अपास्त करते हुए निचले न्यायालय का निर्णय बहाल किया गया ।

मृत्युंजय सेत्त (मृतक) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से बनाम **जादूनाथ बसाक (मृतक) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से** 40

संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (1882 का 4)

– धारा 5 – पारिवारिक समझौता – पारिवारिक समझौता संपत्ति अंतरण नहीं होता – उच्च न्यायालय द्वितीय अपील में प्रथम अपील न्यायालय द्वारा निकाले गए तथ्य संबंधी निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता – प्रथम अपीली न्यायालय द्वारा सुसंगत साक्ष्य के आधार पर निकाले गए तथ्य संबंधी निष्कर्ष मान्य ठहराते हुए उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त किया गया ।

गणेशी (मृतक) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से और अन्य बनाम **अशोक और एक अन्य** 179

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 32(2) – विशेष अन्वेषण टीम का गठन – कई अधिकारिताओं तथा कई विभागों और अभिकरणों के बीच विशेषज्ञता और जानकारी तथा सरकार के कई अंगों के बीच समन्वय बनाने की असफलता उचित अन्वेषण

पृष्ठ संख्या

की एक गंभीर अड़चन है इसलिए विधि के नियम और संवैधानिक मूल्यों की अभिप्राप्ति के लिए विदेशी बैंकों में पड़े बेहिसाब धन का पता लगाने, विधिविरुद्ध क्रियाकलापों से जुड़े लोगों को दंडित करने और देश के धन को वापस लाने के लिए विशेष अन्वेषण टीम का गठन किया जाना न्यायसंगत और उचित है ।

राम जेठमलानी और अन्य बनाम **भारत संघ** 108

– अनुच्छेद 32(2) और अनुच्छेद 21 [सपठित वियना कन्वेंशन आफ दि ला आफ ट्रीटीज, 1969 – अनुच्छेद 31] – दस्तावेजों का प्रकटन – एकान्तता का अधिकार – अभियुक्त के विरुद्ध सदोष कार्य करने का प्रथमदृष्ट्या आधार स्थापित हुए बिना बेहिसाब धन से संबंधित व्यक्तियों के बैंक खातों के ब्यौरों का उद्घाटन व्यक्ति के एकान्तता के मूल अधिकार का अतिक्रमण होगा, अतः अनुच्छेद 32(1) के अधीन कार्यवाहियों के संदर्भ में भी दस्तावेजों का प्रकटन अनुचित होगा ।

राम जेठमलानी और अन्य बनाम **भारत संघ** 108

– अनुच्छेद 162, 226, 233, 234, 247, 323क और 323ख [सपठित महाराष्ट्र एम्पलाइज़ ऑफ प्राइवेट स्कूल्स (कंडीशन्स ऑफ सर्विस) रेग्यूलेशन ऐक्ट, 1977 की धारा 9 तथा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 9] – सिविल न्यायालय की अधिकारिता – महाराष्ट्र राज्य में शिक्षण सेवक स्कीम, 2000 – शिक्षण सेवकों की शिकायतों पर विचार करने के लिए, शिकायत निवारण समिति – चूंकि शिकायत निवारण समिति न तो न्यायिककल्प पीठ हो सकती है और न ही उसके विनिश्चय शिक्षण सेवकों से संबंधित विवादों के पक्षकारों के लिए अंतिम और आबद्धकर हो सकते हैं और शिकायत निवारण समिति राज्य सरकार को अग्रिम कार्रवाई करने के लिए केवल सिफारिश कर सकती है इसलिए उच्च न्यायालय का यह निदेश त्रुटिपूर्ण है कि शिकायत निवारण समिति द्वारा

पृष्ठ संख्या

किसी सेवा-समाप्ति को दूषित ठहराए जाने पर वह शिक्षण सेवक संबंधित प्रबंधतंत्र की सेवा में बना हुआ समझा जाएगा ।

सचिव, ए. पी. डी. जैन पाठशाला और अन्य बनाम **शिवाजी भागवत मोरे और अन्य** 158

– अनुच्छेद 162, 226, 233, 234, 247, 323क और 323ख [सपठित महाराष्ट्र एम्पलाइज़ ऑफ प्राइवेट स्कूल्स (कंडीशन्स ऑफ सर्विस) रेग्यूलेशन ऐक्ट, 1977 की धारा 9 तथा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 9] – महाराष्ट्र में शिक्षण सेवक स्कीम, 2000 के लिए शिकायत निवारण समिति का गठन – उच्च न्यायालय द्वारा यह निदेश देना कि शिकायत निवारण समिति में सेवानिवृत्त जिला न्यायाधीश को अध्यक्ष बनाया जाए और शिक्षण सेवकों की शिकायतों के लिए यही एकमात्र न्यायनिर्णयन प्राधिकारी होगा और कोई भी सिविल न्यायालय ऐसे विवादों की बाबत, जिन पर समिति द्वारा कार्यवाही की जानी अपेक्षित है, कोई वाद या आवेदन ग्रहण नहीं करेगा – न तो संविधान और न ही कोई अन्य कानून उच्च न्यायालय को विवादों का न्यायनिर्णयन करने के लिए न्यायिककल्प अधिकरणों का सृजन या गठन करने की शक्ति देता है और उच्च न्यायालय न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग करते हुए यह निदेश जारी नहीं कर सकता कि सिविल न्यायालय किसी विशिष्ट प्रकार के विवादों के संबंध में कोई वाद या आवेदन ग्रहण नहीं करेंगे ।

सचिव, ए. पी. डी. जैन पाठशाला और अन्य बनाम **शिवाजी भागवत मोरे और अन्य** 158

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1)

– धारा 114 III (च)16 [सपठित साधारण खंड अधिनियम, 1877 – धारा 27 और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 आदेश 5, नियम 10] – उपधारा की सामान्य प्रक्रिया

पृष्ठ संख्या

का पालन किया गया है – यदि कारण बताओ सूचना रजिस्ट्रीकृत डाक से भेजी जाती है तब यह उपधारणा की जाएगी कि सूचना भेजे गए व्यक्ति को वह प्राप्त हो गई है ।

अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक, कोल इंडिया लिमिटेड
बनाम **अनंत साहा** 1

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– धारा 96 और आदेश 41, नियम 11(1) और (4) – प्रारंभिक प्रक्रम पर अपील खारिज करते समय कारण अभिलिखित करने से आदेश 41, नियम 11(4) के अधीन उच्च न्यायालय को अपवाद की सीमा – उच्च न्यायालय सुनवाई के प्रारंभिक प्रक्रम पर प्रथम अपील खारिज कर सकता है, किंतु ऐसी खारिजी कारणों सहित होनी चाहिए – उच्च न्यायालय ने निर्देश न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत प्रतिकर मान्य ठहराते हुए उसके विरुद्ध फाइल अपील कारण सहित आदेश पारित न करने में त्रुटि कारित की – मामला नए सिरे से विनिश्चय किए जाने के लिए वापस भेजा गया ।

उत्तर प्रदेश आवास एवं विकास परिषद् लखनऊ
बनाम **शिव नरायण कुशवाहा** 30

सेवा विधि

– विभागीय जांच – नए सिरे से जांच – नए आरोप पत्र की आवश्यकता – न्यायालय द्वारा पूर्वतर कार्यवाहियां अभिखंडित किया जाना तथा नए सिरे से जांच किए जाने का संदेश देना – नए सिरे से जांच के लिए नया आरोप पत्र आज्ञापक है – जब पूर्वतर कार्यवाहियां अभिखंडित की गई हों तब अभिखंडित कार्यवाहियों में आरोप पत्र भी अभिखंडित हो जाता है ।

अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक, कोल इंडिया लिमिटेड
बनाम **अनंत साहा** 1

पृष्ठ संख्या

– विभागीय जांच – नए सिरे से जांच – अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा सकारण आदेश न किया जाना – अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक द्वारा मात्र विशेष ड्यूटी अधिकारी द्वारा तैयार किए गए जांच करने के टिप्पण/ प्रस्ताव पर अपने हस्ताक्षर करना – उच्च न्यायालय द्वारा पूर्वतर जांच को अभिखंडित किया जाना तथा अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक का अनुशासनिक कार्यवाहियां पुनः प्रारंभ किए जाने का आदेश अपास्त किया गया क्योंकि नए सिरे से आरोप पत्र तैयार और तामील नहीं किया गया था और संपूर्ण कार्यवाहियां दूषित अभिनिर्धारित की गईं – अपीलार्थियों को छह माह के भीतर अपचारी प्रत्यर्थी के विरुद्ध विधिमान्य आरोप पत्र जारी करते हुए नए सिरे से विभागीय कार्यवाहियां पूरा करने का निदेश दिया गया ।

अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक, कोल इंडिया लिमिटेड
बनाम **अनंत साहा** 1

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 16288/68

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमश: चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ और जून, 2010 के अंक से विधि शब्दावली से उद्धृत अंग्रेजी-हिन्दी पारिभाषिक शब्दार्थ और उनके भिन्न-भिन्न संदर्भों में पर्यायों को भी पाठकों की सुविधा के लिए श्रृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटौरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वाशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

तुलनात्मक सारणी

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

[2012] 2 उम. नि. प.

अप्रैल -जून, 2012

क्र. सं.	निर्णय का नाम व तारीख	उम. नि. प.		ए. आई. आर. (एस. सी.)		एस. सी. सी.	
1	2	3		4		5	
1.	अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक कोल इंडिया लिमिटेड **बनाम** अनंत साहा (6 अप्रैल, 2011)	[2012] 2	1	2011	-	(2011) 5	142
2.	उत्तर प्रदेश आवास एवं विकास परिषद् लखनऊ **बनाम** शिव नरायण कुशवाहा (25 अप्रैल, 2011)		30		-	6	456
3.	मृत्युंजय सेत्त (मृतक) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से **बनाम** जादूनाथ बसाक (मृतक) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से (26 अप्रैल, 2011)		40		2496	11	402
4.	नूरूल हुदा मकबूल अहमद बनाम राम देव त्यागी (4 जुलाई, 2011)		50		-	7	95
5.	भजन सिंह **उर्फ** हरभजन सिंह और अन्य **बनाम** हरियाणा राज्य (4 जुलाई, 2011)		81		2552	7	421

1	2	3			4	5	
6.	राम जेठमलानी और अन्य **बनाम** भारत संघ (4 जुलाई, 2011)	[2012] 2	108	2011	-	(2011) 8	1
7.	सचिव, ए. पी. डी. जैन पाठशाला और अन्य **बनाम** शिवाजी भागवत मोरे और अन्य (4 जुलाई, 2011)		158		-	13	99
8.	गणेशी (मृतक) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से और अन्य **बनाम** अशोक और एक अन्य (4 अक्तूबर, 2011)		179		-	-	-

[2012] 2 उम. नि. प. 1

अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक, कोल इंडिया लिमिटेड

बनाम

अनंत साहा

6 अप्रैल, 2011

न्यायमूर्ति पी. सदाशिवम् और न्यायमूर्ति (डा.) बी. एस. चौहान

सेवा विधि – विभागीय जांच – नए सिरे से जांच – नए आरोप पत्र की आवश्यकता – न्यायालय द्वारा पूर्वतर कार्यवाहियां अभिखंडित किया जाना तथा नए सिरे से जांच किए जाने का संदेश देना – नए सिरे से जांच के लिए नया आरोप पत्र आज्ञापक है – जब पूर्वतर कार्यवाहियां अभिखंडित की गई हों तब अभिखंडित कार्यवाहियों में आरोप पत्र भी अभिखंडित हो जाता है ।

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 114 III(च)16 [सपठित साधारण खंड अधिनियम, 1877 – धारा 27 और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 आदेश 5, नियम 10] – उपधारा की सामान्य प्रक्रिया का पालन किया गया है – यदि कारण बताओ सूचना रजिस्ट्रीकृत डाक से भेजी जाती है तब यह उपधारणा की जाएगी कि सूचना भेजे गए व्यक्ति को वह प्राप्त हो गई है ।

सेवा विधि – विभागीय जांच – नए सिरे से जांच – अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा सकारण आदेश न किया जाना – अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक द्वारा मात्र विशेष ड्यूटी अधिकारी द्वारा तैयार किए गए जांच करने के टिप्पण/प्रस्ताव पर अपने हस्ताक्षर करना – उच्च न्यायालय द्वारा पूर्वतर जांच को अभिखंडित किया जाना तथा अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक का अनुशासनिक कार्यवाहियां पुनः प्रारंभ किए जाने का आदेश अपास्त किया गया क्योंकि नए सिरे से आरोप पत्र तैयार और तामील नहीं किया गया था और संपूर्ण कार्यवाहियां दूषित अभिनिर्धारित की गईं – अपीलार्थियों को छह माह के भीतर अपचारी प्रत्यर्थी के विरुद्ध विधिमान्य

आरोप पत्र जारी करते हुए नए सिरे से विभागीय कार्यवाहियां पूरा करने का निदेश दिया गया ।

प्रस्तुत मामले में, अपील कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा 2007 के एम. ए. टी. सं. 2852 में पारित किए गए तारीख 22 जुलाई, 2008 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस न्यायालय ने संविधान, 1950 के अनुच्छेद 311(1) के उपबंधों का निर्वचन करते हुए सुसंगत रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि उक्त उपबंधों की अपेक्षा के अनुसार, राज्य में सिविल पद पर कार्यरत व्यक्ति को जिस प्राधिकारी द्वारा नियुक्त किया गया है उस प्राधिकारी के अधीनस्थ किसी भी प्राधिकारी द्वारा सेवा से पदच्युत या हटाया नहीं जा सकता । "तथापि, उक्त अनुच्छेद के अधीन यह अपेक्षा नहीं की गई है कि किसी अधिकारी को पदच्युत करने या हटाने से संबंधित उपबंध के अधीन सशक्त प्राधिकारी को स्वयं जांच कार्यवाही आरंभ करनी या चलानी चाहिए" । इसी प्रकार, हमारा यह निष्कर्ष है कि अपचारी की इस दलील में कोई बल नहीं है कि उसने अनुशासनिक कार्यवाही में भाग नहीं लिया है और चूंकि द्वितीय कारण बताओ नोटिस, के साथ जांच रिपोर्ट प्राप्त किए जाने पर उसने क्योंकि वे विधि के अनुसरण में तामील नहीं कराए गए हैं, कोई टिप्पणी नहीं की थी । अपचारी को, द्वितीय कारण बताओ नोटिस और जांच रिपोर्ट की प्रति रजिस्ट्रीकृत डाक से भेजी गई थीं । अतः, विधि में विशेषकर साधारण खंड अधिनियम, 1897 की धारा 27 और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 114 दृष्टांत (च) के अधीन यह अवधारणा है कि प्रेषिती ने डाक द्वारा भेजी गई सामग्री प्राप्त कर ली है । कानूनी नियमों के अधीन स्पष्ट रूप से यह अनुबंध किया गया है कि जांच सीआईएल के सीएमडी द्वारा या अनुषंगी कंपनी के सीएमडी द्वारा आरंभ की जा सकती है । मुकदमेबाजी के प्रथम चरण में उच्च न्यायालय के एकल विद्वान् न्यायाधीश ने आक्षेपित निर्णय को अभिखंडित करने के पश्चात्, तारीख 2 फरवरी, 2001 के निर्णय और आदेश द्वारा अपीलार्थियों को यह स्वतंत्रता प्रदान की कि वे अपचारी को समुचित अवसर देते हुए नए सिरे से कार्यवाहियां चला सकें । खंड न्यायपीठ ने तारीख 8 अगस्त, 2008 के निर्णय और आदेश द्वारा वर्तमान अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई अपील खारिज की । अतः, यह प्रश्न उठेगा ही कि नए सिरे से जांच किए जाने का क्या अर्थ है । सुस्थापित विधिक स्थिति पर कोई भी विवाद नहीं है कि

अनुशासनिक कार्यवाहियां केवल तब आरंभ होती हैं जब अपचारी कर्मचारी के विरुद्ध आरोप पत्र जारी किया जाता है । (पैरा 20, 22, 24 और 25)

उच्च न्यायालय ने नए सिरे से जांच करने के लिए अपीलार्थियों को स्वतंत्रता दी है जिसका यह अर्थ हुआ कि पूर्ववर्ती आरोप पत्र जारी किए जाने सहित संपूर्ण पूर्ववर्ती कार्यवाहियां अभिखंडित हो जाती हैं । ऐसी तथ्यात्मक स्थिति में अपीलार्थियों के लिए पूर्व में जारी किए गए आरोप पत्र के आधार पर कार्यवाही करना अनुज्ञेय नहीं है । इस बात को दृष्टिगत करते हुए, नए आरोप पत्र के दिए बिना नई जांच आरंभ किए जाने का प्रश्न नहीं उठ सकता । आदेश से प्रकट होता है कि विशेष कार्य अधिकारी ने जो टिप्पण तैयार किया था उस पर मात्र ईसीएल के सीएमडी द्वारा हस्ताक्षर किए गए हैं । प्रस्ताव पर ईसीएल के सीएमडी द्वारा नित्य कार्य के रूप में हस्ताक्षर किए गए हैं और अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे यह दर्शित होता हो कि उन्होंने सोच-विचार के पश्चात् अपने हस्ताक्षर किए हैं । अतः, विधि की कड़ी दृष्टि से यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि कार्यवाहियां समुचित रूप से प्रवर्तित की गई हैं यहां तक कि आरोप पत्र जारी किए जाने के पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर भी प्रवर्तित नहीं की गई हैं । विधि के अधीन यह अपेक्षा की जाती है कि अनुशासनिक प्राधिकारी को, अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री पर विचार करते हुए कोई सकारात्मक आदेश पारित करना चाहिए । इस न्यायालय ने अनेक बार यह अभिनिर्धारित किया है कि अपचारी कर्मचारी को कदाचार का दोषी ठहराने के पश्चात् उसके विरुद्ध सेवा से पदच्युत करने का आदेश प्रशासनिक आदेश हो सकता है, फिर भी कानूनी नियमों के अधीन ऐसे लोकसेवक के विरुद्ध यह विनिश्चित करने के लिए चलाई गई कार्यवाहियां अर्द्धन्यायिक प्रकृति की होती हैं कि वह उसके विरुद्ध विरचित आरोपों का दोषी है या नहीं । प्राधिकारी को जांच आरंभ करने के लिए और उसके आधार पर निष्कर्ष निकालने के लिए कुछ कारण देने चाहिए जो अत्यंत संक्षेप में हो सकते हैं । विधि की सुस्थापित प्रतिपादना है कि यदि आरंभिक कार्यवाही विधि के अनुसरण में नहीं है, तब पश्चात्वर्ती कार्यवाहियां, आरंभिक कार्यवाही को शुद्ध नहीं कर सकती । ऐसी तथ्यात्मक स्थिति में, "सबलेटो फंडामेंटो केडिट ऑपस" वाला विधिक सूत्र लागू होगा जिसका यह अर्थ है कि बिना नींव ढांचा ढह जाता है । (पैरा 26, 28, 29 और 30)

जैसाकि वर्तमान मामले में देखा गया है कि, मुकदमेबाजी के प्रथम चरण के पश्चात् अनुशासनिक कार्यवाहियों का कोई भी उचित प्रारंभ नहीं

किया गया है, इसलिए अन्य सभी पारिणामिक कार्यवाहियां दूषित हो जाती हैं और उस आधार पर उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और आदेश में कोई भी खामी नहीं हो सकती है । न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि उच्च न्यायालय तथ्य का यह निष्कर्ष अभिलिखित करने में न्यायोचित था कि अनुशासनिक कार्यवाहियां केवल अपचारी को दंडित करने के पूर्वचिंतन के साथ उसके विरुद्ध आरंभ की गई हैं । इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि जांच अधिकारियों ने सुसंगत रूप से यह निष्कर्ष निकाला है कि अपचारी गंभीर कदाचार कारित करने का दोषी है, ऐसा मत अभिव्यक्त करना पूर्णतया अविवक्षित है विशेषकर इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री नहीं है जो अपचारी द्वारा किए गए ऐसे प्रकथन को साबित कर सके । अतः, पूर्वचिंतन का निष्कर्ष अर्थात् अपचारी को दंडित करने के लिए पक्षपाती होना, यह अभिनिर्धारित करते हुए अपास्त किया जाता है कि किसी भी साक्ष्य पर आधारित न होने के कारण यह पूर्णतया अनुचित है । (पैरा 32, 40 और 42)

मामले के तथ्य और परिस्थितियों में, अपील इसमें इसके ऊपर स्पष्ट की गई सीमा तक मंजूर की जाती है । दुर्भावना के संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष अवांछनीय हैं और अपास्त किया जाता है । अतः, यह निष्कर्ष भी कायम रखे जाने योग्य नहीं है कि ईसीएल के सीएमडी विधि की दृष्टि से कार्यवाही आरंभ करने के लिए सक्षम नहीं हैं और इस प्रकार यह निष्कर्ष अपास्त किया जाता है । अपीलार्थी नए सिरे से अनुशासनिक कार्यवाही आरंभ करने अर्थात् नियम, 1978 के अनुसार सक्षम प्राधिकारी द्वारा नए सिरे से आरोप पत्र जारी करने के लिए स्वतंत्र हैं और वे आज से छह मास की अवधि के भीतर सभी परिस्थितियों में कार्यवाहियां पूर्ण करने के लिए स्वतंत्र हैं । यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि अपचारी जांच में भाग नहीं लेता है या सहयोग नहीं करता है तब जांच अधिकारी इस संबंध में कारण अभिलिखित करते हुए एकपक्षीय कार्यवाही कर सकता है । अंत में, अपचारी ने यह दलील दी है कि इस न्यायालय को उसे यथापूर्व करने और आज तक के बकाया का संदाय करने के लिए निदेश जारी करने चाहिए । अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री बंदोपाध्याय ने दृढ़तापूर्वक यह प्रतिवाद करते हुए अपचारी द्वारा ईप्सित अनुतोष का विरोध किया है कि अपचारी को "कार्य नहीं तो पैसा नहीं" के सिद्धांत के आधार पर पिछली मजदूरी से वंचित

किया जाना चाहिए । अपचारी व्यक्तिगत रूप से व्यवसाय कर रहा है अर्थात् सुनियोजित है, इस प्रकार वह पिछली मजदूरी के लिए हकदार नहीं है । यदि यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर भी पहुंचता है कि उच्च न्यायालय ने दंडादेश अपास्त करके न्यायोचित किया है और अब नए सिरे से जांच की जानी चाहिए, तब भी अपचारी को यथापूर्व तो किया ही जा सकता है और उसे निलंबनाधीन रखा जा सकता है और वह उसके मामले को लागू होने वाले सेवा नियमों के अनुसार विद्यमान भत्तों का हकदार होगा । पिछली मजदूरी का प्रश्न अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा विधि के अनुसरण में नए सिरे से जांच किए जाने पर ही विनिश्चित किया जाएगा । यह विधि की सुस्थापित प्रतिपादना है कि ऐसे मामलों में नए सिरे से जांच किए जाने का परिणाम पदच्युति की तारीख से संबंधित होता है । नए सिरे से जांच करने के प्रयोजन हेतु, अपचारी को यथापूर्व किया जाना चाहिए और उसे निलंबनाधीन रखा जा सकता है । पिछली मजदूरी आदि का प्रश्न नए सिरे से जांच पूर्ण किए जाने के पश्चात् विधि के अनुसरण में अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा तय किया जाना चाहिए । (पैरा 43, 44 और 46)

पिछली मजदूरी के हक से संबंधित मुद्दे पर कई बार इस न्यायालय द्वारा विचार किया गया है और सुसंगत रूप से यह अभिनिर्धारित किया गया है कि कर्मचारी पर अधिरोपित दंड न्यायालय या अधिकरण द्वारा अभिखंडित किए जाने के पश्चात् भी पिछली मजदूरी का संदाय विवेकी बना रहता है । पिछली मजदूरी प्रदत्त करने की शक्ति का प्रयोग न्यायालय/अधिकरण द्वारा मामले के संपूर्ण तथ्यों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए क्योंकि इस संबंध में कोई भी सीधा सूत्र सृजित नहीं किया जा सकता है न ही ऐसे मामलों को सार्वत्रिक नियम लागू होगा । यदि अपचारी को यथापूर्व कर दिया जाए, तब भी वह स्वतः ही पिछली मजदूरी को पाने का हकदार नहीं होगा क्योंकि पिछली मजदूरी पाने का हक यथापूर्व किए जाने से स्वतंत्र है । समुचित प्राधिकारी/न्यायालय या अधिकरण द्वारा तथ्यात्मक पृष्ठभूमि और न्याय के सिद्धांतों और साम्या और शुद्ध अंतःकरण ध्यान में रखे जाने चाहिए । ऐसे मामलों में, न्यायालय या अधिकरण का दृष्टिकोण दृढ़ या यंत्रवत नहीं होना चाहिए अपितु लचीला और वास्तविक होना चाहिए । अपचारी द्वारा ईप्सित इस अनुतोष पर, कि अपीलार्थियों को यह निदेश दिया जाए कि वे आज की तारीख तक प्रथम पदच्युति आदेश की तारीख से पिछली मजदूरी के बकाया का संदाय करें, विचार नहीं किया जा सकता है और खारिज किया जाता है । यदि अपीलार्थी नए सिरे से जांच करना चाहते हैं, तब वे अपचारी को यथापूर्व करने के लिए बाध्य हैं और यदि, अपचारी को निलंबित किया जाता

है, तब वह जांच पूरी होने तक की अवधि के लिए आवश्यक भत्ते पाने का हकदार होगा । जांच पूर्ण होने के पश्चात्, अन्य सभी हकदारियां अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा विनिश्चित की जाएंगी, जैसा कि इसमें इसके ऊपर स्पष्ट किया गया है । इन मताभिव्यक्तियों के साथ अपील का निपटारा किया जाता है । (पैरा 47 और 48)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2011]	(2011) 2 एस. सी. सी. 575 : **ट्रांसपोर्ट एंड डॉक वर्कर्स यूनियन और अन्य** बनाम **मुम्बई पोर्ट ट्रस्ट और एक अन्य** ;	23
[2010]	ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 3817 : **ग्रेटर मोहाली एरिया डेवेलपमेंट अथॉरिटी और अन्य** बनाम **मंजू जैन और अन्य** ;	22
[2010]	ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 3745 : **कलाभारती एडवर्टाइजिंग** बनाम **हेमंत विमलनाथ नारिचनिया और अन्य** ;	31
[2010]	जे. टी. (2010) 13 एस. सी. 610 : **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** बनाम **हीरेन्द्र पाल सिंह आदि** ;	16
[2010]	ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 3131 : **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **सरोज कुमार सिन्हा** ;	23
[2009]	(2009) 2 एस. सी. सी. 541 : **भारत संघ और अन्य** बनाम **प्रकाश कुमार टंडन** ;	29
[2009]	(2009) 2 एस. सी. सी. 288 : **प्रबंध निदेशक बाला साहेब देसाई सहकारी एस. के. लिमिटेड** बनाम **काशीनाथ गणपतिल कांबले** ;	47
[2009]	ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 161 : **भारत संघ** बनाम **वाई. एस. संधु, भूतपूर्व निरीक्षक** ;	46
[2007]	(2007) 6 एस. सी. सी. 694 : **यूको बैंक और एक अन्य** बनाम **राजिन्दर लाल कपूर** ;	25

[2007] (2007) 9 एस. सी. सी. 564 :
सचिव, अकोला तालुका शिक्षा समिति और एक अन्य बनाम **शिवाजी और अन्य** ; 47

[2006] ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 3018 :
उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम **मिट्ठू सिंह** ; 47

[2004] (2004) 1 एस. सी. सी. 663 :
हावड़ा म्युनिसिपल कार्पोरेशन और अन्य बनाम **गैंगेज रोप कंपनी लिमिटेड और अन्य** ; 18

[2003] (2003) एस. सी. सी. 670 :
उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य बनाम **चंद्रपाल सिंह और एक अन्य** ; 20

[2002] ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 1223 :
कर्नाटक राज्य और एक अन्य बनाम **मंगलौर यूनिवर्सिटी नॉन-टीचिंग एम्पलॉयज एसोसिएशन और अन्य** ; 17

[2001] (2001) 2 एस. सी. सी. 330 :
पंजाब राज्य बनाम **वी. के. खन्ना और अन्य** ; 38

[2001] (2001) 5 एस. सी. सी. 323 :
सामंत और एक अन्य बनाम **बाम्बे स्टाक एक्सचेंज और अन्य** ; 37

[2001] (2001) 10 एस. सी. सी. 191 :
केरल राज्य बनाम **पूथेनकाबू एन. एस. एस. करायोगम और एक अन्य** ; 31

[2000] ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 3243 :
बद्रीनाथ बनाम **तमिलनाडु सरकार और अन्य** ; 31

[1999] ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 2012 :
जम्मू-कश्मीर राज्य बनाम **शिव राम शर्मा और अन्य** ; 16

[1999] (1999) 7 एस. सी. सी. 645 :
ग्रेफाइट इंडिया लिमिटेड और अन्य बनाम **दुर्गापुर प्रोजेक्ट लिमिटेड और अन्य** ; 45

[1999] (1999) 1 एस. सी. सी. 475 :
वी. कर्नालदुराई बनाम **जिलाधीश तुतीकोरिन और एक अन्य** ; 18

[1999] (1999) 7 एस. सी. सी. 314 :
भारत संघ और अन्य बनाम **इंडियन चार्ज क्रोम और एक अन्य** ; 18

[1997] ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 2661 :
पंजाब डेयरी डेवेलपमेंट कार्पोरेशन लिमिटेड और एक अन्य बनाम **कला सिंह आदि** ; 45

[1997] ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 637 :
आर. तिरुविरकोलम बनाम **पीठासीन अधिकारी और एक अन्य** ; 45

[1994] ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 1074 :
प्रबंध निदेशक, ईसीआईएल, हैदराबाद आदि बनाम **बी. करुणाकर आदि** ; 4, 46

[1993] ए. आई. आर. 1993 एस. सी. 763 :
एन. शंकरनारायणन, भारतीय प्रशासनिक सेवा बनाम **कर्नाटक राज्य और अन्य** ; 36

[1992] ए. आई. आर. 1992 एस. सी. 604 :
हरियाणा राज्य और अन्य बनाम **चौधरी भजन लाल और अन्य** ; 41

[1991] ए. आई. आर. 1991 एस. सी. 2010 :
भारत संघ आदि बनाम **के. वी. जानकीरमण आदि** ; 25

[1987] ए. आई. आर. 1987 एस. सी. 877 :
शिवनंदन पासवान बनाम **बिहार राज्य और अन्य** ; 41

[1987] ए. आई. आर. 1987 एस. सी. 294 :
शिवाजी राव नीलांगेकर पाटिल बनाम **डा. महेश माधव गोसावी और अन्य** ; 37

[1985] ए. आई. आर. 1985 एस. सी. 1121 :
अनिल कुमार बनाम **पीठासीन अधिकारी और अन्य** ; 29

[1985] ए. आई. आर. 1985 एस. सी. 551 :
के. नागराज और अन्य बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य और एक अन्य** ; 16

[1984] (1984) 3 एस. सी. सी. 281 :
भूतपूर्व कप्तान के. सी. अरोड़ा और एक अन्य बनाम **हरियाणा राज्य और अन्य** ; 14

[1984] ए. आई. आर. 1984 एस. सी. 161 :
गुजरात राज्य और एक अन्य बनाम **रमण लाल केशव लाल सोनी और अन्य** ; 15

[1982] ए. आई. आर. 1982 एस. सी. 1407 :
संपूरन सिंह बनाम **पंजाब राज्य** ; 20

[1982] ए. आई. आर. 1982 एस. सी. 65 :
मैसर्स सुखविंदर पाल बिपन कुमार और अन्य बनाम **पंजाब राज्य और अन्य** ; 37

[1981] ए. आई. आर. 1981 एस. सी. 711 :
तमिलनाडु राज्य बनाम **मैसर्स हिंद स्टोन आदि** ; 18

[1977] ए. आई. आर. 1977 एस. सी. 567 :
ताराचंद खत्री बनाम **दिल्ली नगर निगम और अन्य** ; 34

[1975] ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 1116 :
राजकुमार बनाम **भारत संघ और अन्य** ; 14

[1973] ए. आई. आर. 1973 एस. सी. 1146 :
मैसूर राज्य बनाम **कृष्णा मूर्ति और अन्य** ; 14

[1972] ए. आई. आर. 1972 एस. सी. 2443 =
1972 क्रिमिनल ला जर्नल 1523 (एस. सी.) :
शेरअली वली मोहम्मद बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ; 11

[1967] ए. आई. आर. 1967 एस. सी. 1889 :
रोशन लाल टंडन बनाम **भारत संघ और एक अन्य** ; 13

[1964] ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 364 :
भारत संघ बनाम **एच. सी. गोयल** ; 29

[1963] ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 395 :
बचित्तर सिंह बनाम **पंजाब राज्य और एक अन्य** । 29

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2011 की सिविल अपील सं. 2958.

2007 की एम. ए. टी सं. 2852 में कलकत्ता उच्च न्यायालय के तारीख 22 जुलाई, 2008 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री के. के. बंदोपाध्याय (वरिष्ठ अधिवक्ता), शगुन मट्टा, मोहित पॉल और अनीप सचथे

प्रत्यर्थी की ओर से अनंत साहा (स्वयं प्रत्यर्थी)

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति (डा.) बी. एस. चौहान ने दिया ।

न्या. (डा.) चौहान – इजाजत दी जाती है ।

2. यह अपील कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा 2007 के एम. ए. टी. सं. 2852 में पारित किए गए तारीख 22 जुलाई, 2008 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा 2005 के रिट याचिका सं. 22658 में विद्वान् एकल न्यायाधीश के तारीख 16 अगस्त, 2007 के उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध वर्तमान अपीलार्थी की अपील खारिज की गई है जिसके अनुसार विद्वान् एकल न्यायाधीश ने प्रत्यर्थी सं. 1 (इसमें इसके पश्चात् अपचारी कहा गया है) के विरुद्ध सेवा से की गई पदच्युति तथा अनुशासनिक कार्रवाई के दंडादेश को अभिखंडित किया है जिसमें वर्तमान अपीलार्थी को यह स्वतंत्रता दी गई है कि यदि अनुशासनिक प्राधिकारी ऐसा चाहे तो वह नए सिरे से कार्रवाई शुरू कर सकता है ।

3. इस मामले के तथ्य और परिस्थितियां इस प्रकार हैं कि अपचारी को कोल इंडिया लिमिटेड (इसमें इसके पश्चात् सीआईएल कहा गया है) में नियोजित किया गया था । तारीख 29 जून, 1991 को जब, अपचारी केन्द्रीय अस्पताल, आसनसोल, जो ईस्टर्न कोल फील्ड्स लिमिटेड (जिसे इसमें इसके पश्चात् ईसीएल कहा गया है) के अधीन स्थापित है, में तैनात था तब उसने तत्कालीन मुख्य चिकित्सा अधिकारी श्री पी. के. रॉय को, जो उसके वरिष्ठ अधिकारी हैं, गाली दी और उन पर बिना प्रकोपन के शारीरिक हमला करने का प्रयास किया । इस प्रक्रिया में, जिन अन्य अधिकारियों ने बीच-बचाव करने का प्रयास किया था उन पर भी हमला किया गया । तारीख 26 जुलाई, 1991 का आरोप पत्र जारी करके अपचारी के विरुद्ध अनुशासनिक कार्रवाई शुरू की गई ।

कार्यवाहियों के पूर्ण होने के पश्चात् जांच अधिकारी ने रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया कि उसके विरुद्ध आरोप साबित हो गया है । जांच रिपोर्ट पर विचार करने के पश्चात्, तारीख 17 जून, 1993 के आदेश द्वारा ईसीएल जो सीआईएल के अधीनस्थ आती है, के मुख्य प्रबंध निदेशक (जिसे इसमें इसके पश्चात् सीएमडी कहा गया है) द्वारा अपचारी को सेवा से पदच्युत कर दिया गया है । पदच्युति के उक्त आदेश को 1993 की रिट याचिका सीआर सं. 11177 (डब्ल्यू) फाइल करके अपचारी द्वारा चुनौती दी गई और विद्वान् एकल न्यायाधीश ने तारीख 22 फरवरी, 2001 के निर्णय और आदेश द्वारा उसे इस आधार पर मंजूर की कि पदच्युति के आदेश से कानूनी नियमों का उल्लंघन हुआ है । अनुशासनिक नियमों के अधीन सक्षम प्राधिकारी, सीएमडी होता है जिसने दंडादेश पारित नहीं किया है । अपचारी द्वारा उठाए गए अन्य सभी मुद्दे विचार के लिए छोड़ दिए गए । अपीलार्थी-नियोजक को नए सिरे से कार्यवाही शुरू करने की स्वतंत्रता दी गई जिसमें अपचारी को अपनी प्रतिरक्षा करने के लिए समुचित अवसर दिया गया ।

4. तारीख 22 फरवरी, 2001 के इस निर्णय और आदेश से व्यथित होकर, अपीलार्थी ने 2001 की प्रकीर्ण आवेदन सं. 1081 फाइल करके चुनौती दी । उक्त अपील तारीख 8 अगस्त, 2001 के निर्णय और आदेश द्वारा खारिज की गई जिसमें यह मत व्यक्त किया गया कि सीएमडी, सीआईएल ऐसा एकमात्र सक्षम प्राधिकारी है जो पदच्युति जैसा बड़ा दंडादेश अधिनिर्णीत कर सकता है । न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अपचार के मामले पर, **प्रबंध निदेशक, ईसीआईएल, हैदराबाद आदि** बनाम **बी. करुणाकर आदि**[1] वाले मामले में किए गए इस न्यायालय के निर्णय के आधार पर विचार किया जाएगा । तथापि, नए सिरे से अनुशासनिक कार्यवाही चलाने के विवेकाधिकार में परिवर्तन नहीं किया गया ।

5. तारीख 8 अगस्त, 2001 के खंड न्यायपीठ के निर्णय और आदेश को दृष्टिगत करते हुए, अपचारी का पुनःस्थापन कर दिया गया । अनुशासनिक कार्यवाही आरंभ की गई और नए सिरे से निलंबन आदेश पारित किया गया । चूंकि अपचारी ने कार्यवाहियों में भाग नहीं लिया था, इसलिए एकपक्षीय कार्यवाहियां पूरी होने पर, जांच अधिकारी ने तारीख 18 सितंबर, 2003 की अपनी रिपोर्ट द्वारा अपचारी के विरुद्ध आरोप साबित किए गए पाए । द्वितीय कारण बताओ नोटिस के साथ जांच रिपोर्ट की एक

---

[1] ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 1074.

प्रति तारीख 26 सितंबर, 2003 को रजिस्ट्रीकृत डाक द्वारा अपचारी को भेजी गई जिसमें उसे इस संबंध में अभ्यावेदन देने का अवसर दिया गया । तथापि, अपचारी ने इस पर आक्षेप फाइल करने के अवसर का उपभोग नहीं किया । जांच रिपोर्ट पर विचार करने के पश्चात्, सीआईएल के सीएमडी, अनुशासनिक प्राधिकारी ने तारीख 24 फरवरी, 2004 के आदेश द्वारा अपचारी की "सेवा से पदच्युति किए जाने" का दंडादेश पारित किया । पदच्युति के आदेश की प्रति तत्काल अपचारी को तामील कराई गई ।

6. अपचारी ने तारीख 27 मई, 2005 को अर्थात् पदच्युति के आदेश की प्राप्ति की तारीख से 1 वर्ष और तीन मास से अधिक समय बीत जाने के पश्चात् कानूनी नियमों के अधीन विहित अपील फाइल की । सीआईएल के निदेशक मंडल के समक्ष लंबित अपील के परिणाम की प्रतीक्षा किए बिना, अपचारी ने 2005 की रिट याचिका सं. 22658 (डब्ल्यू) फाइल की जिसमें उक्त दंडादेश को चुनौती दी । उक्त रिट याचिका विद्वान् एकल न्यायाधीश के तारीख 16 अगस्त, 2007 के निर्णय द्वारा इस आधार पर मंजूर की गई कि अनुशासनिक प्राधिकारी ने यह सुनिश्चित नहीं किया था कि तारीख 8 अगस्त, 2008 के उच्च न्यायालय के आदेश का अनुपालन किया गया है जिसकी पुष्टि खंड न्यायपीठ द्वारा की गई थी और यह भी आधार रखा गया कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा नए सिरे से जांच नहीं कराई गई है क्योंकि वह जांच ओएसडी द्वारा कराई गई थी और सीआईएल के सीएमडी ने उसे मात्र देखा ही था । ये कार्यवाहियां सीआईएल के सीएमडी द्वारा कराई जा सकती थीं, इस प्रकार संपूर्ण कार्यवाही दूषित हो जाती है । सेवा से पदच्युति किए जाने का दंडादेश अधिरोपित करने वाला तारीख 24 फरवरी, 2004 का आक्षेपित आदेश अभिखंडित कर दिया गया । तथापि, अपीलार्थियों को विधि के अनुसरण में नए सिरे से जांच करने और उसे नियत अवधि में पूरा करने की स्वतंत्रता दी गई ।

7. तथापि, इस आदेश से व्यथित होकर, अपीलार्थियों ने 2007 का एम. ए. टी. सं. 2852 प्रस्तुत किया, खंड न्यायपीठ ने उक्त अपील खारिज की और यह मत व्यक्त किया कि अनुशासनिक कार्यवाहियां ऐसे प्राधिकारी द्वारा शुरू की गई थीं जो ऐसे कार्यवाहियों को चलाने के लिए सक्षम नहीं हैं और सीआईएल के सीएमडी के सिवाय कोई भी व्यक्ति इन कार्यवाहियों को नहीं चला सकता । वास्तव में, जांच ईसीएल के ओएसडी द्वारा आरंभ की गई थी और ईसीएल के सीएमडी ने भी इसका अनुमोदन नहीं किया है, अपितु उन्होंने किसी भी प्रकार का कोई विचार व्यक्त किए

बिना अपने हस्ताक्षर किए हैं । ईसीएल के सीएमडी सक्षम प्राधिकारी नहीं हैं । न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया है कि अनुशासनिक प्राधिकारी पक्षपाती हो गया है और अपचारी के प्रतिकूल है और ये कार्यवाहियां अपचारी को दंड देने का पूर्व-चिंतन किए जाने के कारण दूषित हो जाती हैं ।

8. अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री के. के. बंदोपाध्याय ने यह दलील दी है कि कानूनी नियमों अर्थात् भारतीय कोयला कार्यपालिक आचरण अनुशासन और अपील नियम, 1978 (जिसे इसमें इसके पश्चात् नियम, 1978 कहा गया है)(कोल इंडिया एग्जीक्युटिव्स कंडक्ट डिसीप्लिन एंड अपील रूल्स, 1978) के अनुसार अपचारी ग्रेड ई-2 का अधिकारी है, इसलिए ईसीएल का सीएमडी इन कार्यवाहियों को चलाने के लिए सक्षम है । उक्त नियम, 1978 के नियम 27 के अधीन विरचित अनुसूची में विशिष्ट रूप से इसका उपबंध किया गया है । सीआईएल का सीएमडी कोई भी बड़ी शास्ति अधिरोपित करने के लिए सक्षम है और दंडादेश के आदेश के विरुद्ध सीआईएल के निदेशक मंडल के समक्ष अपील का उपबंध किया गया है नियम, 1978 के नियम 27 और 28 के उपबंधों को दृष्टिगत करते हुए, ईसीएल के सीएमडी द्वारा भी कार्यवाहियां आरंभ की जा सकती थीं और जांच पूरी होने के पश्चात्, यदि तथ्यों के अधीन बड़ी शास्ति अधिरोपित करना आवश्यक हो, तब मामला सीआईएल के सीएमडी को दंड अधिनिर्णीत करने के प्रयोजन हेतु भेजा जा सकता है क्योंकि बड़ा दंड अधिनिर्णीत करने के लिए वही एकमात्र सक्षम प्राधिकारी है । सीआईएल के निदेशक मंडल के समक्ष अपील के लंबित रहने के दौरान, रिट याचिका पर उच्च न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया जा सकता था, विशेषकर तब जब अपचारी ने अपनी रिट याचिका में ऐसा तथ्य प्रकट किया हो । चूंकि पूर्ववर्ती अनुशासनिक कार्यवाहियां अभिखंडित की जा चुकी हैं और अपीलार्थियों को अपचारी के विरुद्ध नए सिरे से कार्यवाही करने की स्वतंत्रता दी गई है इसलिए अपीलार्थी के पास नए सिरे से आरोप पत्र जारी करने का कोई कारण नहीं था । आरोप पत्र ईसीएल के सीएमडी द्वारा जारी किया गया था किंतु उच्च न्यायालय ने इसका गलत अर्थ लगाया है कि यह कंपनी के विशेष कार्य अधिकारी द्वारा जारी किया गया है । उच्च न्यायालय इसका मूल्यांकन करने में असफल रहा है कि आरोप पत्र का सम्यक् रूप से ईसीएल के सीएमडी द्वारा अनुमोदन किया गया है । उच्च न्यायालय को इस आधार पर रिट याचिका पर विचार करने से इनकार करना चाहिए था कि अपचारी को इसके पूर्व भी गंभीर कदाचार के अपराध के लिए दोषी पाया गया है;

उसने जांच में भाग नहीं लिया और जांच में एकपक्षीय निष्कर्ष निकाला गया । इसके अतिरिक्त, अपचारी ने द्वितीय कारण बताओ नोटिस के प्राप्त किए जाने के बावजूद उसका कोई उत्तर फाइल नहीं किया और न ही उस पर कोई टिप्पणी की । उच्च न्यायालय ने इस निष्कर्ष को अभिलिखित करने में त्रुटि की है कि इस मामले में अपचारी को मात्र दंडित करने के पूर्व नियोजित चिंतन के साथ कार्यवाहियां आरंभ की गई हैं । इस प्रकार, यह अपील मंजूर की जानी चाहिए ।

9. इसके प्रतिकूल, अपचारी ने इस आधार पर व्यक्तिगत रूप से अपील का विरोध किया है कि उसकी आरंभिक नियुक्ति के समय पर प्रवृत्त नियमों के अधीन यह उपबंध किया गया है कि समनुषंगी कंपनी के सीएमडी द्वारा नहीं अपितु सीआईएल के सीएमडी द्वारा ही कार्यवाहियां चलाई जा सकती हैं । जहां तक अपचारी का संबंध है, विधि में पश्चात्वर्ती परिवर्तन/संशोधन लागू नहीं होगा । उसने सभी तारीखों पर जांच में भाग नहीं लिया था और उसने द्वितीय कारण बताओ नोटिस का उत्तर भी प्रस्तुत नहीं किया था क्योंकि उसे विधि के अनुसरण में सूचित नहीं किया गया था और ऐसी तथ्यात्मक स्थिति में, वह जांच में भाग लेने या द्वितीय कारण बताओ नोटिस का उत्तर देने के लिए किसी भी प्रकार बाध्य नहीं था । जब एक बार मुकदमेबाजी के प्रथम चरण में, उच्च न्यायालय ने नए सिरे से कार्यवाही करने के लिए अनुशासनिक प्राधिकारी को स्वतंत्रता दे दी थी, तब अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा अपचारी को नया आरोप पत्र जारी किया जाना चाहिए था । वर्तमान मामले में, कंपनी के विशेष कार्य अधिकारी द्वारा कार्यवाहियां आरंभ की गई हैं । ईसीएल के सीएमडी सक्षम प्राधिकारी नहीं हैं, यहां तक कि उन्होंने केवल किसी भी प्रकार का कोई भी सम्प्रेक्षण किए बिना आदेश पर हस्ताक्षर किए हैं । अपीलार्थियों को उससे शिकायत थी, इसीलिए दुर्भावना के कारण कार्यवाहियां चलाई गई हैं । अपील में सार नहीं है और यह खारिज किए जाने योग्य है ।

10. हमने अपीलार्थियों के विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल और स्वयं पेश हुए अपचारी की परस्पर विरोधी दलीलों पर विचार किया है ।

11. तारीख 26 जुलाई, 1991 के आरोप पत्र से अपचारी द्वारा किए गए अत्यंत गंभीर कदाचार प्रकट होते हैं, जैसे कि तारीख 29 जून, 1991 को अपचारी ने केन्द्रीय अस्पताल कला के मुख्य चिकित्सा अधिकारी डा. पी. के. रॉय से संपर्क किया और उनसे पूछा कि उन्होंने जून, 1991 में उसे तीन दिन के लिए अनुपस्थित क्यों दर्शाया है, यद्यपि अपचारी ने समुचित माध्यम से प्रतिकरात्मक छुट्टी के लिए आवेदन किया था और

इसके पश्चात् अपचारी ने मुख्य चिकित्सा अधिकारी के साथ गाली-गलौच की और यहां तक कि उन्हें जान से मारने की धमकी दी । उसने अपने जूते हाथ में लिए और वह मुख्य चिकित्सा अधिकारी के पीछे उन्हें क्षति पहुंचाने के लिए दौड़ा किंतु उस समय वहां मौजूद अन्य अधिकारियों ने बड़ी मुश्किल से अपचारी को पकड़ लिया और मुख्य चिकित्सा अधिकारी पर हमला करने से अपचारी को रोक लिया । इस प्रक्रम पर भी, उसने उन सब व्यक्तियों से छूट कर भागने के सभी प्रयास किए । इस प्रक्रिया में अपचारी ने अन्य कर्मचारियों की भी पिटाई की ।

आरोप पत्र से यह भी प्रकट होता है कि तारीख 18 अप्रैल, 1989 के आरोप पत्र के संबंध में अपचारी को गंभीर कदाचार का दोषी पाया गया है । तथापि, प्रबंधन उसके व्यवहार को देख रहा था और इस दौरान अपचारी ने तारीख 29 जून, 1991 को पुनः कदाचार कारित किया ।

12. अपचारी द्वारा दी गई यह दलील कि उसकी प्रथम नियुक्ति के समय पर सीआईएल के सीएमडी अनुशासनिक कार्यवाही करने के लिए सक्षम अधिकारी थे और यदि इसके पश्चात् नियमों में संशोधन किया गया है तब वह उसके मामले में लागू नहीं होगा क्योंकि एकपक्षीय रूप में किए गए संशोधन उन कर्मचारियों की सेवा की शर्तों को लागू नहीं होंगे जिनकी नियुक्ति संशोधन की तारीख के पूर्व की गई है और ऐसे संशोधन का भूतलक्षी प्रभाव नहीं होगा और यह संशोधन अर्थहीन होगा ।

13. **रोशन लाल टंडन** बनाम **भारत संघ और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ ने ऐसे ही मुद्दे पर विचार किया है और निम्न मत व्यक्त किया है :–

> "सरकारी कर्मचारी की विधिक स्थिति संविदा पर सेवा करने वाले कर्मचारी से बेहतर होती है । हैसियत का प्रमाणक लोक विधि द्वारा अधिरोपित अधिकार और कर्तव्यों के विधि संबंध से जुड़ा होता है न कि पक्षकारों के मात्र करार से । सरकारी कर्मचारी की उपलब्धियां और उसकी सेवा की शर्तें कानून या कानूनी नियमों द्वारा शासित होती हैं जिनमें एकपक्षीय रूप से कर्मचारी की सम्मति के बिना सरकार द्वारा परिवर्तन किया जा सकता है ।"

14. **मैसूर राज्य** बनाम **कृष्णा मूर्ति और अन्य**[2] ; **राजकुमार** बनाम

---

[1] ए. आई. आर. 1967 एस. सी. 1889.

[2] ए. आई. आर. 1973 एस. सी. 1146.

भारत संघ और अन्य[1] और **भूतपूर्व कप्तान के. सी. अरोड़ा और एक अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य और अन्य**[2] वाले मामलों में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि यह सुस्थापित है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के परंतुक के अधीन विरचित नियमों का, प्रकृति और लक्षण की दृष्टि से विधायी होने के कारण भूतलक्षी प्रभाव नहीं हो सकता ।

15. इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ ने **गुजरात राज्य और एक अन्य** बनाम **रमण लाल केशव लाल सोनी और अन्य**[3] वाले मामले में निम्न मत व्यक्त किया है :–

> "विधान मंडल, निःसंदेह, भूतलक्षी प्रभाव से विद्यमान विधि के अधीन अर्जित किसी भी निहित अधिकार को छीनने या उसे अशक्त बनाने के लिए विधि की रचना करने के लिए सक्षम है किंतु चूंकि विधि की रचना लिखित संविधान के अधीन की जाती है और संविधान के आदेश और निषेधाज्ञा से पुष्टि की जाती है, इसलिए मूल अधिकारों के प्रतिकूल न तो प्रत्याशित और न ही भूतलक्षी विधि बनाई जा सकती है । आज के पक्षकारों के प्रोद्भूत या अर्जित अधिकारों पर विचार करते हुए विधि ऐसी होनी चाहिए जिससे आज भी संविधान की अपेक्षाओं का समाधान हो सके ।"

16. **के. नागराज और अन्य** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य और एक अन्य**[4] वाले मामले में इस न्यायालय ने आंध्र प्रदेश पब्लिक एम्पलॉयज (रेग्युलेशन ऑफ कंडीशन्स ऑफ सर्विस) आर्डिनेंस, 1983 में किए गए संशोधनों को कायम रखा जिसके द्वारा सेवानिवृत्ति की आयु 58 वर्ष से घटाकर 55 वर्ष की गई और यह अभिनिर्धारित किया गया कि ऐसा किया जाना न तो मनमाना है और न ही अर्थहीन है । न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि यह वर्तमान कर्मचारियों पर भविष्य में लागू किया जाएगा और इससे उन व्यक्तियों के अधिकार समाप्त नहीं होंगे जो पहले ही सेवानिवृत्त हो चुके हैं, संशोधन का प्रभाव भूतलक्षी नहीं था और जो व्यक्ति पहले से ही सेवा में थे और 58 वर्ष की आयु पर सेवानिवृत्त होने की प्रत्याशा कर रहे थे वे अब 55 वर्ष की आयु पर सेवानिवृत्त होंगे और वे यह दावा नहीं कर सकते हैं कि इन नियमों में भूतलक्षी प्रभाव के साथ संशोधन किया

---

[1] ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 1116.

[2] (1984) 3 एस. सी. सी. 281.

[3] ए. आई. आर. 1984 एस. सी. 161.

[4] ए. आई. आर. 1985 एस. सी. 551.

गया है जिससे उनके प्रोद्भूत अधिकार समाप्त हो जाएं ।

(**जम्मू-कश्मीर राज्य** बनाम **शिव राम शर्मा और अन्य**[1] और **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** बनाम **हीरेन्द्र पाल सिंह आदि**[2] वाले मामले भी देखिए)

17. इसी प्रकार, **कर्नाटक राज्य और एक अन्य** बनाम **मंगलौर यूनिवर्सिटी नॉन-टीचिंग एम्पलॉयज एसोसिएशन और अन्य**[3] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि सेवा की शर्तें नियोजक द्वारा एकपक्षीय रूप से परिवर्तित की जा सकती हैं किंतु ऐसा विधिक और सांविधानिक उपबंधों के अनुसरण में किया जाना चाहिए ।

18. **तमिलनाडु राज्य** बनाम **मैसर्स हिंद स्टोन आदि**[4] ; **वी. कर्नालदुराई** बनाम **जिलाधीश तुतीकोरिन और एक अन्य**[5] ; **भारत संघ और अन्य** बनाम **इंडियन चार्ज क्रोम और एक अन्य**[6] ; और **हावड़ा म्युनिसिपल कार्पोरेशन और अन्य** बनाम **गैंगेज रोप कंपनी लिमिटेड और अन्य**[7] वाले मामलों में इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि किसी मामले में जो भी विधि लागू की जाती है वह विनिश्चय किए जाने के समय पर प्रवृत्त होनी चाहिए ।

इस प्रकार उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए, अपचारी द्वारा दी गई दलीलें विचार किए जाने योग्य नहीं हैं ।

19. जहां तक अनुशासनिक कार्यवाहियों के आरंभ करने की सक्षमता का संबंध है, नियम, 1978 के अधीन संपूर्ण मार्गदर्शन का उपबंध किया गया है और इसके नियम 27 और नियम 28 का यदि एक साथ पठन किया जाए तो उसके अंतर्गत संचयी रूप से यह उपबंध किया गया है कि बड़ी शास्तियां अर्थात् अनिवार्य सेवानिवृत्ति, सेवा से हटाया जाना या पदच्युति केवल सीआईएल के सीएमडी द्वारा ही की जा सकती हैं । नियम 28.3 के अधीन स्पष्ट रूप से यह अनुबंध किया गया है कि अनुशासनिक कार्यवाहियां नियम 27 के अधीन विरचित अनुसूची में दर्शाए गए

---

[1] ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 2012.
[2] जे. टी. (2010) 13 एस. सी. 610.
[3] ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 1223.
[4] ए. आई. आर. 1981 एस. सी. 711.
[5] (1999) 1 एस. सी. सी. 475.
[6] (1999) 7 एस. सी. सी. 314.
[7] (2004) 1 एस. सी. सी. 663.

प्राधिकारियों द्वारा ही आरंभ की जा सकती हैं । तथापि, ऐसे मामले में जहां बड़ी शास्ति अधिरोपित की जानी हो, तब मामला सीआईएल के सीएमडी को निर्दिष्ट किया जाए । अतः यह पता लगाने के लिए कि सीआईएल के सीएमडी के अलावा कोई भी अधिकारी अनुशासनिक कार्यवाही और आरोप पत्र जारी कर सकता है या नहीं, हमें नियम 27 के अधीन विरचित अनुसूची पर विचार करना चाहिए । उसका सुसंगत भाग निम्न प्रकार है :–

नियम 27 के अधीन अनुसूची

क्रम सं.	कर्मचारी का ग्रेड	अनुशासनिक प्राधिकारी	प्राधिकारी द्वारा अधिरोपित की जाने वाली शास्तियां	अपील प्राधिकारी
1	2	3	4	5
1.	.....			
2.	(क) सीआईएल या किसी समनुषंगी कंपनी में तैनात ई-1 से एम-3 ग्रेड के अधिकारी	अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक, कोल इंडिया लि.	सभी शास्तियां	निदेशक मंडल, कोल इंडिया लि.
	(ख)			
	(ग)			
3.	(क) समनुषंगी कंपनी में तैनात ई-1 से एम-3 ग्रेड के अधिकारी	संबद्ध समनुषंगी कंपनी का सीएमडी	नियम 27.1(iii)(ख) से 27.1(iii)(घ) के अधीन शास्तियों को छोड़कर सभी शास्तियां	अध्यक्ष-सह-प्रबंध निदेशक, सीआईएल

अनुशासनिक प्राधिकारी के अधिकारिता कंपनी/इकाई के प्रतिनिर्देश सुनिश्चित की जाएगी जहां अभिकथित कदाचार किया गया था ।

20. इस न्यायालय ने संविधान, 1950 के अनुच्छेद 311(1) के उपबंधों का निर्वचन करते हुए सुसंगत रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि उक्त

उपबंधों की अपेक्षा के अनुसार, राज्य में सिविल पद पर कार्यरत व्यक्ति को जिस प्राधिकारी द्वारा नियुक्त किया गया है उस प्राधिकारी के अधीनस्थ किसी भी प्राधिकारी द्वारा सेवा से पदच्युत या हटाया नहीं जा सकता । "तथापि, उक्त अनुच्छेद के अधीन यह अपेक्षा नहीं की गई है कि किसी अधिकारी को पदच्युत करने या हटाने से संबंधित उपबंध के अधीन सशक्त प्राधिकारी को स्वयं जांच कार्यवाही आरंभ करनी या चलानी चाहिए" ।

(**संपूरन सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[1] ; और **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य** बनाम **चंद्रपाल सिंह और एक अन्य**[2] वाले मामले देखिए)

21. स्वीकृततः, अपचारी ई-2 ग्रेड में अधिकारी रहा है और उसकी नियुक्ति समनुषंगी कंपनी अर्थात् ईसीएल में की गई है । अतः इसमें कोई संदेह नहीं है कि अनुशासनिक कार्यवाहियां सीआईएल के सीएमडी या अनुषंगी कंपनी अर्थात् ईसीएल के सीएमडी द्वारा आरंभ की जा सकती हैं । चूंकि अपचारी अनुषंगी कंपनी में कार्य कर रहा था, इसलिए उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में त्रुटि की है कि ऐसी परिस्थिति में संबंधित अनुषंगी कंपनी का सीएमडी कार्यवाही आरंभ करने के लिए सक्षम नहीं है ।

22. इसी प्रकार, हमारा यह निष्कर्ष है कि अपचारी की इस दलील में कोई बल नहीं है कि उसने अनुशासनिक कार्यवाही में भाग नहीं लिया है और चूंकि द्वितीय कारण बताओ नोटिस, के साथ जांच रिपोर्ट प्राप्त किए जाने पर उसने क्योंकि वे विधि के अनुसरण में तामील नहीं कराए गए हैं, कोई टिप्पणी नहीं की थी । अपचारी को, द्वितीय कारण बताओ नोटिस और जांच रिपोर्ट की प्रति रजिस्ट्रीकृत डाक से भेजी गई थीं । अतः, विधि में विशेषकर साधारण खंड अधिनियम, 1897 की धारा 27 और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 114 दृष्टांत (च) के अधीन यह अवधारणा है कि प्रेषिती ने डाक द्वारा भेजी गई सामग्री प्राप्त कर ली है (**ग्रेटर मोहाली एरिया डेवेलपमेंट अथॉरिटी और अन्य** बनाम **मंजू जैन और अन्य**[3] वाला मामला देखिए) ।

23. वर्तमान मामले में, अपचारी के विरुद्ध एकपक्षीय कार्यवाहियां चलाई गईं क्योंकि वह नोटिस के बावजूद पेश होने में असफल रहा और

---

[1] ए. आई. आर. 1982 एस. सी. 1407.

[2] (2003) एस. सी. सी. 670.

[3] ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 3817.

इस प्रकार जांच अधिकारी ने न्यायोचित किया है (**उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **सरोज कुमार सिन्हा**[1] वाला मामला देखिए) । अपचारी द्वारा ऐसा कोई भी प्रकथन नहीं किया गया है कि उसने उक्त नोटिस और जांच रिपोर्ट की प्रति प्राप्त नहीं की थी । अपचारी द्वारा किए गए अभिवाक् से यह दर्शित होता है कि उसने गलत व्यवहार किया है और मात्र तकनीकी आधार पर दो दशक से अधिक समय तक मुकदमेबाजी लंबित रखी है । अपचारी ने तारीख 17 जनवरी, 2002 को की गई तात्पर्यित नई जांच के परिणाम आने तक प्रतीक्षा की है, फिर भी वह उस जांच को चुनौती दे सकता था क्योंकि वह ऐसे व्यक्ति द्वारा आरंभ की गई थी जो कार्यवाही चलाने के लिए सक्षम नहीं था और जिससे उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए निर्णय का उल्लंघन हुआ है । ऐसी तथ्यात्मक स्थिति में, उच्च न्यायालय को उसकी रिट याचिका को ग्रहण करने से इनकार कर देना चाहिए था । इसके अतिरिक्त ऐसी स्थिति में रिट याचिका पर कार्यवाही नहीं की जा सकती थी और न ही गुणता के आधार पर उसकी सुनवाई की जा सकती थी जब कानूनी अपील सीआईएल के निदेशक मंडल के समक्ष लंबित हो । (**ट्रांसपोर्ट एंड डॉक वर्कर्स यूनियन और अन्य** बनाम **मुम्बई पोर्ट ट्रस्ट और एक अन्य**[2] वाला मामला देखिए)

दुर्भाग्यवश दोनों पक्षकारों ने बिना किसी जिम्मेदारी के मामले में कार्यवाही की है क्योंकि उच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिका और अपील के निपटारे के पश्चात् दंड अधिरोपित किए जाने के पंद्रह मास के पश्चात् अपचारी द्वारा फाइल की गई कानूनी अपील पर सुनवाई की गई यद्यपि नियम, 1978 के अधीन विहित परिसीमा केवल 30 दिन है और परिसीमा के मुद्दे पर विचार किए बिना गुणता के आधार पर अपील खारिज की गई है । इससे स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि दोनों पक्षकारों ने मुकदमेबाजी को खेल समझा है और अपीलार्थी मामले को गंभीरता से न लेते हुए जनता का समय और धन नष्ट कर रहे हैं ।

24. कानूनी नियमों के अधीन स्पष्ट रूप से यह अनुबंध किया गया है कि जांच सीआईएल के सीएमडी द्वारा या अनुषंगी कंपनी के सीएमडी द्वारा आरंभ की जा सकती है । मुकदमेबाजी के प्रथम चरण में उच्च न्यायालय के एकल विद्वान् न्यायाधीश ने आक्षेपित निर्णय को अभिखंडित

---

[1] ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 3131.

[2] (2011) 2 एस. सी. सी. 575.

करने के पश्चात्, तारीख 2 फरवरी, 2001 के निर्णय और आदेश द्वारा अपीलार्थियों को यह स्वतंत्रता प्रदान की कि वे अपचारी को समुचित अवसर देते हुए नए सिरे से कार्यवाहियां चला सकें । खंड न्यायपीठ ने तारीख 8 अगस्त, 2008 के निर्णय और आदेश द्वारा वर्तमान अपीलार्थियों द्वारा फाइल की गई अपील खारिज की । अतः, यह प्रश्न उठेगा ही कि नए सिरे से जांच किए जाने का क्या अर्थ है ।

25. सुस्थापित विधिक स्थिति पर कोई भी विवाद नहीं है कि अनुशासनिक कार्यवाहियां केवल तब आरंभ होती हैं जब अपचारी कर्मचारी के विरुद्ध आरोप पत्र जारी किया जाता है । (**भारत संघ आदि** बनाम **के. वी. जानकीरमण आदि**[1] ; और **यूको बैंक और एक अन्य** बनाम **राजिन्दर लाल कपूर**[2] वाले मामले देखिए ।)

26. उच्च न्यायालय ने नए सिरे से जांच करने के लिए अपीलार्थियों को स्वतंत्रता दी है जिसका यह अर्थ हुआ कि पूर्ववर्ती आरोप पत्र जारी किए जाने सहित संपूर्ण पूर्ववर्ती कार्यवाहियां अभिखंडित हो जाती हैं । ऐसी तथ्यात्मक स्थिति में अपीलार्थियों के लिए पूर्व में जारी किए गए आरोप पत्र के आधार पर कार्यवाही करना अनुज्ञेय नहीं है । इस बात को दृष्टिगत करते हुए, नए आरोप पत्र के दिए बिना नई जांच आरंभ किए जाने का प्रश्न नहीं उठ सकता ।

27. यह तात्पर्य निकाला गया है कि ईसीएल के सीएमडी द्वारा कार्यवाहियां प्रवर्तित की गई हैं और तारीख 17 जनवरी, 2002 का उक्त आदेश निम्न प्रकार है :–

> "1993 के सीआर सं. 1177 अर्थात् डा. अनंत साहा बनाम ईसीएल और अन्य में माननीय कलकत्ता उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी को यह आदेश पारित किया है कि वह याची को समुचित अवसर देते हुए नए सिरे से कार्यवाहियां आरंभ करें और तारीख 8 अगस्त, 2001 को माननीय कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश के आधार पर यह अनुशासनिक प्राधिकारी/ईसीएल के सीएमडी द्वारा पारित किए जाने वाले नए आदेश पर निर्भर होगा ।"

उपरोक्त परिस्थितियों में, यह प्रस्तावित है कि जांच प्राधिकारी और

---

[1] ए. आई. आर. 1991 एस. सी. 2010.

[2] (2007) 6 एस. सी. सी. 694.

प्रेजेन्टिंग अधिकारी तारीख 26 जुलाई, 1991 के उस आरोप पत्र सं. ईसीएल-5(डी)/113/1070/320 में नए सिरे से जांच करने के लिए, जो कला अस्पताल के चिकित्सा अधिकारी डा. अनंत साहा के विरुद्ध जारी किया गया है, कलकत्ता उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के तारीख 8 अगस्त, 2001 के आदेश के निबंधनों में विभागीय जांच करने के लिए नियुक्त किया जा सकता है, और इस प्रयोजन के लिए निम्न व्यक्तियों के नाम दिए गए हैं :–

1. डा. आर. एन. कोबट, मुख्य चिकित्सा अधिकारी, सेंक्टोरिया हास्पिटल - जांच प्राधिकारी ;

2. श्री एम. एन. चटर्जी, अनुभाग अधिकारी, प्रशासन विभाग-प्रेजेन्टिंग आफिसर

अनुमोदनार्थ प्रस्तुत

हस्ताक्षर

विशेष कार्य अधिकारी (पीए एवं पीआर)

17.8.2002

हस्ताक्षर
मुख्य चिकित्सा अधिकारी

28. उपर्युक्त आदेश से प्रकट होता है कि विशेष कार्य अधिकारी ने जो टिप्पण तैयार किया था उस पर मात्र ईसीएल के सीएमडी द्वारा हस्ताक्षर किए गए हैं । प्रस्ताव पर ईसीएल के सीएमडी द्वारा नित्य कार्य के रूप में हस्ताक्षर किए गए हैं और अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिससे यह दर्शित होता हो कि उन्होंने सोच-विचार के पश्चात् अपने हस्ताक्षर किए हैं । अतः, विधि की कड़ी दृष्टि से यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि कार्यवाहियां समुचित रूप से प्रवर्तित की गई हैं यहां तक कि आरोप पत्र जारी किए जाने के पश्चात्वर्ती प्रक्रम पर भी प्रवर्तित नहीं की गई हैं । विधि के अधीन यह अपेक्षा की जाती है कि अनुशासनिक प्राधिकारी को, अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री पर विचार करते हुए कोई सकारात्मक आदेश पारित करना चाहिए ।

29. इस न्यायालय ने अनेक बार यह अभिनिर्धारित किया है कि अपचारी कर्मचारी को कदाचार का दोषी ठहराने के पश्चात् उसके विरुद्ध सेवा से पदच्युत करने का आदेश प्रशासनिक आदेश हो सकता है, फिर भी

कानूनी नियमों के अधीन ऐसे लोक सेवक के विरुद्ध यह विनिश्चित करने के लिए चलाई गई कार्यवाहियां अर्द्धन्यायिक प्रकृति की होती हैं कि वह उसके विरुद्ध विरचित आरोपों का दोषी है या नहीं । प्राधिकारी को जांच आरंभ करने के लिए और उसके आधार पर निष्कर्ष निकालने के लिए कुछ कारण देने चाहिए जो अत्यंत संक्षेप में हो सकते हैं । सकारण आदेश पारित किया जाना चाहिए और जांच अधिकारी या प्राधिकारी की अपनी ओर से गढ़ी हुई राय नहीं होनी चाहिए । (**बचित्तर सिंह** बनाम **पंजाब राज्य और एक अन्य**[1] ; **भारत संघ** बनाम **एच. सी. गोयल**[2] ; **अनिल कुमार** बनाम **पीठासीन अधिकारी और अन्य**[3] ; और **भारत संघ और अन्य** बनाम **प्रकाश कुमार टंडन**[4] वाले मामले देखिए)

इस प्रकार, ऊपर निर्दिष्ट आदेश कोई भी अनुशासनिक कार्यवाही आरंभ करने के लिए पर्याप्त नहीं है ।

30. विधि की सुस्थापित प्रतिपादना है कि यदि आरंभिक कार्यवाही विधि के अनुसरण में नहीं है, तब पश्चात्वर्ती कार्यवाहियां, आरंभिक कार्यवाही को शुद्ध नहीं कर सकती । ऐसी तथ्यात्मक स्थिति में, "सबलेटो फंडामेंटो केडिट ऑपस" वाला विधिक सूत्र लागू होगा जिसका यह अर्थ है कि बिना नींव के ढांचा ढह जाता है ।

31. **बद्रीनाथ** बनाम **तमिलनाडु सरकार और अन्य**[5] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत अभिमत व्यक्त किया है कि जब एक बार कार्यवाही का आधार समाप्त हो जाता है तब सभी पारिणामिक कृत्य, कार्य, आदेश स्वतः ही ढह जाते हैं और पारिणामिक आदेश का यह सिद्धांत, जो न्यायिक और अर्द्धन्यायिक कार्यवाहियों को लागू होता है, प्रशासनिक आदेशों को भी उतना ही लागू होगा । (**केरल राज्य** बनाम **पूथेनकाबू एन. एस. एस. करायोगम और एक अन्य**[6] ; और **कलाभारती एडवर्टाइजिंग** बनाम **हेमंत विमलनाथ नारिचनिया और अन्य**[7] वाले मामले भी देखिए)

---

[1] ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 395.
[2] ए. आई. आर. 1964 एस. सी. 364.
[3] ए. आई. आर. 1985 एस. सी. 1121.
[4] (2009) 2 एस. सी. सी. 541.
[5] ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 3243.
[6] (2001) 10 एस. सी. सी. 191.
[7] ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 3745.

32. जैसाकि वर्तमान मामले में देखा गया है कि, मुकदमेबाजी के प्रथम चरण के पश्चात् अनुशासनिक कार्यवाहियों का कोई भी उचित प्रारंभ नहीं किया गया है, इसलिए अन्य सभी पारिणामिक कार्यवाहियां दूषित हो जाती हैं और उस आधार पर उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और आदेश में कोई भी खामी नहीं हो सकती है ।

33. पक्षपाती/प्रतिकूल/दुर्भावपूर्ण होने के अभिकथन के संबंध में उच्च न्यायालय के समक्ष अपचारी ने अपनी रिट याचिका में आधार संख्या 9 का अवलंब लिया है जो निम्न प्रकार है :–

> "इस कारण से कि आरोप पत्र का अनुमोदन, बड़ी शास्ति अधिरोपित करने के पूर्व-चिंतन के साथ किया गया था जो तारीख 29 जून, 1991 की स्थिति रिपोर्ट के आधार पर संबद्ध प्राधिकारी की टिप्पणी द्वारा साबित की जा सकती है और इस प्रकार कार्यवाहियों की शुद्धता और सत्यनिष्ठा समाप्त हो जाती है ।"

अपचारी उक्त प्रकथन को साबित करने के लिए अभिलेख पर कोई भी सामग्री इंगित नहीं कर सका है ।

34. **ताराचंद खत्री** बनाम **दिल्ली नगर निगम और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा "दुर्भावना" के मुद्दे पर विचार किया गया है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यदि रिट याचिका में आरोप विरचित करने के लिए आवश्यक विशिष्टियों का उल्लेख नहीं किया गया है और दुर्भावना साबित करने का भार उस व्यक्ति पर बलपूर्वक डाला गया है जिसने इसका अभिकथन किया है तब ऐसी स्थिति में असद्भावपूर्ण कार्य किए जाने के अभिकथन के मामले में अन्वेषण करने से इनकार करने में न्यायालय ने न्यायोचित ही किया है, और दुर्भावना सिद्ध करने के लिए पर्याप्त सामग्री होनी चाहिए ।

35. इसी प्रकार, ई. पी. रोयप्पा बनाम तमिलनाडु राज्य और एक अन्य वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है :–

> "द्वितीयतः हमें यह अनदेखा नहीं करना चाहिए कि दुर्भावना साबित करने का भार उस व्यक्ति पर पूरी तरह होता है जो इसका अभिकथन करता है.....। अतः न्यायालयों को एक पक्षकार द्वारा उसके समक्ष प्रस्तुत अस्पष्ट अपूर्ण तथ्यों से निष्कर्ष निकालने में

---

[1] ए. आई. आर. 1977 एस. सी. 567.

सावधानी बरतनी चाहिए विशेषकर ऐसी स्थिति में जब अभिकथन गंभीर प्रकृति के हों और ऐसे अधिकारी के विरुद्ध किए गए हों जिसकी प्रशासन के क्षेत्र में अत्यधिक जिम्मेदारी बनती हो । जैसाकि मंत्रियों और अन्य प्राधिकारियों के विरुद्ध कदाचार के आरोपों का मूल्यांकन करने में न्यायिक दृष्टिकोण अपनाना होता है जिसका यह कारण नहीं होना चाहिए कि उनकी विशेष हैसियत होती है..... बल्कि इस कारण से कि प्रजातंत्र में प्रभावपूर्ण कार्य करना कठिन होता है ।"

36. **एन. शंकरनारायणन, भारतीय प्रशासनिक सेवा** बनाम **कर्नाटक राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि "जिन तथ्यों का अभिवाक् किया गया है और सिद्ध किया गया है उनसे दुर्भावना का युक्तियुक्त निष्कर्ष निकाल सकता है । किंतु ऐसा निष्कर्ष तथ्यात्मक पृष्ठभूमि पर आधारित होना चाहिए और ऐसी तथ्यात्मक पृष्ठभूमि अटकल और कल्पना पर आधारित नहीं हो सकती ।"

37. दुर्भावना, विशेषकर जिसका अभिकथन याचिका में किया गया है, को साबित करने के लिए अत्यंत ठोस और तर्कसम्मत साक्ष्य होना चाहिए, क्योंकि ऐसी दुर्भावना का मात्र उपधारणा नहीं किया जा सकता है । उपधारणा आदेश की दुर्भावना के पक्ष में तब तक की जा सकती है जब तक कि उसका खंडन स्वीकृत सामग्री से न कर दिया जाए । (**मैसर्स सुखविंदर पाल बिपन कुमार और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य**[2] ; **शिवाजी राव नीलांगेकर पाटिल** बनाम **डा. महेश माधव गोसावी और अन्य**[3] ; और **सामंत और एक अन्य** बनाम **बाम्बे स्टाक एक्सचेंज और अन्य**[4] वाले मामले देखिए)

38. **पंजाब राज्य** बनाम **वी. के. खन्ना और अन्य**[5] वाले मामले में इस न्यायालय ने पक्षपात और दुर्भावना के मुद्दे पर विचार किया है और निम्न मत व्यक्त किया है :–

"'निष्पक्षता', 'युक्तियुक्तता' का पर्यायवाची है - 'पक्षपाती'

---

[1] ए. आई. आर. 1993 एस. सी. 763.
[2] ए. आई. आर. 1982 एस. सी. 65.
[3] ए. आई. आर. 1987 एस. सी. 294.
[4] (2001) 5 एस. सी. सी. 323.
[5] (2001) 2 एस. सी. सी. 330.

का अर्थ 'दुर्भावना' के अर्थ के निकट है जिसका सामान्य अनुक्रम में अर्थ होता है 'विद्वेष' या 'द्वेष' । किसी पर 'पक्षपात' या 'दुर्भावना' का आरोप लगाने के मामले में एक अन्य उन्मोचनकारी संघटक अब सुस्थापित है कि मात्र साधारण कथन करने से दुर्भावना उपदर्शित नहीं होगी । इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अभिलेख पर तर्कसम्मत साक्ष्य होना चाहिए कि क्या वास्तव में पक्षपात या दुर्भावना से कार्य किया गया है या नहीं जिससे अन्याय हुआ है.....लगभग सभी विधिक जांचों में ऐसा आशय जो हेतु से भिन्न है, सबसे महत्वपूर्ण संघटक है और आम बोलचाल में बिना किसी कारण या बहाने के विद्वेषपूर्ण कार्य को आशयित कार्य के समतुल्य माना जाता है ।"

39. जसविंदर सिंह और अन्य बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य और अन्य वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि दुर्भावना साबित करने का भार पूर्ण रूप से उस व्यक्ति पर पड़ा है जिसने उसका अभिकथन किया है । मात्र अभिकथन करना पर्याप्त नहीं है । जो पक्षकार ऐसा अभिकथन करेगा वह न्यायालय के समक्ष विशिष्ट सामग्री प्रस्तुत करने के लिए बाध्य है ताकि उक्त अभिकथन साबित हो सकें ।

40. हमारा यह निष्कर्ष है कि अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री नहीं है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि उच्च न्यायालय तथ्य का यह निष्कर्ष अभिलिखित करने में न्यायोचित था कि अनुशासनिक कार्यवाहियां केवल अपचारी को दंडित करने के पूर्वचिंतन के साथ उसके विरुद्ध आरंभ की गई हैं । इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि जांच अधिकारियों ने सुसंगत रूप से यह निष्कर्ष निकाला है कि अपचारी गंभीर कदाचार कारित करने का दोषी है, ऐसा मत अभिव्यक्त करना पूर्णतया अविवक्षित है विशेषकर इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री नहीं है जो अपचारी द्वारा किए गए ऐसे प्रकथन को साबित कर सके ।

41. दांडिक विधि में भी किसी शिकायत को "दुर्भावना के अर्थहीन अभिवाक् के आधार पर" अनदेखा नहीं किया जा सकता है । "दांडिक अभियोजन यदि अन्यथा भी न्यायोचित हो और समुचित साक्ष्य पर आधारित हो, तब भी वह प्रथम इत्तिलाकर्ता या शिकायतकर्ता की दुर्भावना या राजनीतिक छवि के आधार पर दूषित नहीं हो सकता है ।" (**शिवनंदन पासवान** बनाम **बिहार राज्य और अन्य**[1] ; और **हरियाणा राज्य और अन्य**

---

[1] ए. आई. आर. 1987 एस. सी. 877.

बनाम **चौधरी भजन लाल और अन्य**[1] वाले मामले देखिए)

42. अतः, पूर्वचिंतन का निष्कर्ष अर्थात् अपचारी को दंडित करने के लिए पक्षपाती होना, यह अभिनिर्धारित करते हुए अपास्त किया जाता है कि किसी भी साक्ष्य पर आधारित न होने के कारण यह पूर्णतया अनुचित है ।

43. मामले के तथ्य और परिस्थितियों में, अपील इसमें इसके ऊपर स्पष्ट की गई सीमा तक मंजूर की जाती है । दुर्भावना के संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष अवांछनीय हैं और अपास्त किया जाता है । अतः, यह निष्कर्ष भी कायम रखे जाने योग्य नहीं है कि ईसीएल के सीएमडी विधि की दृष्टि से कार्यवाही आरंभ करने के लिए सक्षम नहीं हैं और इस प्रकार यह निष्कर्ष अपास्त किया जाता है । अपीलार्थी नए सिरे से अनुशासनिक कार्यवाही आरंभ करने अर्थात् नियम, 1978 के अनुसार सक्षम प्राधिकारी द्वारा नए सिरे से आरोप पत्र जारी करने के लिए स्वतंत्र हैं और वे आज से छह मास की अवधि के भीतर सभी परिस्थितियों में कार्यवाहियां पूर्ण करने के लिए स्वतंत्र हैं । यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि अपचारी जांच में भाग नहीं लेता है या सहयोग नहीं करता है तब जांच अधिकारी इस संबंध में कारण अभिलिखित करते हुए एकपक्षीय कार्यवाही कर सकता है ।

44. अंत में, अपचारी ने यह दलील दी है कि इस न्यायालय को उसे यथापूर्व करने और आज तक के बकाया का संदाय करने के लिए निदेश जारी करने चाहिए । अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री बंदोपाध्याय ने दृढ़तापूर्वक यह प्रतिवाद करते हुए अपचारी द्वारा ईप्सित अनुतोष का विरोध किया है कि अपचारी को "कार्य नहीं तो पैसा नहीं" के सिद्धांत के आधार पर पिछली मजदूरी से वंचित किया जाना चाहिए । अपचारी व्यक्तिगत रूप से व्यवसाय कर रहा है अर्थात् सुनियोजित है, इस प्रकार वह पिछली मजदूरी के लिए हकदार नहीं है । यदि यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर भी पहुंचता है कि उच्च न्यायालय ने दंडादेश अपास्त करके न्यायोचित किया है और अब नए सिरे से जांच की जानी चाहिए, तब भी अपचारी को यथापूर्व तो किया ही जा सकता है और उसे निलंबनाधीन रखा जा सकता है और वह उसके मामले को लागू होने वाले सेवा नियमों के अनुसार विद्यमान भत्तों का हकदार होगा । पिछली मजदूरी का प्रश्न अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा विधि के अनुसरण में

---

[1] ए. आई. आर. 1992 एस. सी. 604.

नए सिरे से जांच किए जाने पर ही विनिश्चित किया जाएगा । यह विधि की सुस्थापित प्रतिपादना है कि ऐसे मामलों में नए सिरे से जांच किए जाने का परिणाम पदच्युति की तारीख से संबंधित होता है ।

45. अपीलार्थी की ओर से दी गई यह दलील कि ऐसी तथ्यात्मक स्थिति में जांच किए जाने का परिणाम दंड अधिरोपित किए जाने की तारीख से संबंधित होता है, इस न्यायालय के अनेक निर्णयों द्वारा प्रबलित किया गया है विशेषकर इन मामलों में - **आर. तिरुविरकोलम** बनाम **पीठासीन अधिकारी और एक अन्य**[1]; **पंजाब डेयरी डेवेलपमेंट कार्पोरेशन लिमिटेड और एक अन्य** बनाम **कला सिंह आदि**[2] ; और **ग्रेफाइट इंडिया लिमिटेड और अन्य** बनाम **दुर्गापुर प्रोजेक्ट लिमिटेड और अन्य**[3] ।

46. **प्रबंध निदेशक, ईसीआईएल, हैदराबाद आदि** बनाम **बी. करुणाकर आदि** (उपरोक्त) ; और **भारत संघ** बनाम **वाई. एस. संधु, भूतपूर्व निरीक्षक**[4] वाले मामलों में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि जब अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा अधिनिर्णीत दंड किसी तकनीकी आधार पर न्यायालय/अधिकरण द्वारा अभिखंडित किया जाता है तो, तब प्राधिकारी को नए सिरे से जांच करने का अवसर उस प्रक्रम पर दिया जाना चाहिए जहां अभिकथन किया गया था । तथापि, नए सिरे से जांच करने के प्रयोजन हेतु, अपचारी को यथापूर्व किया जाना चाहिए और उसे निलंबनाधीन रखा जा सकता है । पिछली मजदूरी आदि का प्रश्न नए सिरे से जांच पूर्ण किए जाने के पश्चात् विधि के अनुसरण अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा तय किया जाना चाहिए ।

47. पिछली मजदूरी के हक से संबंधित मुद्दे पर कई बार इस न्यायालय द्वारा विचार किया गया है और सुसंगत रूप से यह अभिनिर्धारित किया गया है कि कर्मचारी पर अधिरोपित दंड न्यायालय या अधिकरण द्वारा अभिखंडित किए जाने के पश्चात् भी पिछली मजदूरी का संदाय वैवेकी बना रहता है । पिछली मजदूरी प्रदत्त करने की शक्ति का प्रयोग न्यायालय/अधिकरण द्वारा मामले के संपूर्ण तथ्यों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए क्योंकि इस संबंध में कोई भी सीधा सूत्र सृजित नहीं किया जा

---

[1] ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 637.

[2] ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 2661.

[3] (1999) 7 एस. सी. सी. 645.

[4] ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 161.

सकता है न ही ऐसे मामलों को सार्वत्रिक नियम लागू होगा । यदि अपचारी को यथापूर्व कर दिया जाए, तब भी वह स्वतः ही पिछली मजदूरी को पाने का हकदार नहीं होगा क्योंकि पिछली मजदूरी पाने का हक यथापूर्व किए जाने से स्वतंत्र है । समुचित प्राधिकारी/न्यायालय या अधिकरण द्वारा तथ्यात्मक पृष्ठभूमि और न्याय के सिद्धांतों और साम्या और शुद्ध अंतःकरण ध्यान में रखे जाने चाहिए । ऐसे मामलों में, न्यायालय या अधिकरण का दृष्टिकोण दृढ़ या यंत्रवत नहीं होना चाहिए अपितु लचीला और वास्तविक होना चाहिए । (**उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम** बनाम **मिट्ठू सिंह**[1] ; **सचिव, अकोला तालुका शिक्षा समिति और एक अन्य** बनाम **शिवाजी और अन्य**[2] ; और **प्रबंध निदेशक बाला साहेब देसाई सहकारी एस. के. लिमिटेड** बनाम **काशीनाथ गणपति कांबले**[3] वाले मामले देखिए)

48. उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए, अपचारी द्वारा ईप्सित इस अनुतोष पर, कि अपीलार्थियों को यह निदेश दिया जाए कि वे आज की तारीख तक प्रथम पदच्युति आदेश की तारीख से पिछली मजदूरी के बकाया का संदाय करें, विचार नहीं किया जा सकता है और खारिज किया जाता है । यदि अपीलार्थी नए सिरे से जांच करना चाहते हैं, तब वे अपचारी को यथापूर्व करने के लिए बाध्य हैं और यदि, अपचारी को निलंबित किया जाता है, तब वह जांच पूरी होने तक की अवधि के लिए आवश्यक भत्ते पाने का हकदार होगा । जांच पूर्ण होने के पश्चात्, अन्य सभी हकदारियां अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा विनिश्चित की जाएंगी, जैसा कि इसमें इसके ऊपर स्पष्ट किया गया है । इन मताभिव्यक्तियों के साथ अपील का निपटारा किया जाता है । खर्चों के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है

अपील खारिज की गई ।

अस.

---

[1] ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 3018.

[2] (2007) 9 एस. सी. सी. 564.

[3] (2009) 2 एस. सी. सी. 288.

[2012] 2 उम. नि. प. 30

उत्तर प्रदेश आवास एवं विकास परिषद् लखनऊ

बनाम

शिव नरायण कुशवाहा

25 अप्रैल, 2011

न्यायमूर्ति आर. वी. रवींद्रन और न्यायमूर्ति ए. के. पटनायक

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 96 और आदेश 41, नियम 11(1) और (4) – प्रारंभिक प्रक्रम पर अपील खारिज करते समय कारण अभिलिखित करने से आदेश 41, नियम 11(4) के अधीन उच्च न्यायालय को अपवाद की सीमा – उच्च न्यायालय सुनवाई के प्रारंभिक प्रक्रम पर प्रथम अपील खारिज कर सकता है, किंतु ऐसी खारिजी कारणों सहित होनी चाहिए – उच्च न्यायालय ने निर्देश न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत प्रतिकर मान्य ठहराते हुए उसके विरुद्ध फाइल अपील कारण सहित आदेश पारित न करने में त्रुटि कारित की – मामला नए सिरे से विनिश्चय किए जाने के लिए वापस भेजा गया ।

प्रस्तुत मामले में अपीलार्थी ने, जिसके फायदे के लिए ग्राम दौलतपुर, जिला कानपुर में कुछ भूमि (प्रत्यर्थियों की भूमि सहित) अर्जित की गई थी, इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की थी जिसमें निर्देश न्यायालय के उस निर्णय को चुनौती दी गई थी जिसके अनुसार प्रत्यर्थियों की अर्जित की गई भूमि के प्रतिकर को 10,250/- रुपए प्रति बीघा से बढ़ाकर 1,10,250/- रुपए प्रति बीघा किया गया था । 1,10,250/- रुपए प्रति बीघा के पंचाट को प्रतिकर के रूप में मान्य ठहराते हुए, इलाहाबाद उच्च न्यायालय के खंड न्यायपीठ के तारीख 20 दिसंबर, 2005 के आक्षेपित अनाख्यापक आदेश द्वारा उक्त अपील संक्षेपतः खारिज कर दी गई । उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि उसने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (संक्षेप में "संहिता" कहा गया है) के आदेश 41, नियम 11 के अधीन प्राप्त शक्ति का प्रयोग करके यह आदेश किया है । उक्त आदेश को विशेष इजाजत द्वारा इस अपील में चुनौती दी गई है । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 में यह उपबंध किया गया है कि वहां के सिवाय जहां इस संहिता के पाठ में या तत्समय

प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा अभिव्यक्त रूप से अन्यथा उपबंधित है, ऐसी प्रत्येक डिक्री की, जो आरंभिक अधिकारिता का प्रयोग करने वाले किसी न्यायालय द्वारा पारित की गई है, अपील उस न्यायालय में होगी, जो ऐसे न्यायालय के विनिश्चयों की अपीलों को सुनने के लिए प्राधिकृत है । संहिता के आदेश 41 के अधीन मूल डिक्रियों से उद्भूत अपीलें विनियमित की गई हैं । सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41, नियम 11(1) उपनियम (1) से यह स्पष्ट है कि अपील न्यायालय प्रारंभिक सुनवाई के पश्चात् विचारण न्यायालय से अभिलेख मंगाए बिना और प्रत्यर्थी को सूचना (नोटिस) जारी किए बिना, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि अपील में कोई सार नहीं है, अपील खारिज कर सकता है । तथापि, उपनियम (1) में यह उल्लेख नहीं किया गया है, कि ऐसी खारिजी बिना कोई कारण दिए की जा सकती है । उपनियम (4) के अधीन यह उपबंध किया गया है कि जहां कोई अपील न्यायालय जो उच्च न्यायालय न हो उपनियम (1) के अधीन किसी अपील को खारिज करता है वहां वह वैसा करने के लिए अपने आधारों को संक्षेप में लेखबद्ध करते हुए निर्णय देगा । अतः उपनियम (4) के अधीन यह उपबंध किया गया है कि यदि अपील न्यायालय उच्च न्यायालय है और वह प्रारंभिक सुनवाई के प्रक्रम पर प्रत्यर्थी को सूचना जारी किए बिना और अभिलेख को मंगाए बिना प्रथम अपील को खारिज करना चाहता है, तब वह न्यायालय औपचारिक संक्षिप्त निर्णय पारित नहीं करेगा जैसाकि अन्य अपील फोरम द्वारा अपेक्षित है । "निर्णय" भले ही संक्षिप्त हो जो उच्च न्यायालय के सिवाय अन्य किसी अपील न्यायालय द्वारा दिया जाना अपेक्षित है, उस न्यायालय को अपने निर्णय में अभिवाकों, अनुतोष की प्रकृति, विचार किए गए मुद्दों और उन पर किए गए विनिश्चय का उल्लेख आवश्यक रूप से करना चाहिए । किंतु उपनियम (4) के अंतर्गत यह उल्लेख नहीं है कि यदि अपील न्यायालय, जिसने अपील खारिज की है, उच्च न्यायालय है, तब वह अपील खारिज करने के लिए कोई भी कारण समनुदेशित न करेगा । नियम 11 के उपनियम (4) के अंतर्गत उच्च न्यायालय को इस संबंध में समर्थ नहीं बनाया गया है कि वह "अपील खारिज की जाती है" जैसा एक पंक्तीय आदेश पारित करते हुए प्रथम अपील खारिज करे । प्रथम अपील खारिज करने वाला उच्च न्यायालय का आदेश पर्याप्त रूप से सकारण होना चाहिए ताकि अपील खारिज किए जाने से संबंधित आधारों पर न्यायालय द्वारा प्रयोग किया गया विवेक प्रकट हो सके और यह साबित हो सके कि उच्च न्यायालय ने आरंभ में ही अपील खारिज करने का अवलंब ले लिया था और उसने यह

निष्कर्ष निकाल लिया था कि यह अपील या तो तंग करने वाली है या पूर्णतया सारहीन है । संहिता के आदेश 41, नियम 11 के अधीन उच्च न्यायालय को निर्णय पारित करने की बाध्यता से मुक्त रखा गया है, परंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि जब वह संक्षेपतः अपील खारिज करे तो संक्षेप में कारण समनुदेशित नहीं करेगा । (पैरा 4, 5 और 6)

जब तक कि आदेश सकारण न हो तब तक किसी भी तरह यह पता नहीं लगाया जा सकता है कि अपील न्यायालय ने, यह विनिश्चित करने के पूर्व कि अपील ग्रहण किए जाने योग्य है या नहीं, अपील पर विचार किया है । चूंकि उच्च न्यायालय के समक्ष की गई अपीलों के निर्णयों के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील करने का सीमित अधिकार उपलब्ध है, इसलिए उच्चतम न्यायालय के लिए यह संभव नहीं होगा कि वह इस पर विचार करे कि क्या उच्च न्यायालय ने अपील उचित रूप से खारिज की या नहीं । अपीलार्थी जिसने ऐसी अपील फाइल करने के लिए कानूनी अधिकार के अनुसरण में प्रथम अपील फाइल की है और आवश्यक न्याय शुल्क का संदाय किया है, वह विधिसम्मत रूप से साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन किए जाने और उठाए गए प्रश्नों पर पुनर्विचार किए जाने की प्रत्याशा कर सकता है परंतु यह तब जबकि अपील करने से संबंधित उपबंधों में अन्यथा उल्लेख न किया गया हो । भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 54 के अधीन निर्देश न्यायालय के अधिनिर्णय से व्यथित पक्षकार निर्देश न्यायालय के अधिनिर्णय के विरुद्ध अपील फाइल करने के विरुद्ध अधिकारितः हकदार है । ऐसी अपीलें जो अधिकतर प्रतिकर या संविभाजन की मात्रा की शुद्धता से संबंधित होती हैं जिनमें तथ्य तथा विधि दोनों ही के प्रश्न उठाए जाते हैं । संहिता के आदेश 41 के उपबंध ऐसी अपीलों को लागू होते हैं । अतः उच्च न्यायालय को चाहिए कि वह, यदि वह सूचना दिए बिना संक्षेपतः अपील खारिज करना चाहता है, संक्षिप्त कारण समनुदेशित करे यद्यपि यह आवश्यक नहीं है कि "संक्षिप्त निर्णय" दिया जाए । ऐसे कानून द्वारा अधिकथित अपेक्षाओं और परिसीमाओं के अध्यधीन जिनके अन्तर्गत अपीलें करने का उपबंध किया गया है, अपीलों का निपटारा उस स्थिति में संक्षेपतः किया जा सकता है जहां ऐसा उपबंध किया गया हो । संक्षिप्त विनिश्चय का अभिप्राय ऐसे विनिश्चय से है जो संक्षेप हो और तत्काल दिया जाए तथा विस्तृत न हो । किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि खारिजी का आदेश कारणरहित हो, क्योंकि कोई ऐसा अपीलनीय आदेश कारणयुक्त ही होना चाहिए । "आरंभ में की गई" खारिजी का अर्थ आरंभ के चरण में

की गई खारिजी से है । संक्षिप्त खारिजी या आरंभ में की गई खारिजी का अर्थ कारण समनुदेशित किए बिना की गई खारिजी से नहीं है । न्यायालय का यह मत है कि अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील में पर्याप्त आधार दिए गए हैं जिन पर गुणता के आधार पर उच्च न्यायालय द्वारा विचार किया जाना चाहिए और वे विनिश्चित किए जाने चाहिए । अतः हम इस अपील को मंजूर करते हैं, उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त करते हैं और गुणता के आधार पर अपील का निपटारा किए जाने के लिए उच्च न्यायालय को इस मामले को भेजते हैं । (पैरा 7, 9 और 12)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2000]	ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 3578 : **जयनमती डे** बनाम **अबानी कांता बरत** ;	8
[1983]	(1983) 4 एस. सी. सी. 223 : **किरणमल जुमेरलाल बौराना मारवाड़ी** बनाम **ज्ञानेबा बाजीराव खोट** ;	8
[1963]	ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 698 : **हरि शंकर** बनाम **राव गिरधारी लाल चौधरी** ।	3

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2011 की सिविल अपील सं. 3615.

2005 की प्रथम अपील सं. 390 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तारीख 20 दिसंबर, 2005 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से — सर्वश्री विश्वजीत सिंह, रीतेश अग्रवाल और अभिन्द्र महेश्वरी

प्रत्यर्थियों की ओर से — सर्वश्री (डा.) मदन शर्मा, विजय कुमार पंडित, जे. पी. त्रिपाठी, सुश्री आशा उपाध्याय, आर. डी. उपाध्याय, संजय विसेन, आशुतोष कुमार शर्मा और गुन्नम वेंकटेश्वर राव

न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश पारित किया ।

आदेश

इजाजत दी जाती है । सुनवाई की गई है ।

2. अपीलार्थी ने, जिसके फायदे के लिए ग्राम दौलतपुर, जिला कानपुर में कुछ भूमि (प्रत्यर्थियों की भूमि सहित) अर्जित की गई थी, इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की थी जिसमें निर्देश न्यायालय के उस निर्णय को चुनौती दी गई थी जिसके अनुसार प्रत्यर्थियों की अर्जित की गई भूमि के प्रतिकर को 10,250/- रुपए प्रति बीघा से बढ़ाकर 1,10,250/- रुपए प्रति बीघा किया गया था । 1,10,250/- रुपए प्रति बीघा के पंचाट को प्रतिकर के रूप में मान्य ठहराते हुए, इलाहाबाद उच्च न्यायालय के खंड न्यायपीठ के तारीख 20 दिसंबर, 2005 के आक्षेपित अनाख्यापक आदेश द्वारा उक्त अपील संक्षेपतः खारिज कर दी गई । उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि उसने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (संक्षेप में "संहिता" कहा गया है) के आदेश 41, नियम 11 के अधीन प्राप्त शक्ति का प्रयोग करके यह आदेश किया है । उक्त आदेश को विशेष इजाजत द्वारा इस अपील में चुनौती दी गई है ।

3. प्रश्नगत अपील भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 की धारा 54 के अधीन फाइल की गई है और इस अधिनियम के अधीन यह उपबंध किया गया है कि इस अधिनियम के अंतर्गत किसी भी कार्यवाही में उच्च न्यायालय के समक्ष निर्देश न्यायालय के पंचाट के विरुद्ध सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों के अध्यधीन जो मूल डिक्रियों के विरुद्ध की गई अपीलों को लागू होते हैं, अपील की जा सकती है । अपील वह कार्यवाही है जिसमें उच्चतर फोरम निचले फोरम के विनिश्चय पर तथ्य और/या विधि के प्रश्न के आधार पर पुनर्विचार करता है जिसे निचले फोरम के विनिश्चय की पुष्टि करने, उलटने, उपांतरित करने या मामले को नए सिरे से विनिश्चय किए जाने के लिए निचले न्यायालय को भेजने की शक्ति प्राप्त होती है । **हरि शंकर** बनाम **राव गिरधारी लाल चौधरी**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है :–

> "जिस व्यक्ति को अपील करने का अधिकार होता है उसे विधि तथा तथ्य के आधार पर पुनः सुने जाने का भी अधिकार होता है परंतु यह तब जबकि अपील के अधिकार को प्रदत्त करने वाला कानून किसी प्रकार पुनः की जाने वाली सुनवाई को सीमित करे, जैसाकि हमने सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन की जाने वाली द्वितीय अपील में देखा है ।"

---

[1] ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 698.

4. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 में यह उपबंध किया गया है कि वहां के सिवाय जहां इस संहिता के पाठ में या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा अभिव्यक्त रूप से अन्यथा उपबंधित है, ऐसी प्रत्येक डिक्री की, जो आरंभिक अधिकारिता का प्रयोग करने वाले किसी न्यायालय द्वारा पारित की गई है, अपील उस न्यायालय में होगी, जो ऐसे न्यायालय के विनिश्चयों की अपीलों को सुनने के लिए प्राधिकृत है । संहिता के आदेश 41 के अधीन मूल डिक्रियों से उद्भूत अपीलें विनियमित की गई हैं । आदेश 41, नियम 11 निचले न्यायालय को सूचना भेजे बिना अपील खारिज करने की शक्ति से संबंधित है और इस धारा के उपनियम (1) और (4) हमारे प्रयोजन के लिए सुसंगत हैं, जो निम्न प्रकार उद्धृत किए जा रहे हैं :–

> "11. **निचले न्यायालय को सूचना भेजे बिना अपील खारिज करने की शक्ति** –
>
> (1) अपील न्यायालय, अपीलार्थी या उसके प्लीडर को सुनने के लिए दिन नियत करने के पश्चात् और यदि वह उस दिन उपसंजात होता है तो तदनुसार उसे सुनने के पश्चात् अपील को खारिज कर सकेगा ।
>
> *** *** ***
>
> (4) जहां कोई अपील न्यायालय को जो उच्च न्यायालय न हो, उपनियम (1) के अधीन किसी अपील को खारिज करता है वहां वह वैसा करने के लिए अपने आधारों को संक्षेप में लेखबद्ध करते हुए निर्णय देगा और निर्णय के अनुसार डिक्री लिखी जाएगी ।"

5. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41, नियम 11(1) उपनियम (1) से यह स्पष्ट है कि अपील न्यायालय प्रारंभिक सुनवाई के पश्चात् विचारण न्यायालय से अभिलेख मंगाए बिना और प्रत्यर्थी को सूचना (नोटिस) जारी किए बिना, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि अपील में कोई सार नहीं है, अपील खारिज कर सकता है । तथापि, उपनियम (1) में यह उल्लेख नहीं किया गया है, कि ऐसी खारिजी बिना कोई कारण दिए की जा सकती है ।

6. उपनियम (4) के अधीन यह उपबंध किया गया है कि जहां कोई अपील न्यायालय जो उच्च न्यायालय न हो उपनियम (1) के अधीन किसी अपील को खारिज करता है वहां वह वैसा करने के लिए अपने आधारों को

संक्षेप में लेखबद्ध करते हुए निर्णय देगा । अतः उपनियम (4) के अधीन यह उपबंध किया गया है कि यदि अपील न्यायालय उच्च न्यायालय है और वह प्रारंभिक सुनवाई के प्रक्रम पर प्रत्यर्थी को सूचना जारी किए बिना और अभिलेख को मंगाए बिना प्रथम अपील को खारिज करना चाहता है, तब वह न्यायालय औपचारिक संक्षिप्त निर्णय पारित नहीं करेगा जैसाकि अन्य अपील फोरम द्वारा अपेक्षित है । "निर्णय" भले ही संक्षिप्त हो जो उच्च न्यायालय के सिवाय अन्य किसी अपील न्यायालय द्वारा दिया जाना अपेक्षित है, उस न्यायालय को अपने निर्णय में अभिवाकों, अनुतोष की प्रकृति, विचार किए गए मुद्दों और उन पर किए गए विनिश्चय का उल्लेख आवश्यक रूप से करना चाहिए । किंतु उपनियम (4) के अंतर्गत यह उल्लेख नहीं है कि यदि अपील न्यायालय, जिसने अपील खारिज की है, उच्च न्यायालय है, तब वह अपील खारिज करने के लिए कोई भी कारण समनुदेशित न करेगा । नियम 11 के उपनियम (4) के अंतर्गत उच्च न्यायालय को इस संबंध में समर्थ नहीं बनाया गया है कि वह "अपील खारिज की जाती है" जैसा एक पंक्तीय आदेश पारित करते हुए प्रथम अपील खारिज करे । प्रथम अपील खारिज करने वाला उच्च न्यायालय का आदेश पर्याप्त रूप से सकारण होना चाहिए ताकि अपील खारिज किए जाने से संबंधित आधारों पर न्यायालय द्वारा प्रयोग किया गया विवेक प्रकट हो सके और यह साबित हो सके कि उच्च न्यायालय ने आरंभ में ही अपील खारिज करने का अवलंब ले लिया था और उसने यह निष्कर्ष निकाल लिया था कि यह अपील या तो तंग करने वाली है या पूर्णतया सारहीन है । संहिता के आदेश 41, नियम 11 के अधीन उच्च न्यायालय को निर्णय पारित करने की बाध्यता से मुक्त रखा गया है, परंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि जब वह संक्षेपतः अपील खारिज करे तो संक्षेप में कारण समनुदेशित नहीं करेगा ।

7. जब तक कि आदेश सकारण न हो तब तक किसी भी तरह यह पता नहीं लगाया जा सकता है कि अपील न्यायालय ने, यह विनिश्चित करने के पूर्व कि अपील ग्रहण किए जाने योग्य है या नहीं, अपील पर विचार किया है । चूंकि उच्च न्यायालय के समक्ष की गई अपीलों के निर्णयों के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील करने का सीमित अधिकार उपलब्ध है, इसलिए उच्चतम न्यायालय के लिए यह संभव नहीं होगा कि वह इस पर विचार करे कि क्या उच्च न्यायालय ने अपील उचित रूप से खारिज की या नहीं । अपीलार्थी जिसने ऐसी अपील फाइल करने के लिए कानूनी अधिकार के अनुसरण में प्रथम अपील फाइल की है और

आवश्यक न्याय शुल्क का संदाय किया है, वह विधिसम्मत रूप से साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन किए जाने और उठाए गए प्रश्नों पर पुनर्विचार किए जाने की प्रत्याशा कर सकता है परंतु यह तब जबकि अपील करने से संबंधित उपबंधों में अन्यथा उल्लेख न किया गया हो ।

8. इस न्यायालय ने कई बार यह मत व्यक्त किया है कि प्रथम अपील संक्षिप्त कारणों के साथ ही खारिज की जानी चाहिए, भले ही वह सुनवाई के आरंभिक प्रक्रम पर ही क्यों न की गई हो । **किरणमल जुमेरलाल बौराना मारवाड़ी** बनाम **ज्ञानेबा बाजीराव खोट**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया :–

> "जैसा कि विधि और तथ्य के बहुत से मुद्दे अपील में उठाए गए प्रतीत होते हैं जिनके संबंध में पुनः हमारे समक्ष चर्चा किए जाने की ईप्सा की गई है पक्षकारों और हमारे बीच निष्पक्षता बनाए रखने के लिए कुछ ऐसे कारण निर्णय में दिखाई देने चाहिए जिनसे यह उपदर्शित हो सके कि उच्च न्यायालय के समक्ष किस संबंध में अपील की गई थी और उनसे विद्वान् विचारण न्यायालय पूर्णतः सहमत हुआ है । यह याद रखना चाहिए कि विचारण न्यायालय के विनिश्चय के विरुद्ध यह प्रथम अपील की गई है और इस अपील में अपीलार्थी विधि के गंभीर प्रश्नों को उठा सकता है और उसने उठाए भी हैं और उसने तथ्यों के आधार पर विनिश्चय पर विवाद भी किया है । अतः हमारा यह मत है कि यह उत्कृष्ट रूप से उचित मामला है जिसे स्वीकार किया जाना चाहिए और गुणता के आधार पर उसका निपटारा किया जाना चाहिए ।"

जयनमती डे बनाम **अबानी कांता बरत**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने इस प्रकार मत व्यक्त किया है :–

> "हमारा यह समाधान नहीं हुआ है कि उच्च न्यायालय ने गुणता के आधार पर अपील पर विचार किया है । यदि आदेश 41, नियम 11 के अधीन खारिजी की गई है और उच्च न्यायालय से ऐसा करने के लिए अपने आधारों को संक्षेप में अभिलिखित करने हेतु उपनियम (4) के अधीन अपेक्षा नहीं की जाती है, अपील न्यायालय को इस संबंध में योग्य बनाना आवश्यक नहीं है कि वह किसी भी प्रकार का कारण

---

[1] (1983) 4 एस. सी. सी. 223.

[2] ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 3578.

अभिलिखित करने से बचे । हमारा यह विचार है कि अपील पर गुणता के आधार पर विचार करना आवश्यक है । अतः हम आक्षेपित आदेश अपास्त करते हैं और यह अपील, उच्च न्यायालय को गुणता के आधार पर और विधि के अनुसरण में कारण देते हुए उसका निपटारा किए जाने के लिए भेजते हैं ।"

9. भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 54 के अधीन निर्देश न्यायालय के अधिनिर्णय से व्यथित पक्षकार निर्देश न्यायालय के अधिनिर्णय के विरुद्ध अपील फाइल करने के विरुद्ध अधिकारितः हकदार है । ऐसी अपीलें जो अधिकतर प्रतिकर या संविभाजन की मात्रा की शुद्धता से संबंधित होती हैं जिनमें तथ्य तथा विधि दोनों ही के प्रश्न उठाए जाते हैं । संहिता के आदेश 41 के उपबंध ऐसी अपीलों को लागू होते हैं । अतः उच्च न्यायालय को चाहिए कि वह, यदि वह सूचना दिए बिना संक्षेपतः अपील खारिज करना चाहता है, संक्षिप्त कारण समनुदेशित करे यद्यपि यह आवश्यक नहीं है कि "संक्षिप्त निर्णय" दिया जाए । ऐसे कानून द्वारा अधिकथित अपेक्षाओं और परिसीमाओं के अध्यधीन जिनके अन्तर्गत अपीलें करने का उपबंध किया गया है, अपीलों का निपटारा उस स्थिति में संक्षेपतः किया जा सकता है जहां ऐसा उपबंध किया गया हो । संक्षिप्त विनिश्चय का अभिप्राय ऐसे विनिश्चय से है जो संक्षेप हो और तत्काल दिया जाए तथा विस्तृत न हो । किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि खारिजी का आदेश कारणरहित हो, क्योंकि कोई ऐसा अपीलनीय आदेश कारणयुक्त ही होना चाहिए । "आरंभ में की गई" खारिजी का अर्थ आरंभ के चरण में की गई खारिजी से है । संक्षिप्त खारिजी या आरंभ में की गई खारिजी का अर्थ कारण समनुदेशित किए बिना की गई खारिजी से नहीं है ।

10. इस मामले में भूमि अर्जन कलक्टर ने 10,250/- रुपये प्रति बीघा प्रतिकर अधिनिर्णीत किया था । निर्देश न्यायालय ने यह प्रतिकर 1,10,250/- रुपये प्रति बीघा अधिनिर्णीत किया था । निर्देश न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि एक बीघा 2250 वर्ग गज के समतुल्य है और उस न्यायालय ने 45/- रुपये प्रति बीघा अधिनिर्णीत किया था । उस आधार पर अर्थात् 45/- रुपये प्रति बीघा के मूल्य पर 2225 वर्ग गज से बने 1 बीघा भूमि का मूल्य 1,01,250/- रुपये होगा न कि 1,10,250/- रुपये । इस प्रकार विस्तृत परीक्षा किए बिना, निर्देश न्यायालय के पंचाट में आमुख से ही त्रुटि स्पष्ट होती है । अपीलार्थी द्वारा उठाए गए अन्य आधार भी विचार किए जाने योग्य हैं विशेषकर इस तथ्य के संबंध में विचार करना

तो आवश्यक है ही कि इसी अधिसूचना से संबंधित निर्देश न्यायालय द्वारा बाजारी मूल्य के इसी प्रकार नियत किए जाने के विरुद्ध बहुत सी अन्य अपीलें उच्च न्यायालय द्वारा पहले ही स्वीकार की जा चुकी हैं और विचाराधीन हैं ।

11. हम मापन (नाप-तौल) की स्थानीय प्रचलित इकाई के प्रयोग से संबंधित एक भिन्न परन्तु सुसंगत पहलू पर विचार करेंगे । मापन की इकाई के रूप में 'बीघा' की परिसीमा भारत के भिन्न भागों में भिन्न है । पी. रामानाथ अय्यर द्वारा लिखित 'द एडवांस लॉ लेक्सीकन' नामक पुस्तक के तृतीय संस्करण, जिल्द 1, पृष्ठ 528 पर यह उल्लिखित है कि उत्तरी भारत में एक बीघा का अर्थ 3025 वर्ग गज भूमि से है जबकि बंगाल में एक बीघा 1600 वर्ग गज भूमि के समतुल्य होता है । हमें यह बताया गया है कि दिल्ली और पंजाब में एक बीघा 1008 वर्ग गज के समतुल्य है । निर्देश न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है एक बीघा 2250 वर्ग गज के समतुल्य है । लोक दस्तावेज, हस्तांतरण विलेख और न्यायिक आदेशों में मापन की उस इकाई का प्रयोग करने की सलाह दी गई है जिसका देश के सभी भागों में समान अर्थ होता हो । उदाहरणार्थ, गुंटा शब्द महाराष्ट्र, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश में 1 एकड़ के एक-चौथाई भाग को प्रचलित रूप से निर्दिष्ट करता है । किन्तु, यह शब्द सभी राज्यों में मापन की एक ही परिसीमा को निर्दिष्ट करता है । इसके प्रतिकूल, 'बीघा' जैसे मापन की इकाई को दर्शाने वाले शब्द के प्रयोग से बचना चाहिए जो विभिन्न राज्यों या एक ही राज्य के विभिन्न भागों में विभिन्न परिसीमाओं को निर्दिष्ट करता है । मापन की मानक इकाई का प्रयोग से ही इसका समाधान होगा । वह इकाई कोई भी हो सकती है ।

12. हमारा यह मत है कि अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील में पर्याप्त आधार दिए गए हैं जिन पर गुणता के आधार पर उच्च न्यायालय द्वारा विचार किया जाना चाहिए और वे विनिश्चित किए जाने चाहिए । अतः हम इस अपील को मंजूर करते हैं, उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त करते हैं और गुणता के आधार पर अपील का निपटारा किए जाने के लिए उच्च न्यायालय को इस मामले को भेजते हैं ।

अपील मंजूर की गई ।

अस.

मृत्युंजय सेत्त (मृतक) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से

बनाम

जादूनाथ बसाक (मृतक) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से

26 अप्रैल, 2011

न्यायमूर्ति (डा.) दलवीर भंडारी और न्यायमूर्ति दीपक वर्मा

पश्चिमी बंगाल परिसर किराया अधिनियम, 1956 (1956 का 12) – धारा 13(6) [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 – धारा 100] – द्वितीय अपील – किराया नियंत्रण और बेदखली – बेदखली डिक्री/आदेश – धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील में हस्तक्षेप किया जाना आवश्यक नहीं है जब विधि का कोई सारभूत प्रश्न उद्भूत न हुआ हो या प्रथम अपीली न्यायालय के निर्णय में कोई अनुचितता न हो – उच्च न्यायालय का निर्णय अपास्त करते हुए निचले न्यायालय का निर्णय बहाल किया गया ।

प्रस्तुत मामले में, हमारे विचार के लिए इस अपील में, यह प्रश्न उद्भूत हुआ है कि क्या अपीलार्थी-भू-स्वामी द्वारा प्रत्यर्थी-किराएदार को पश्चिमी बंगाल परिसर किराएदारी अधिनियम, 1956 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'अधिनियम' निर्दिष्ट किया गया है) की धारा 13(6) के अधीन बेदखली का नोटिस तामील कराया जा सकता है या नहीं, और यह भी प्रश्न उठाया गया है कि क्या उसकी किराएदारी विधिमान्य, विधिक और विधि के अनुसरण में है या नहीं ? अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने अपील न्यायालय के निर्णय और डिक्री में कोई भी अनुचितता नहीं दर्शाई है, फिर भी उच्च न्यायालय ने अत्यंत सारहीन और तुच्छ आधार पर प्रत्यर्थी की द्वितीय अपील मंजूर करने में विधि की घोर त्रुटि कारित की है । यह निर्णय विधि में कायम नहीं रखा जा सकता है और हमारी राय में यह विधि के सुस्थापित सिद्धांतों के विरुद्ध है । (पैरा 21)

मामले को इस प्रकार दृष्टिगत करते हुए, विद्वान् एकल न्यायाधीश का निर्णय और डिक्री विधि के अनुसरण में दिया गया प्रतीत नहीं होता है । सद्भाविक आवश्यकता का अन्य आधार अपीलार्थी के पक्ष में पहले ही अभिनिर्धारित किया जा चुका है । न्यायालय के सुविचारित मत में अपीलार्थी का वाद निचले अपील न्यायालय द्वारा ठीक ही डिक्रीत किया

गया है और यह विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा अपास्त नहीं किया जा सकता था, वह भी तब जब कि उन्होंने इस पर विचार कर लिया हो कि द्वितीय अपील में विधि का कोई भी सारभूत प्रश्न अंतर्वलित नहीं है । इस प्रकार मामले को सभी पहलुओं से दृष्टिगत करते हुए, न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि विद्वान् एकल न्यायाधीश के आक्षेपित निर्णय और डिक्री को विधि की दृष्टि से कायम नहीं रखा जा सकता है । निर्णय और डिक्री एतद्द्वारा अपास्त और अभिखंडित किए जाते हैं । (पैरा 22 और 23)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2006] (2006) 1 एस. सी. सी. 163 :
रामलाल और एक अन्य बनाम **फगुआ और एक अन्य** । 13

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2011 की सिविल अपील सं. 3617.

2005 की विशेष अपील सं. 110 में कलकत्ता उच्च न्यायालय के तारीख 7 फरवरी, 2006 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री ध्रुव मेहता (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्रीराम कृष्णा, (सुश्री) मालाश्री घोष और बी. पी. यादव (श्रीमती सरला चंद्र की ओर से)

प्रत्यर्थी की ओर से —

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति दीपक वर्मा ने दिया ।

न्या. वर्मा – इजाजत दी जाती है ।

2. हमारे विचार के लिए इस अपील में, यह प्रश्न उद्भूत हुआ है कि क्या अपीलार्थी-भू-स्वामी द्वारा प्रत्यर्थी-किराएदार को पश्चिमी बंगाल परिसर किराएदारी अधिनियम, 1956 (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'अधिनियम' निर्दिष्ट किया गया है) की धारा 13(6) के अधीन बेदखली का नोटिस तामील कराया जा सकता है या नहीं, और यह भी प्रश्न उठाया गया है कि क्या उसकी किराएदारी विधिमान्य, विधिक और विधि के अनुसरण में है या नहीं ?

3. वर्तमान अपील जिन तथ्यों के आधार पर उद्भूत हुई है उसके अनावश्यक ब्यौरों का उल्लेख नहीं किया जा रहा है और संक्षेप में तथ्य निम्न प्रकार हैं :–

"मूल अपीलार्थी परिसर जिसकी नगर-निगम सं. 43 एफ और नीलमणि मित्रा स्ट्रीट, कलकत्ता - 700006 है, का स्वामी है । मूल प्रत्यर्थी इस मकान के भूतल पर दो कमरों में किराएदार के रूप में 75/- रुपए मासिक किराए पर रहता था । वर्तमान बेदखली वाद के फाइल करने के पूर्व, अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी को एक नोटिस तामील कराया था जिसमें उसकी किराएदारी अधिनियम की धारा 13(6) के अधीन यथाअनुध्यात तय की गई थी । उक्त नोटिस प्रत्यर्थी को रसीदी रजिस्ट्री डाक द्वारा तारीख 28 अगस्त, 1991 को भेज दिया गया था जिसमें उसे अक्तूबर, 1991 की अंतिम तारीख को या उसके पूर्व परिसर खाली करने का निदेश दिया गया था । उक्त नोटिस प्रत्यर्थी को सम्यक् रूप से तामील कराया गया । उक्त नोटिस में अपीलार्थी द्वारा यह भी प्रकथन किया गया था कि उसे युक्तियुक्त रूप से अपने अधिभोग के लिए उक्त दो कमरों की आवश्यकता है, जो प्रत्यर्थी के अधिभोग में हैं । यह उल्लेखनीय है कि उक्त नोटिस में स्पष्ट रूप से यह उल्लेख किया गया था कि प्रत्यर्थी की किराएदारी अंग्रेजी कैलेंडर के अनुसार चल रही है । उक्त नोटिस में यह भी उल्लेख किया गया था कि अधिनियम के उपबंधों के अधीन नोटिस दिए जाने के अतिरिक्त, यह नोटिस संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 106 के अधीन दिया गया नोटिस भी समझा जाएगा । अभिलेख से यह स्पष्ट नहीं है कि क्या प्रत्यर्थी द्वारा उक्त नोटिस का कोई उत्तर दिया गया है या नहीं किंतु स्पष्टतया वह उक्त नोटिस का अनुपालन करने में असफल रहा है, इसलिए अपीलार्थी को ऊपर उल्लिखित नोटिस में दिए गए आधारों पर तुच्छ मामलों के न्यायालय, कलकत्ता की छठी न्यायपीठ के समक्ष 1992 का बेदखली वाद सं. 124 (जिसे बाद में 2000 का वाद सं. 1612 के रूप में नंबरीकृत किया गया) फाइल करना पड़ा ।"

4. प्रत्यर्थी को न्यायालय द्वारा समन तामील कराए जाने पर, वह न्यायालय में पेश हुआ और उसने अपीलार्थी द्वारा किए गए प्रकथनों से इनकार किया । इस मामले के प्रत्यर्थी ने यह प्रतिवाद किया है कि अपीलार्थी को इस परिसर की पूर्णतया कोई भी युक्तियुक्त आवश्यकता नहीं है और इसके अतिरिक्त उसने यह भी विशिष्ट अभिवाक् किया है कि यह वाद चलने योग्य नहीं है क्योंकि इससे अधिनियम की धारा 13(6) का उल्लंघन होता है जिसमें किराएदारी को तय करने के लिए ठीक एक मास का नोटिस दिए जाने का उपबंध किया गया है क्योंकि किराएदारी अंग्रेजी कैलेंडर के अनुसार नहीं अपितु बंगाली कैलेंडर के अनुसार चल रही थी

और यही प्रकथन और अभिवाक् अपीलार्थी द्वारा किया गया है । इस प्रतिवाद का और अधिक समर्थन करने के लिए प्रत्यर्थी ने प्रश्नगत संपत्ति की भूतपूर्व स्वामी श्रीमती कमला बाला सेठ जो अपीलार्थी के लिए और उसकी ओर से पूर्व में किराया ले रही थी, द्वारा जारी की गई किराए की रसीदों का भरपूर अवलंब लिया है, जिनमें स्पष्ट रूप से यह पृष्ठांकन किया गया है कि किराएदारी बंगाली कैलेंडर के अनुसार चलेगी ।

5. पक्षकारों के अपने-अपने प्रकथनों के आधार पर, विचारण न्यायालय ने विवाद्यक विरचित किए । विवाद्यक सं. 1 और 2 इस प्रश्न से संबंधित है कि अपीलार्थी द्वारा वाद चालाए जाने योग्य है या नहीं और अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी को तामील कराया गया बेदखली का नोटिस विधिमान्य, विधिक और विधि के अनुसरण में है या नहीं ।

6. तथापि, विद्वान् विचारण न्यायालय ने, साक्ष्य अभिलिखित करने और उपलब्ध अभिलेख का परिशीलन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला है कि नोटिस अधिनियम की धारा 13(6) के उपबंधों के अनुसरण में तामील नहीं कराया गया है क्योंकि परिसर खाली करने के लिए प्रत्यर्थी को स्पष्ट रूप से एक मास का समय नहीं दिया गया है । इस प्रकार, यह निष्कर्ष निकाला गया है कि वाद की यह उत्पत्ति त्रुटियुक्त है और इसीलिए वाद मात्र इसी आधार पर खारिज कर दिया गया है, भले ही अपीलार्थी की सद्भावपूर्ण आवश्यकता से संबंधित बेदखली का आधार उसके पक्ष में पाया गया है ।

7. विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर अपीलार्थी, अपील न्यायालय के समक्ष अपील फाइल करने के लिए विवश हो गया । अपील न्यायालय ने मामले पर, विशेषकर उसमें के एक मुद्दे अर्थात् अधिनियम की धारा 13(6) के समाधान के संबंध में, विचार किया है । अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री और इन्हीं पक्षकारों से संबंधित वाद सं. 203/88 में के प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किए गए लिखित कथन की प्रमाणित प्रति पर भी विचार करने पर, अपील न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रत्यर्थी के पक्ष में किराएदारी का अधिकार अंग्रेजी कैलेंडर के अनुसार विनियमित था । तदनुसार, अधिनियम की धारा 13(6) के उपबंधों का पूर्ण रूप से अनुपालन किया गया है । मामले को इस प्रकार दृष्टिगत करते हुए विचारण न्यायालय का निर्णय और डिक्री अपास्त किए गए और वाद परिसर से प्रत्यर्थी की बेदखली किए जाने के लिए अपीलार्थी का वाद उसके पक्ष में डिक्रीत किया गया ।

8. इसके पश्चात् सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (इसमें इसके पश्चात् 'संहिता' निर्दिष्ट किया गया है) की धारा 100 के अधीन 2005 की द्वितीय अपील सं. 110 फाइल करके उच्च न्यायालय में इस आदेश को चुनौती देने की प्रत्यर्थी-प्रतिवादी की बारी आई । आक्षेपित निर्णय से यह प्रतीत होता है कि अपील ज्ञापन में, यद्यपि विधि के बहुत से प्रश्न विरचित किए गए हैं किंतु वाद में विधि के अतिरिक्त सारभूत प्रश्न सं. XIII और XVII विचार के लिए विरचित किए गए जो निम्न प्रकार उद्धृत किए जा रहे हैं :–

> "XIII. यह कि प्रथम अपील न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश को यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए था कि बेदखली का नोटिस (प्रदर्श - 4) विधि की दृष्टि से दोषपूर्ण है और इसके आधार पर कोई भी डिक्री पारित नहीं की जा सकती है क्योंकि उक्त नोटिस इस आधार पर तामील कराया गया था कि किराएदारी अंग्रेजी कैलेंडर के अनुसार चल रही थी जबकि किराए की रसीद [प्रदर्श - बी. (सीरीज) और प्रदर्श - सी.] से स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित होता है कि किराएदारी बंगाली कैलेंडर के अनुसार चल रही थी ।
>
> XVII. यह है कि अपील न्यायालय को अपने समक्ष प्रस्तुत सामग्री के आधार पर यह विचार करना चाहिए था कि परिसर की आंशिक बेदखली से वादी की युक्तियुक्त आवश्यकता पूरी हो जाएगी ।"

9. यहां यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण होगा कि अपील पर विचार करते समय, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह निष्कर्ष निकाला था कि अपील में कोई भी सारभूत प्रश्न अन्तर्वलित नहीं है, फिर भी उन्होंने अपील विनिश्चित की है और वह भी अपीलार्थी के विरुद्ध । इस संबंध में विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा जो मताभिव्यक्तियां की गई हैं उनका उल्लेख किया जाना आवश्यक है, जो निम्न प्रकार है :–

> "ऊपर कथित अनुचिंतन के आधार पर, इस न्यायालय का यह मत है कि इस मामले में विधि का कोई भी सारभूत प्रश्न अन्तर्वलित नहीं है क्योंकि इस मामले में केवल विधि का ही प्रश्न अन्तर्वलित है अर्थात् एक अन्य वाद के लिखित कथन की तुलना में किराए की रसीदों के साक्ष्यिक महत्व को वरीयता देना जिसमें कि यह अभिकथन किया गया है कि प्रतिवादी ने किराएदारी के तरीके को स्वीकार किया है । इसे विधि का सारभूत प्रश्न नहीं कहा जा सकता है ।"

10. वस्तुतः, विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा अभिलिखित किए गए

उक्त स्पष्ट निष्कर्षों के आधार पर प्रत्यर्थी की द्वितीय अपील अवश्य ही खारिज हो जाती किंतु ऐसा करने के बजाय अपील मंजूर की गई है और उसमें प्रत्यर्थी के पक्ष में विधि के उपर्युक्त प्रश्नों का उत्तर दिया गया है । इस प्रकार यह अपील मकान मालिक की ओर से की गई है ।

11. तदनुसार हमने विद्वान् वरिष्ठ अधिवक्ता श्री ध्रुव मेहता को सुना है जिनकी अपीलार्थी की ओर से श्री श्रीराम कृष्णा द्वारा कौशलपूर्वक सहायता की गई है । समाचार-पत्र में प्रकाशित किए जाने सहित विभिन्न तरीकों से प्रत्यर्थी को नोटिस तामील कराए जाने के बावजूद वह न्यायालय में उपस्थित होने में असफल रहा है ।

12. यह उल्लेखनीय है कि इस न्यायालय में अपील के लंबित रहने के दौरान मूल अपीलार्थी और प्रत्यर्थी दोनों ही की मृत्यु हो चुकी है और उनके विधिक प्रतिनिधियों द्वारा उनका प्रतिनिधित्व किया जा रहा है, किंतु पक्षकारों की सुविधा के लिए उन्हें अभी भी अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के रूप में ही निर्दिष्ट किया जाएगा ।

13. यद्यपि आक्षेपित निर्णय और आदेश में, विद्वान् एकल न्यायाधीश निचले अपील न्यायालय के निर्णय और डिक्री में कोई भी अनुचितता दर्शाने में असफल रहे हैं, फिर भी उन्होंने **रामलाल और एक अन्य** बनाम **फगुआ और एक अन्य**[1] वाले मामले में किए गए इस न्यायालय के निर्णय का गलत अवलंब लिया है और उसके आधार पर गलत कार्यवाही की है ।

14. हमने उक्त निर्णय का सावधानीपूर्वक परिशीलन किया है और यह निष्कर्ष निकाला है कि किसी भी स्थिति में, यह निर्णय प्रत्यर्थी के पक्ष में नहीं जाता है और न ही इसके विनिश्चयाधार से प्रत्यर्थी को कोई लाभ पहुंच सकता है । आमतौर पर और मुख्य रूप से यह निर्णय उस प्रतिपादना के संबंध में है कि दो न्यायालयों द्वारा अभिलिखित तथ्यों की समवर्ती निष्कर्षों में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन फाइल की गई द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय द्वारा कैसे और कब हस्तक्षेप किया जा सकता है । उक्त निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यदि ऐसा कोई भी महत्वपूर्ण साक्ष्य जिसका संबंध मामले की गहराई से हो, उस पर निचले दोनों न्यायालयों ने समुचित रूप से विचार नहीं किया है और केवल तभी उच्च न्यायालय दो न्यायालयों के निर्णयों और डिक्रियों को उलटने में न्यायोचित्य कर सकता है अन्यथा नहीं । उपर्युक्त निर्णय में, विवादित

---

[1] (2006) 1 एस. सी. सी. 163.

विक्रय-विलेख से संबंधित प्रश्न उठाया गया है, जैसाकि उसके पैरा 12 और 14 के परिशीलन से स्पष्ट है । इस प्रकार हमारी सुविचारित राय में, विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा अत्यंत गलत तरीके से उपर्युक्त निर्णय का अवलंब लिया गया है ।

15. यद्यपि, इस प्रक्रम पर मामले की गुणता पर विचार करना आवश्यक नहीं है, फिर भी हमारा यह निष्कर्ष है कि विद्वान् एकल न्यायाधीश ने गलत दृष्टिकोण अपनाया है जो उन्होंने श्रीमती कमला बाला सेठ द्वारा प्रत्यर्थी को जारी की गई किराए की रसीदों को उस स्पष्ट और असंदिग्ध स्वीकृति की तुलना में असम्यक् महत्व दिया है जो उसी प्रत्यर्थी द्वारा वाद सं. 203/88 में फाइल किए गए लिखित कथन में की गई थी । उसकी असंदिग्ध स्वीकृति उक्त लिखित कथन के पैरा 6 में इस मामले के साथ सुसंगत है और निम्न प्रकार उद्धृत की जाती है :–

> "यह प्रतिवादी 43/एफ, नीलमणि, मित्रा स्ट्रीट, कलकत्ता-6 पर स्थित प्रतिवादी को किराए पर दिए गए परिसर की उत्तरी बाहरी दीवार का अधिभोग और उसका प्रयोग करने के लिए मकानमालकिन श्रीमती कमला सेठ को 6/- रुपए प्रतिमास की दर से किराए का संदाय कर रहा है । इस प्रतिवादी के पास श्रीमती कमला सेठ के अधीन 43/एफ, नीलमणि, मित्रा स्ट्रीट, कलकत्ता-6 पर स्थित मकान में किराए पर दो कमरे भी हैं जिनका मासिक किराया अंग्रेजी कैलेंडर के अनुसार 75/- रुपए है ।"
>
> (बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

16. प्रत्यर्थी की अपनी स्वीकृति के आधार पर हमें इस संबंध में कोई संदेह नहीं है कि यह संस्वीकृति प्रभावी मानी जाएगी क्योंकि यह वापस नहीं ली गई है और न ही प्रत्यर्थी द्वारा अन्यथा स्पष्ट की गई है । यह भी सुस्थापित है कि न्यायालय में की गई स्वीकृति विधिमान्य और सुसंगत साक्ष्य होता है जिसका प्रयोग अन्य विधिक कार्यवाहियों में किया जा सकता है । स्वीकृति जिस व्यक्ति से उद्भूत होती है उसी के विरुद्ध प्रस्तुत किए जाने की ईप्सा की जाती है, यह साक्ष्य का सबसे अच्छा संभव रूप है । इस मामले के तथ्यात्मक संदर्भ के आधार पर, यहां यह उल्लेखनीय है कि इस मामले में की अपीलार्थी की हित-पूर्वाधिकारी श्रीमती कमला सेठ द्वारा जारी की गई 'किराए की रसीदें' जो प्रत्यर्थी ने अपनी इस दलील को साबित करने के लिए दस्तावेजी साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत की हैं कि किराएदारी बंगाली कैलेंडर के अनुसार चल रही थी, सुनवाई के दौरान उपरोक्त श्रीमती सेठ के परिसाक्ष्य से कभी भी साबित नहीं हुई हैं ।

17. बड़ी विचित्र बात है, यदि साक्ष्य के रूप में श्रीमती कमला सेठ की परीक्षा की गई होती तो यह एक ऐसा उचित मामला होता जिसमें दोनों पक्षकारों को अत्यधिक लाभ होता । यदि श्रीमती सेठ ने प्रत्यर्थी के पक्ष में अभिसाक्ष्य दिया होता तब उसका (प्रत्यर्थी) यह प्रतिवाद कि उसकी किराएदारी बंगाली कैलेंडर के अनुसार चल रही थी, अत्यधिक ठोस हो जाता । इसके प्रतिकूल, हस्तांतरण विलेख से, जो अपीलार्थी और श्रीमती कमला सेठ के बीच निष्पादित किया गया था, यह प्रकट होता है कि प्रत्यर्थी के पक्ष में किराएदारी अंग्रेजी कैलेंडर के अनुसार चल रही थी और यदि श्रीमती सेठ ने इस तथ्य की पुष्टि अपनी परीक्षा के दौरान की होती तो अपीलार्थी का पलड़ा भारी होता ।

18. इस संबंध में किसी भी पक्षकार ने कोई भी विशिष्ट कारण नहीं दिया है कि श्रीमती कमला सेठ को विचारण न्यायालय या निचले अपील न्यायालय के समक्ष साक्षी के रूप में क्यों नहीं पेश किया गया था । अतः, साधारणतया उसके परिसाक्ष्य के बिना इस तथ्यात्मक प्रश्न की तुलना में कि किराएदारी बंगाली कैलेंडर के अनुसार चल रही थी या अंग्रेजी कैलेंडर के अनुसार, प्रत्यर्थी द्वारा प्रस्तुत की गई किराए की रसीदों और अपीलार्थी द्वारा प्रस्तुत किए गए पट्टे विलेख की प्रतियों दोनों का ही साक्ष्यिक महत्व कम है । अन्यथा भी यह उपधारित करते हुए कि श्रीमती कमला सेठ को इस मामले में साक्ष्य के रूप में पेश न किए जाने के लिए विधि सम्मत परिस्थितियां थीं और इस मामले में किराए की रसीद के संबंध में इस साक्षी के अभिकथित प्रकथन (कि किराएदारी बंगाली कैलेंडर के अनुसार चल रही थी) और पट्टा विलेख के संबंध में यह प्रकथन (कि किराएदारी अंग्रेजी कैलेंडर अनुसार चल रही थी), को भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(2) में अंतर्विष्ट विशेष उपबंध लागू होंगे, किसी भी प्रकार इन प्रकथनों में से किसी भी प्रकथन को पूर्ववर्ती वाद में स्वयं प्रत्यर्थी द्वारा दिए गए लिखित कथन में की गई स्वीकृति की तुलना में अधिक महत्व नहीं दिया जा सकता है । इस प्रकार, स्पष्ट रूप से प्रत्यर्थी की स्वीकृति को किराए की रसीदों के रूप में असंपुष्ट दस्तावेजी साक्ष्य की तुलना में अधिक महत्व नहीं दिया जाएगा । धारा 17 के अधीन यही अनुध्यात किया गया है जिसके अन्तर्गत पक्षकार की 'स्वीकृति' को परिभाषित किया गया है और धारा 21 के अधीन भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 में ऐसी स्वीकृति को साबित करने के लिए प्रक्रिया विहित की गई है ।

19. अब यह समझने के लिए कि क्या ऐसा नोटिस जो अधिनियम

की धारा 13(6) के अधीन तामील कराया गया तात्पर्यित है, वह उपर्युक्त उपबंधों के अनुसरण में है या नहीं, हम धारा 13(6) के सुसंगत भाग को इसमें इसके नीचे उद्धृत कर रहे हैं :–

*"धारा 13. बेदखली के विरुद्ध किराएदार की संरक्षा — (1) किसी भी अन्य विधि के प्रतिकूल किसी भी बात के होते हुए किसी भी परिसर का कब्जा प्राप्त करने के लिए कोई भी आदेश या डिक्री किसी भी किराएदार के विरुद्ध मकान मालिक (भू-स्वामी) के पक्ष में निम्न आधारों में एक या अधिक के सिवाय किसी भी न्यायालय के द्वारा पारित नहीं की जाएगी .....

(6) तत्समय प्रवृत्त अन्य किसी भी विधि में किसी भी बात के होते हुए, उपधारा (1) खंड (ञ) और खंड (ट) में उल्लिखित आधारों के सिवाय अन्य खंडों में उल्लिखित किसी भी आधार पर किसी भी परिसर के कब्जे की प्राप्ति की कार्यवाही के लिए मकान मालिक (भू-स्वामी) द्वारा कोई भी वाद तब तक फाइल नहीं किया जाएगा जब तक कि उसने किराएदार को एक मास किराएदारी के मास की समाप्ति का एक मास का नोटिस न दे दिया हो ।"

20. उपर्युक्त उपबंध के अधीन किराएदार को एक मास का नोटिस दिया जाना अपेक्षित है । तारीख 28 अगस्त, 1991 को अपीलार्थी द्वारा भेजे गए तारीख 27 अगस्त, 1991 के नोटिस का परिशीलन करने से यह स्पष्ट

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :–

"Section 13. Protection of tenant against eviction — (1) Notwithstanding anything to the contrary in any other law, no order or decree for the recovery of possession of any premises shall be made by any Court in favour of the landlord against a tenant except on one or more of the following grounds namely .....

(6) Notwithstanding anything in any other law for the time being in force, no suit of proceeding for the recovery of possession of any premises on any of the grounds mentioned in sub-section (1) except the grounds mentioned in clauses (i) and (k) of that sub-section shall be filed by the landlord unless he has given to the tenant one month's notice expiring with a month of the tenancy."

हो जाता है कि एक मास का स्पष्ट नोटिस प्रत्यर्थी को दिया गया था जिसमें उससे परिसर को खाली करने की ईप्सा की गई थी । इस प्रकार पश्चिमी बंगाल परिसर किराएदारी अधिनियम, 1956 की धारा 13(6) का अनुपालन किया गया है और जब एक बार प्रत्यर्थी की किराएदारी का पर्यवसान कर दिया गया है, तब इसका उसके द्वारा अनुपालन न किए जाने पर वाद चलाए जाने योग्य है ।

21. उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने अपील न्यायालय के निर्णय और डिक्री में कोई भी अनुचितता नहीं दर्शाई है, फिर भी उच्च न्यायालय ने अत्यंत सारहीन और तुच्छ आधार पर प्रत्यर्थी की द्वितीय अपील मंजूर करने में विधि की घोर त्रुटि कारित की है । यह निर्णय विधि में कायम नहीं रखा जा सकता है और हमारी राय में यह विधि के सुस्थापित सिद्धांतों के विरुद्ध है ।

22. मामले को इस प्रकार दृष्टिगत करते हुए, विद्वान् एकल न्यायाधीश का निर्णय और डिक्री विधि के अनुसरण में दिया गया प्रतीत नहीं होता है । सद्भाविक आवश्यकता का अन्य आधार अपीलार्थी के पक्ष में पहले ही अभिनिर्धारित किया जा चुका है । हमारी सुविचारित मत में अपीलार्थी का वाद निचले अपील न्यायालय द्वारा ठीक ही डिक्रीत किया गया है और यह विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा अपास्त नहीं किया जा सकता था, वह भी तब जब कि उन्होंने इस पर विचार कर लिया हो कि द्वितीय अपील में विधि का कोई भी सारभूत प्रश्न अंतर्वलित नहीं है ।

23. इस प्रकार मामले को सभी पहलुओं से दृष्टिगत करते हुए, हमारा यह सुविचारित मत है कि विद्वान् एकल न्यायाधीश के आक्षेपित निर्णय और डिक्री को विधि की दृष्टि से कायम नहीं रखा जा सकता है । निर्णय और डिक्री एतद्द्वारा अपास्त और अभिखंडित किए जाते हैं । निचले अपील न्यायालय का निर्णय और डिक्री एतद्द्वारा प्रत्याहृत किए जाते हैं और बेदखली के लिए किया गया अपीलार्थी का वाद डिक्रीत किया जाता है । इस प्रकार अपील मंजूर की जाती है ।

24. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में पक्षकार अपने-अपने खर्चे स्वयं वहन करेंगे ।

अपील मंजूर की गई ।

अस.

[2012] 2 उम. नि. प. 50

नूरूल हुदा मकबूल अहमद

बनाम

राम देव त्यागी

4 जुलाई, 2011

न्यायमूर्ति वी. एस. सिरपुरकर और न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302/34, 143, 144, 145, 147, 149, 307/34 और 120-ख [सपठित आयुध अधिनियम, 1959 – धारा 325 और 327] – उपद्रवियों द्वारा पवन (सुलेमान बेकरी) के भीतर से पुलिस पर गोली-बारी करना तथा बम इत्यादि फेंकना – पुलिस अधिकारियों पर गोली-बारी करने का आरोप लगाया जाना, जबकि कुछ आरोपित पुलिस अधिकारियों द्वारा एक भी गोली नहीं चलाई गई – अभियुक्त पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध निर्दोष व्यक्तियों की हत्या करने का सामान्य उद्देश्य और आशय साबित न होने पर उनके उन्मोचन के विचारण न्यायालय का आदेश मान्य ठहराया गया ।

प्रस्तुत मामले में राम देव त्यागी (अभियुक्त सं. 1), लहाने भगवान व्यंकाटरो (अभियुक्त सं. 2), सावंत सुभाष नामदेव (अभियुक्त सं. 4), संतोष एस. कोयंडे (अभियुक्त सं. 6), चंद्रकांत बी. राउत (अभियुक्त सं. 8), अनिल नारायण धोले (अभियुक्त सं. 14), सतीश कुमार बी. नायक (अभियुक्त सं. 15), गणेश भास्कर सतवासे (अभियुक्त सं. 16) और अनंत केशव इंगले (अभियुक्त सं. 17) द्वारा फाइल किए गए उन्मोचन आवेदन को मंजूर करने वाले अपर सेशन न्यायाधीश, ग्रेटर मुम्बई द्वारा पारित आदेश की पुष्टि करते हुए मुम्बई उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को इस अपील में चुनौती दी गई है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अभियुक्तों पर यह हेतुक अभ्यारोपित किए गए हैं कि उन्हें दिए गए प्राधिकार का उन्होंने असम्यक् फायदा उठाया था और 9 निर्दोष व्यक्तियों की मृत्यु कारित करने के लिए शक्ति का दुरुपयोग किया था । इस प्रथम इत्तिला सूचना पर प्रबलता से अवलंब लेते हुए श्री प्रधान ने यह उल्लेख किया कि डोंगरी पुलिस थाने में प्रथम इत्तिला सूचना के आधार पर अभियोजन और कुछ नहीं अपितु पुलिस द्वारा स्वयं को बचाने के लिए एक कहानी गढ़ी गई थी जिससे कि सुलेमान बेकरी में गोली-बारी को

न्यायोचित ठहाराया जा सके । इस संबंध में कोई विवाद नहीं है कि प्रथम इत्तिला सूचना प्रबलता से जांच आयोग के समक्ष दिए गए साक्ष्य पर अवलंबित है । जब हम धारा 227 के अधीन आवेदन को देखते हैं और विशेष रूप से प्रथम अभियुक्त द्वारा किए गए आवेदन को देखते हुए, तब यह तद्धीन उल्लेख किया गया है कि उन दंगों में 1500 व्यक्तियों से अधिक की मृत्यु हुई थी और करोड़ों रुपए की संपत्ति को क्षति पहुंची थी । यह उल्लेख किया गया है कि संपूर्ण पुलिस बल अत्यंत ही दबाव के अधीन कार्य कर रहा था और उन दंगों के दौरान सात पुलिस अधिकारियों की मृत्यु हुई थी और 496 अधिकारी/पुलिसकर्मी क्षतिग्रस्त हुए थे । यह भी उल्लेख किया गया था कि अत्याधुनिक अग्न्यास्त्रों और अन्य भीषण बमों का उग्र भीड़ द्वारा प्रयोग किया गया था और पुलिस अधिकारियों को स्थिति को नियंत्रण करने के लिए घोर प्रयास करने पड़े थे और उग्र भीड़ द्वारा पुलिस को गंभीरता से निशाना बनाया गया था । डोंगरी, पिधोनी, नागपदा और अग्रीपदा पुलिस थानों के प्रति एक विस्तृत संदर्भ किया गया है जो कि मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्र थे और साम्प्रदायिक रूप से अतिसंवेदनशील थे । आवेदन में इसके अतिरिक्त पुलिस पर गोली-बारी करते हुए उन पर फेंके गए बमों का भी संदर्भ लिया गया है । तारीख 9 जनवरी को लगभग यह विनिर्दिष्ट रूप से दलील दी गई है कि पुलिस आयुक्त और प्रत्यर्थी सं. 1 संबंधित क्षेत्र में गश्त कर रहे थे । स्थिति अत्यंत ही उग्र और विस्फोटक हो गई थी विशेष रूप से ऊपर उल्लेख किए गए चार पुलिस थानों के क्षेत्रों में और इसलिए एक वायरलेस संदेश आयुक्त को भेजा गया था कि लगभग एक गृह युद्ध जैसी स्थिति उत्पन्न हो गई थी और वस्तुतः क्षेत्र को सेना को सुपुर्द करने का विचार किया गया था । पुलिस आयुक्त क्षेत्र की ओर एक बैठक में सम्मिलित होने गए थे जबकि प्रत्यर्थी सं. 1 विशेष ऑपरेशन दल के साथ वहां पहुंचे थे जबकि अभियोजन साक्षी अजीज देशमुख पिधोनी क्षेत्र में सतत् रूप से गश्त कर रहे थे । अभियोजन साक्षी अजीत देशमुख के कथन पर अवलंब लेते हुए, इसके अतिरिक्त यह उल्लेख किया गया है कि शरारती तत्व सुलेमान बेकरी के छत के ऊपर से चुनौती दे रहे थे । उन्होंने विशेष ऑपरेशन दस्ते की ओर एक बार गोली चलाए जाने का उल्लेख किया है जब वे गाड़ी से उतर रहे थे । अजीत देशमुख द्वारा आत्मरक्षा में अपने सर्विस रिवाल्वर से बदले में गोली चलाए जाने का भी संदर्भ लिया गया है । अनंत केशव इंगले सेशन न्यायालय के समक्ष अभियुक्त सं. 17 द्वारा एक दुकान के ऊपर से की गई बातचीत का भी संदर्भ लिया गया है और इसकी भी पुष्टि की गई है कि शरारती तत्व

स्वचलित अग्न्यास्त्रों का प्रयोग कर रहे थे और तीन व्यक्तियों के पास रिवाल्वर थी । इसके आगे एक प्रविष्टि के प्रति उल्लेख किया गया है जो इसके अतिरिक्त तथ्य पर मुख्य रूप से आधारित थी कि साक्षी देशमुख के बाएं हाथ पर क्षति पहुंची थी क्योंकि उसके हाथ पर कांच की बोतल जैसी एक कठोर वस्तु से चोट पहुंचाई थी और इस परिस्थिति में दरवाजे को तोड़ने का आदेश किया गया था । इससे क्षतिग्रस्त व्यक्तियों के प्रति भी एक उल्लेख किया गया है जिन्होंने छलांग लगाई थी और इसके आगे अभिरक्षा में लिए गए व्यक्तियों के विरुद्ध अन्वेषण किए जाने का भी उल्लेख किया गया है । आयोग में इस सिफारिश की एक प्रति का भी सदंर्भ किया गया है कि आर. डी. त्यागी (इसमें यहां अभियुक्त सं. 1) के विरुद्ध कोई अभियोजन प्रारंभ नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि उन्होंने पदीय कर्तव्य के निर्वहन में कार्य किया था । अपने आवेदन में श्री आर. डी. त्यागी ने अपने कर्तव्यों के निर्वहन में कार्य करने की प्रतिरक्षा ली थी । यह भी उल्लेख किया गया था कि अभियुक्त स्वतः नहीं गया था अपितु एक वायरलेस संदेश के उत्तर में गया था और वहां पहुंचने पर उस पर गोली चलाई गई थी और साक्षी अजीत देशमुख पर भी गोली चलाई गई थी । इसके आगे यह उल्लेख किया गया था कि आर. डी. त्यागी ने भी सुलेमान बेकरी की छत के ऊपर शरारती तत्वों द्वारा हथियार लिए हुए होने को देखा था । यह भी उल्लेख किया गया है कि सूचना अन्य पुलिस चौकी से सत्यापित कराई गई थी और इसमें यहां प्रत्यर्थी सं. 1 ने पूरी सतर्कता बरती थी और उन्होंने सुलेमान बेकरी में शरारती तत्वों को चेतावनियां जारी की थीं और उन्हें आत्मसमर्पण करने को कहा था और जब इन सभी का कोई परिणाम नहीं निकला, तब बल का प्रयोग करते हुए बेकरी का दरवाजा तोड़ने का आदेश किया गया था । यह भी उल्लेख किया गया है कि अजीत देशमुख पर एक मिसाइल से भी गंभीर चोट पहुंची थी और इसलिए और कोई अनुकल्प न होने के कारण कार्रवाई करनी पड़ी थी । यह इस आधार पर है कि आवेदन किया गया था । कानूनी दलीलों के द्वारा यह तर्क किया गया था कि सुलेमान बेकरी में घटनाओं के संबंध में बेकरी पुलिस थानों पर एक प्रथम इत्तिला सूचना पहले ही दर्ज कराई गई थी, इसलिए इसी घटना के संबंध में कोई दूसरी प्रथम इत्तिला सूचना नहीं हो सकी थी । मुम्बई पुलिस अधिनियम की धारा 161 के अधीन भी कार्रवाई की गई थी । धारा 197 के अधीन भी कार्रवाई की गई थी विशेष रूप से श्री आर. डी. त्यागी के संबंध में । सिविल सेवा नियम को भी लागू किया गया था जो यह इंगित करते हैं कि 1997 में उनकी सेवानिवृत्ति के पश्चात्

उनके विरुद्ध अब कार्यवाही नहीं की जा सकती । लगभग इसी प्रभाव का एक तनिक भिन्नता के साथ अभियुक्त सं. 2 से 18 द्वारा अन्य आवेदन किए गए थे । (पैरा 10)

यह निर्विवादित है और श्री प्रधान द्वारा इस पर वस्तुतः कोई विवाद नहीं किया गया था कि तारीख 9 जनवरी, 1993 को मुम्बई में स्थिति अत्यंत ही विस्फोटक थी यद्यपि श्री प्रधान ने इस पर जोर दिया कि कर्फ्यू के कारण वहां पर पूर्ण शांति और व्यवस्था थी । उपलब्ध सामग्री जो यह इंगित करती है कि उपद्रवी सड़क पर आने के द्वारा कर्फ्यू का उल्लंघन करने का प्रयास कर रहे थे और महिलाओं को अपनी ढाल बना रहे थे और उपद्रवियों के कहने पर वहां पर लगातार प्रबोधन किए जा रहे थे और वह लोगों को कर्फ्यू का उल्लंघन करने के लिए सड़क पर आने को प्रोत्साहित कर रहे थे, के आधार पर कम से कम इस निष्कर्ष पर पहुंचना संभव नहीं है । सुलेमान बेकरी के सामने पुलिस चौकी की विद्यमानता और पुलिस चौकी से पिधोनी पुलिस थाने पर नियंत्रण कक्ष पर बातचीत से यह स्पष्ट होगा कि वहां पर स्थिति कितनी गंभीर थी । विचारण न्यायालय ने इसके पश्चात् संपूर्ण संदेश को उत्कथित किया जिसके आधार पर विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि सुलेमान बेकरी की छत से गोली-बारी की गई थी और अन्दर से दरवाजा बंद था और बार-बार आदेशों के बावजूद भवन में रहने वालों ने दरवाजा खोलने से इनकार किया और इसलिए आर. डी. त्यागी ने उपद्रवियों को पकड़ने के लिए दरवाजे को तोड़कर खोलने का आदेश विशेष दस्ते को दिया । इसके पश्चात् न्यायालय ने यह इंगित करने के लिए पुलिस रिपोर्ट को स्वीकारा कि सात अभियुक्तों ने एक भी गोली नहीं चलाई थी । इसके आधार पर विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकला कि यद्यपि पुलिस अधिकारियों के पास 638 चक्र गोलियां कब्जे में थीं, उनमें से कुछ ने एक से सात चक्र गोलियां चलाईं जबकि कुछ अन्यों ने एक चक्र गोली भी नहीं चलाई थी । न्यायालय ने सुलेमान बेकरी के अन्दर के व्यक्तियों के कथन पर भी अवलंब लिया और यह निष्कर्ष निकाला कि पुलिसकर्मी भवन के अन्दर रहने वालों की हत्या करने के आशय से अन्दर प्रविष्ट नहीं हुए थे । विचारण न्यायालय ने इसके पश्चात् भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 34 को लागू होने को अपवर्जित किया और इस बात की संभावना को दूर किया कि विशेष ऑपरेशन दस्ते ने निर्दोष व्यक्तियों पर गोली-बारी चलाने और उनकी हत्या करने का कोई पूर्व नियोजित योजना बनाई थी । विचारण न्यायालय ने दरवाजों को तोड़कर खोलने के लिए आर. डी. त्यागी द्वारा जारी किए आदेशों का भी विश्लेषण किया है और यह निष्कर्ष निकाला कि वह दरवाजों को

तोड़कर खोलने का निदेश देने में न्यायानुमत थे । विचारण न्यायालय ने अजीत देशमुख, ए. पी. आई. के कथन पर भी अवलंब लिया जो एक क्षतिग्रस्त पुलिस अधिकारी था और अंततः यह निष्कर्ष निकाला कि दंड संहिता, 1860 की धारा 34 को लागू होने का प्रश्न वहां पर विशेष रूप से इसलिए नहीं था कि जब संयुक्त आयुक्त अभियुक्त सं. 1 ने विशेष ऑपरेशन दस्ता की सुरक्षा के लिए सावधानी बरतने का निदेश दिया था और उनके विनिर्दिष्ट रूप से न्यूनतम बल प्रयोग करने का निदेश दिया था । यह इस आधार पर है कि विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि यदि प्रवेश के पश्चात् भी उन पर अभियुक्तों ने एक भी गोली नहीं चलाई थी, वे स्पष्ट रूप से अपने कर्तव्यों के निर्वहन में कार्य कर रहे थे और इसलिए वे मुम्बई पुलिस अधिनियम की धारा 161 के अधीन संरक्षा पाने के लिए हकदार थे । विचारण न्यायालय ने पाया कि पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध कोई न्यायोचित मामला नहीं था जिन्होंने ऐसी उग्र स्थिति में भी पूर्णतया कोई गोली-बारी नहीं की थी । इस तथ्य को भी विचार में लिया गया था कि जिन व्यक्तियों की मृत्यु हुई थी उन्हें केवल बंदूक की गोलियों से पहुंची क्षतियों के परिणामस्वरूप मृत्यु हुई थी और अभियुक्तों ने एक भी गोली नहीं चलाई थी । (पैरा 11)

उच्च न्यायालय द्वारा तत्पश्चात् एक अत्यंत ही सुसंगत मत व्यक्त किया गया है कि अभियोजन के कथनों या परिस्थितियों या दस्तावेजों की सत्यता को प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा चुनौती नहीं दी गई है । इसके पश्चात् उच्च न्यायालय दंड संहिता, 1860 की धारा 34 की व्यापकता और इसी भांति दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 47(2) की व्यापकता पर भी विचार करने के लिए अग्रसर हुआ । इसके पश्चात् उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा किए गए अनुकल्पी तर्क की परिधि पर भी विचार किया कि मामले को आर. डी. त्यागी और अन्य अभियुक्तों जो उन्मोचित किए गए थे के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 111 के अधीन और धारा 113 सपठित धारा 442 के अधीन नए आरोपों को जोड़ने के लिए प्रतिप्रेषित किया जाना चाहिए । अंततः उच्च न्यायालय ने तर्क को नामंजूर किया और हमारे मत में ऐसा सही तौर पर किया । उच्च न्यायालय द्वारा धारा 107 भी निर्दिष्ट की गई थी । इस संबंध में उच्च न्यायालय ने सही तौर पर यह निष्कर्ष निकाला कि आर. डी. त्यागी (उच्च न्यायालय के समक्ष अभियुक्त सं. 2) और अन्य प्रत्यर्थियों के कृत्य दंड संहिता की धारा 107 के अधीन नहीं आते थे, क्योंकि धारा 107 के अधीन इससे अध्यपेक्षाओं में से कोई भी पूरी नहीं की गई थी । श्री प्रधान ने भी हमारे समक्ष उक्त मुद्दे पर बल नहीं दिया था । (पैरा 13)

हमने मामले में श्री प्रधान द्वारा गहराई से किए गए तर्क का अवलोकन

करने के पश्चात् श्री प्रधान को दंड संहिता, 1860 की धारा 34 को लागू होने का औचित्य स्पष्ट करने के लिए उन्हें कहा, विशेष रूप से अभियुक्त सं. 1 के संबंध में और उन अभियुक्तों के संबंध में जिन्होंने एक भी गोली नहीं चलाई थी । प्रथमतया दरवाजे को तोड़कर खोलने के प्रश्न पर विचार करते हुए इस संबंध में कोई विवाद नहीं हो सकता कि अभिलेख पर यह सुझाने के लिए कुछ भी नहीं है कि सुलेमान बेकरी में सब कुछ ठीक था और उसके परिसर के भीतर भारी अशांति चल रही थी । इस तथ्य के संबंध में भी कोई विवाद नहीं हो सकता कि वायरलेस संदेश भेजे गए थे और उनके आधार पर विशेष ऑपरेशन दस्ते द्वारा कार्रवाई की गई थी जिसका प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा नेतृत्व किया जा रहा था । इसलिए न्यायालय के मत में अभियुक्त सं. 1 सुलेमान बेकरी के सामने के दरवाजों को तोड़कर खोलने का निदेश देने में निश्चित रूप से न्यायानुमत था । हमने स्वयं अभिलेख की परीक्षा की है जो यह सुझाता है कि पुलिसकर्मियों ने दरवाजा खोलने का निदेश दिया था किन्तु वह खोला नहीं गया था । श्री प्रधान ने ऋजुतापूर्वक यह स्वीकार किया था कि सुलेमान बेकरी में व्यक्ति थे । उनकी अकेली दलील यह है कि वे वहां पर कोई रिष्टि कारित नहीं किए थे । अभिलेख पर की सामग्री के आधार पर यह स्पष्ट था कि पुलिस पर मिसाइलें फेंकी जा रहीं थी क्योंकि सहायक पुलिस निरीक्षक श्री देशमुख वस्तुतः क्षतिग्रस्त हुए थे और यह समर्थन करने के लिए सामग्री भी उस स्थिति में जब दरवाजों को तोड़ने के पश्चात् पुलिसकर्मियों ने प्रवेश किया था और तब भी कुछ पुलिसकर्मियों ने गोलियां नहीं चलाई थीं, उन पर निश्चित रूप से सामान्य आशय नहीं थोपा जा सकता है । हमारे मत में, विचारण न्यायालय और इसी भांति पुनरीक्षण न्यायालय पहले ही यह मत व्यक्त कर चुके हैं कि जिन्होंने एक भी गोली नहीं चलाई थी उन पर कोई सामान्य आशय में भागीदारी लिया जाना नहीं कहा जा सकता । श्री प्रधान ने अभियोजन को दावे के इस खोखलेपन को देखा कि इन व्यक्तियों को दंड संहिता की धारा 34 की सहायता से मामले में फंसाया जा सकता है । इसलिए उन्होंने यह दलील दी कि कम से कम दरवाजा तोड़कर खोलने के समय तक पुलिस का जमाव विधिपूर्ण उद्देश्य के साथ था क्योंकि उनका यह कर्तव्य था, किन्तु उन्हें सुलेमान बेकरी का दरवाजा तोड़कर खोलना और उसमें अतिचार नहीं करना चाहिए था और वे सभी व्यक्ति जिन्होंने सुलेमान बेकरी में प्रवेश किया उन्होंने एक अवैधपूर्ण जमाव गठित किया क्योंकि उन्होंने अवैध रूप से सुलेमान बेकरी में अतिचार किया था चूंकि इसमें यहां अभियुक्त सं. 1 श्री त्यागी ने उन्हें दरवाजों को तोड़कर खोलने का आदेश दिया था और वे भी उस अवैधपूर्ण जमाव का भाग थे जिसका सामान्य उद्देश्य

था । अब प्रश्न यह है कि क्या यह जमाव अवैधपूर्ण जमाव कहा जा सकता है । इस संबंध में कोई विवाद नहीं हो सकता कि वे सभी विशेष ऑपरेशन दस्ते के सदस्य थे और उनका दंगों को दबाने का कर्तव्य था । उनके पहुंचने में और दंगों को नियंत्रण करने के प्रयास करने में कुछ भी अवैध कार्य नहीं किया गया था । यह भी निर्विवादित है कि श्री प्रधान द्वारा इसमें भी कोई विवाद नहीं किया गया है कि दंगे निस्संदेह चल रहे थे । हम सीधे श्री प्रधान के दावे को नामंजूर करते हैं कि वहां पर हर तरफ शांति और मौन था और तब भी विशेष ऑपरेशन दस्ता वहां पर पहुंचा था । विचारण न्यायालय और पुनरीक्षण न्यायालय और यहां तक कि हमारे लिए भी यह विश्वास करने के लिए कोई कारण नहीं था कि विशेष ऑपरेशन दस्ता आगे के संकटों (कठिनाइयों) की किन्हीं आशंका के बिना अपने स्वयं की ओर से वहां पर पहुंचा था । वे आशंकाएं वायरलेस संदेश में पर्याप्त रूप से दृश्यमान हैं जिनमें विचारण न्यायालय ने पूर्णतया अवलंब लिया और हमारे मत में यह सही तौर पर लिया गया था । इसलिए यह अभिनिर्धारित करने का कोई औचित्य नहीं है कि स्वयं विशेष ऑपरेशन दस्ता एक अवैधपूर्ण जमाव था । (पैरा 14)

आगे का प्रश्न विशेष ऑपरेशन दस्ते के उद्देश्य के संबंध में है । एक बेतुका तर्क दिया गया था कि विशेष ऑपरेशन दस्ता वहां पर दंगाइयों को सबक सिखाने के लिए गया था । इस संबंध में पूर्णतया कोई सामग्री नहीं है । श्री त्यागी का एक विशेष समुदाय के प्रति वैरभाव जो कोई भी हो, रखने का कोई कारण मात्र इसलिए नहीं था कि वह एक भिन्न समुदाय से संबंधित व्यक्ति थे । अभिलेख पर यह सुझाने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि विशेष ऑपरेशन दस्ताकर्मियों में से किसी का कोई वैयक्तिक पक्ष (दृष्टिकोण) भी था इसलिए कम से कम उस समय तक जमाव के अवैधपूर्ण होने का प्रश्न नहीं हो सकता है । पुनः यदि प्रथम अभियुक्त ने दरवाजे को तोड़कर खोलने का निदेश दिया था, तब उनका इसके पहले एक दृढ़ कारण था । दंगों को शांत करना और दंगाइयों पर नियंत्रण करने का उनका कार्य और कर्तव्य था । इसके अनुसरण में उन्होंने दरवाजे को तोड़कर खोलने का आदेश दिया था । हमारे मत में, वह ऐसा करने में पूर्णतया न्यायानुमत थे । यदि उन्होंने विशेष ऑपरेशन दस्ते को दरवाजे को तोड़कर खोलने का आदेश दिया था तब उनके लिए और कोई विकल्प नहीं था सिवाय दरवाजे को तोड़कर खोलने का । इसलिए दरवाजे को तोड़कर खोलने में उन्होंने कोई अवैधता कारित नहीं की थी । एक बार दरवाजे को तोड़ दिए जाने पर उन्हें उसमें प्रवेश करना था । इसलिए प्रविष्टि अतिचार

नहीं की जा सकती है । कोई अतिचार आपराधिक अतिचार बन जाता है यदि यह किसी को गुस्सा दिलाने के आशय से या कुछ अवैध कार्य करने के आशय से किया जाता है जैसाकि यहां पर मामला नहीं है । वहां पर आपराधिक अतिचार गठित करने वाली तथाकथित प्रविष्टि का कोई प्रश्न नहीं था । यदि कुछ सदस्यों ने एक भी गोली नहीं चलाई थी, तब क्या यह कहा जा सकता है कि उनका निर्दोष व्यक्तियों की हत्या करने का एक सामान्य उद्देश्य था ? जिन्होंने गोलियां चलाई थीं और मृत्यु कारित की थी, क्या वह कृत्य हत्या की कोटि में आएगा यह पूर्णतया एक भिन्न प्रश्न है । यह साक्ष्य के आधार पर साबित किया जाएगा कि उनका ऐसा कार्य करने का आशय था या उन्होंने अपनी शक्तियों के आधिक्य में कार्य किया था, यह विशुद्ध रूप से साक्ष्य का विषय है । किन्तु उन व्यक्तियों के मामले में जिन्होंने एक भी गोली नहीं चलाई थी, यह कहा जाना चाहिए कि उनका सामान्य आपत्ति थी या उनकी हत्या करने के आशय का सामान्य उद्देश्य था । कुल मिलाकर पुलिस जिसने प्रवेश किया उनके स्वयं के जीवन को जोखिम था । अभिलेख पर यह सुझाने के लिए साक्ष्य है कि उपद्रवी मूकदर्शक नहीं थे या बिना कोई रिष्टि किए वहां पर छिपे हुए नहीं थे । इन परिस्थितियों के अधीन, यदि उस उग्र स्थिति में भी कुछ पुलिसकर्मियों ने एक भी गोली नहीं चलाई थी तब क्या उन्हें कुछ अन्यों द्वारा किए गए कृत्य के लिए प्रतिनिधिक रूप से दायी बनाया जा सकता है जबकि वे कृत्य व्यक्तियों की हत्या करने की सामान्य उद्देश्य के साथ होना भी दर्शित नहीं किए गए हैं ? उत्तर नकारात्मक होना चाहिए । इसलिए हमारे मत में, वहां पर कोई अवैधपूर्ण जमाव होने का कोई प्रश्न नहीं था और प्रत्यर्थी द्वारा उक्त सामान्य उद्देश्य के अनुसरण में कोई कृत्य किए जाने का भी कोई प्रश्न नहीं था । क्या कुछ अन्यों की ओर से गोली-बारी करने और सुलेमान बेकरी के भीतर उग्र भीड़ की हत्या करने का एक उद्देश्य था, इसकी विचारण न्यायालय द्वारा परीक्षा की जानी चाहिए । किन्तु जहां तक वर्तमान प्रत्यर्थियों का संबंध है, एक भी गोली नहीं चलाया जाना निश्चित रूप से उन्हें अभियोजन क्षेत्र से दूर करेगा । हम इससे संबंधित नहीं हैं कि इस आधार पर उन्हें उन्मोचित नहीं किया जा सकता था । वस्तुतः, विचारण न्यायालय और पुनरीक्षण न्यायालय ने केवल उक्त परिस्थिति पर अवलंब नहीं लिया है । उक्त परिस्थिति पर अन्य निकटवर्ती परिस्थितियों को दृष्टिकोण करते हुए विचार किया गया है और इसलिए, हम उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मत से भिन्न मत व्यक्त करने के लिए कोई

कारण नहीं पाते हैं । (पैरा 15)

श्री ललित ने मुम्बई पुलिस अधिनियम के संबंध में तर्क देने का प्रयत्न किया । तथापि, श्री प्रधान उक्त पहलू पर नहीं गए और हमारे लिए यह अनावश्यक है कि मुम्बई पुलिस अधिनियम की धारा 161 के प्रभाव पर विचार करे । हम यह पाते हैं कि स्वतः गुणागुण के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि इन प्रत्यर्थियों के विरुद्ध जिन्होंने एक भी गोली नहीं चलाई थी और जो पूर्णतया अपने वरिष्ठ अधिकारियों के आदेशों के अनुसरण में कार्य कर रहे थे और अपने कर्तव्य को कर रहे थे, के विरुद्ध कोई प्रथमदृष्ट्या मामला था । (पैरा 16)

तथापि, श्री प्रधान ने यह दलील दी कि अभियुक्तों द्वारा घटना में सक्रिय रूप से उनके भाग लिए जाने के संबंध में उनके विरुद्ध 1973 की धारा 161 के अधीन अभिलिखित किए गए साक्ष्यों के कुछ कथनों का भी परिशीलन कराया । वे श्री अब्दुल सत्तार सुलेमान मिठाई वाला, अब्दुल वफा खान हबीबुल्लाह खान, मुहम्मद कुतुबुद्दीन पुत्र मुहम्मद मुसा सिद्दीक, हसन रजाकुदीन मुहम्मद, गुलाम मुहम्मद फारुख शेख, अब्दुल्ला अबुल कासीम और स्वयं अपीलार्थी के कथन हैं । इनके अलावा श्री प्रधान ने सबरी आलम जमालुद्दीन बलवोर, मुहम्मद हुसैन औलाद अली डफली, मुहम्मद इस्लाम मुहम्मद कुद्दुस शेख, बुदुल अब्दुल लतीफ खान और मुहम्मद रफीक पुत्र महेबुक अली के कथनों पर भी अवलंब लिया है । हमने इन सभी कथनों का सावधानीपूर्वक परिशीलन किया है । प्रथम कथन को छोड़कर सभी कथन प्रत्युत्तर से संलग्न अर्थात् दस्तावेजों के रूप में आए हैं । सभी कथन मदरसा के निवासियों के प्रतीत होते हैं । महत्वपूर्ण रूप से किसी भी कथन में किसी भी प्रत्यर्थियों की ओर से कोई विनिर्दिष्ट कृत्य किए जाने का उल्लेख नहीं किया गया है । सामान्यतया, कथनों में यह उल्लेख किया गया है कि संबंधित व्यक्तियों ने पुलिसकर्मियों को तेज आवाज में चिल्लाते हुए सुना था जो, दरवाजा खोलो, चिल्ला रहे थे और यह भी कह रहे थे कि हथियार कहां छुपाए हैं । अब्दुल वफा खान हबीबुल्लाह खान के कथन में यह उल्लेख किया गया है कि "एक पुलिसकर्मी ने रायफल की नली ठोड़ी के नीचे लगाई और चिल्लाया 'सबको मार डालो' किन्तु दूसरे पुलिसकर्मियों ने उसे ऐसा करने से रोका था ।" कथनों में विवरण यह है कि कुछ व्यक्तियों को पुलिस द्वारा मार दिया गया था । सभी कथनों में गोली-बारी और मारे जाने का कृत्य पुलिस पर बिना उनके शनाख्त किए अभ्यारोपित किया गया है । इन कथनों में से कुछ उन व्यक्तियों के हैं जो क्षतिग्रस्त थे । संक्षेप में, सभी कथनों में पुलिस पर अभ्यारोपित एकमात्र कृत्य

सुलेमान बेकरी में प्रवेश करने और वहां के निवासियों और व्यक्तियों पर गोली-बारी करने और इसके कारण कुछ निवासियों के मृत्यु प्राप्त करने का है । उन पुलिसकर्मियों जिन्होंने गोली चलाई थी कि शनाख्त करते हुए या यह सुझाते हुए कि जिन्होंने कोई गोली नहीं चलाई थी, ने रायफल के हत्थे इत्यादि से पीटने के द्वारा कोई अन्य रिष्टि की थी, के संबंध में एक भी कथन नहीं किया गया है । सभी कथन पुलिस के छिपे हुए हथियारों को बाहर निकालने के लिए किए गए आदेश को निर्दिष्ट करते हैं । हमने पूर्वतर में भी यह अभिव्यक्त किया है और पुनः यह दोहराते हुए कि, हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि वास्तव में सुलेमान बेकरी में कोई हथियार नहीं पाया गया था किन्तु यह समस्या को नहीं सुलझाता क्योंकि श्री ललित ने हमें अत्यंत विस्तार से यह स्पष्ट किया है कि हथियार सुगमता से हटाए जा सकते थे क्योंकि मकान आपस में इतने जुड़े हुए थे कि कोई भी व्यक्ति सुलेमान बेकरी से अन्य भवनों की जुड़ी हुई छतों से सुगमता से भाग सकता था । हमने श्री प्रधान से इस संबंध में एक विनिर्दिष्ट प्रश्न पूछा कि क्या इसमें यहां प्रत्यर्थी सं. 1 या इसमें यहां प्रत्यर्थी सं. 9 के विरुद्ध एक भी कथन किया गया है । श्री प्रधान ने ऋजुतापूर्वक यह स्वीकार किया कि श्री त्यागी (इसमें यहां प्रत्यर्थी सं. 1) या श्री इंगले (इसमें यहां प्रत्यर्थी सं. 9) में से किसी पर भी कोई विनिर्दिष्ट कृत्य अभ्यारोपित नहीं किया गया था । संक्षेप में, कथन यदि उन पर पूर्णतया विश्वास भी कर लिया जाए, वे केवल उन व्यक्तियों के विरुद्ध सामग्री उपलब्ध कराते हैं जिन्होंने वस्तुतः गोली-बारी की थी । इन परिस्थितियों के अधीन, यदि स्वीकृततः प्रत्यर्थियों ने एक भी गोली नहीं चलाई थी, तब यह नहीं कहा जा सकता कि उनका सुलेमान बेकरी या मदरसा और उनसे संबद्ध मस्जिद में रहने वाले निर्दोष व्यक्तियों की हत्या करने का एक सामान्य उद्देश्य था । हम इस संबंध में पूर्णतया आश्वस्त हैं कि विचारण न्यायालय और पुनरीक्षण न्यायालय ने इन तात्विक परिस्थितियों पर अवलंब लेने में त्रुटिपूर्ण नहीं थी कि किसी भी प्रत्यर्थी ने यद्यपि वे सशस्त्र थे, एक भी गोली नहीं चलाई थी । (पैरा 17)

श्री प्रधान ने इसके पश्चात् यह दावा किया कि यदि साक्ष्य का पठन करने के पश्चात् कुछ सामग्री कुछ अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध पाई जाती है, तब परिवादी को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 319 के अधीन कार्रवाई के लिए आवेदन करने की स्वतंत्रता होगी । इस विषय पर हमारी ओर से कुछ कहा जाना एक अंदाजा लगाना होगा । किसी ऐसे आवेदन पर, यदि किया जाता है, स्वयं इसके गुणागुण पर विचार करने का कार्य

विचारण न्यायालय के लिए होगा । उक्त प्रयोजन के लिए स्वतंत्रता देने का कोई प्रश्न नहीं उठता । (पैरा 18)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2008] (2008) 10 एस. सी. सी. 394 :
योगेश उर्फ **सचिन जोशी** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ; 12

[2001] ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 2637 :
टी. टी. एंटोनी बनाम **केरल राज्य** ; 11

[1997] ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 2041 :
महाराष्ट्र बनाम **प्रिया शरण महाराज और अन्य** ; 12

[1988] ए. आई. आर. 1988 एस. सी. 1883 :
केहर सिंह और अन्य बनाम **राज्य (दिल्ली प्रशासन)** । 11

दांडिक (अपीली) अधिकारिता : 2011 की दांडिक अपील सं. 1256.

मुम्बई उच्च न्यायालय द्वारा 2003 की दांडिक अपील सं. 357 में तारीख 16 अक्तूबर, 2009 को दिए गए निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

उपस्थित होने वाले पक्षकारों की ओर से सर्वश्री विजय प्रधान, यू. आर. ललित, वरिष्ठ अधिवक्तागण, (सुश्री) हुजेफा अहमदी, जावेद राशि पटेल, (सुश्री) गरिमा कपूर, एजाज मकबूल, सुवादी, राजीव त्यागी, श्रीकांत शिवाडे, शिवाजी एम. जाधव, प्रशांत बी., अमित मित्तल, चिन्मोय खालदकर और संजय वी. खर्डे (सुश्री आशा गोपालन नायर की ओर से)

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति वी. एस. सिरपुरकर ने दिया ।

न्या. सिरपुरकर – इजाजत प्रदान की जाती है ।

2. राम देव त्यागी (अभियुक्त सं. 1), लहाने भगवान व्यंकाटरो (अभियुक्त सं. 2), सावंत सुभाष नामदेव (अभियुक्त सं. 4), संतोष एस.

कोयंडे (अभियुक्त सं. 6), चंद्रकांत बी. राउत (अभियुक्त सं. 8), अनिल नारायण धोले (अभियुक्त सं. 14), सतीश कुमार बी. नायक (अभियुक्त सं. 15), गणेश भास्कर सतवासे (अभियुक्त सं. 16) और अनंत केशव इंगले (अभियुक्त सं. 17) द्वारा फाइल किए गए उन्मोचन आवेदन को मंजूर करने वाले अपर सेशन न्यायाधीश, ग्रेटर मुम्बई द्वारा पारित आदेश की पुष्टि करते हुए मुम्बई उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को इस अपील में चुनौती दी गई है । विचारण न्यायालय द्वारा पारित ऊपर वर्णित उन्मोचन आदेश के विरुद्ध, वर्तमान अपीलार्थी नुरूल हुदा मकबूल अहमद ने मुम्बई उच्च न्यायालय के समक्ष एक पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया था और उच्च न्यायालय ने उक्त पुनरीक्षण आवेदन को खारिज किया था । इस प्रकार से अपीलार्थी हमारे समक्ष उपस्थित हुआ है । हम विचारण न्यायालय के समक्ष अभियुक्तों की क्रमिक स्थितियों (क्रमों) द्वारा अभियुक्तों को निर्दिष्ट करेंगे ।

3. यह अवेक्षा की जानी चाहिए कि विचारण न्यायालय द्वारा किया गया ऊपर वर्णित उन्मोचन आदेश महाराष्ट्र राज्य द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती नहीं दी गई थी और वस्तुतः उन्होंने आदेश का समर्थन करना चुना । हमारे समक्ष भी एक विनिर्दिष्ट अभिवाक् किए जाने पर, महाराष्ट्र राज्य की ओर से उपस्थित हुए विद्वान् काउंसेल ने विचारण न्यायालय द्वारा इसी भांति उच्च न्यायालय द्वारा पारित दोनों आदेशों का समर्थन करना चुना है ।

4. मुम्बई शहर जो एक विश्वव्यापी शहर के नाम से जाना जाता है, 1993 के प्रारंभ में ही सांप्रदायिक दंगों से दहल गया था । तारीख 9 जनवरी, 1993 को उक्त दंगा अपने शीर्ष पर था और इसने मुम्बई शहर के अनेकों पुलिस थानों की अधिकारिता के भीतर आने वाले विभिन्न क्षेत्रों में फैल गया था । वर्तमान मामले में हम दो पुलिस थानों अर्थात् पिधोनी पुलिस थाना और डोंगरी पुलिस थाने से संबंधित है । मोहम्मद अली मार्ग नाम से अज्ञात एक मार्ग इन दोनों पुलिस थानों के क्रमिक क्षेत्रों को विभक्त करता है । वहां पर सुलेमान बेकरी नाम की एक बेकरी थी । इस बेकरी के अत्यंत निकट पड़ोस में एक मस्जिद है और एक मदरसा भी है जहां पर स्वीकृततः मुस्लिम मत से संबंधित छात्र रहते थे और वहां पर प्रशिक्षित किए जा रहे थे । उक्त मस्जिद को चूना भट्टी मस्जिद के नाम से जाना जाता है । यह एक स्वीकृत स्थिति है कि सुलेमान बेकरी, मस्जिद और मदरसा भी डोंगरी पुलिस थाने के नियंत्रणाधीन है । वे उपर्युक्त मोहम्मद अली मार्ग पर स्थित है और चूंकि वहां पर घोर अशांति थी इसलिए उक्त सुलेमान बेकरी के विकर्णी सामने की ओर एक पुलिस चौकी

स्थापित की गई थी । किन्तु पिधोनी पुलिस थाने के क्षेत्र में यह देखकर कि शरारती तत्व सुलेमान बेकरी के छत से मार्ग पर स्थित पुलिस चौकी पर गोलीबारी कर रहे थे, पुलिस ने शरारती तत्वों को अपनी दुष्ट क्रियाकलापों को रोकने की चेतावनी दी । तथापि, उन्होंने इन चेतावनी पर कोई ध्यान नहीं दिया । इसलिए पिधोनी पुलिस थाने के पुलिस अधिकारी ने इस घटना की सूचना नियंत्रण कक्ष को दी और सहायता की मांग की । अभिकथित रूप से घटनास्थल पर एक वायरलेस वैन आई और यह भी अवेक्षा की कि सुलेमान बेकरी के भवन से कुछ गोलियां चलाई गई थीं । नियंत्रण कक्ष में वायरलेस संदेश की प्राप्ति पर पुलिस के संयुक्त आयुक्त श्री आर. डी. त्यागी, इसमें यहां प्रत्यर्थी सं. 1 विशेष ऑपरेशन दस्तों के नाम से अज्ञात एक दल के साथ घटनास्थल पर पहुंचे । ऐसे दस्ते साम्प्रदायिक दंगों पर नियंत्रण करने के लिए बनाए गए थे । बेकरी में उपस्थित व्यक्ति त्यागी या विशेष ऑपरेशन की उपस्थिति से भयभीत नहीं हुए थे और उन्होंने बोतलें, एसिड बल्ब और पत्थर पुलिस की ओर फेंकने जारी रखे । इसलिए संयुक्त आयुक्त त्यागी ने दस्ते को बेकरी के भीतर प्रवेश करने का आदेश दिया । यहां यह उल्लेख करना अनावश्यक है कि बेकरी के दरवाजे अन्दर से बंद था और उसमें रहने वालों ने दरवाजे को नहीं खोला यद्यपि उनसे दरवाजे खोलने को कहा गया था । इसलिए प्रत्यर्थी सं. 1 त्यागी ने पुलिस दल को यह निर्देश दिया कि वह बेकरी का दरवाजा तोड़कर खोल दे और शरारती तत्वों को गिरफ्तार करे । पुलिस दस्ते को न्यूनतम बल प्रयोग करने को कहा गया था । तदनुसार दरवाजा तोड़कर खोला गया और विशेष ऑपरेशन दस्ते के सदस्य सुलेमान बेकरी में प्रविष्ट हुए किन्तु इस प्रक्रिया में उन्हें गोली-बारी करनी पड़ी थी जिसके कारण अन्दर के 12 व्यक्ति क्षतिग्रस्त हुए और आठ व्यक्तियों की मृत्यु हो गई । स्वीकृततः पुलिस दल के सदस्य तलवारों और लाठियों के सिवाय कोई अग्न्यास्त्र बरामद नहीं कर सके ।

5. श्री त्यागी तत्पश्चात् घटनास्थल से चले गए और पुलिस बल के विरुद्ध दंगे के पश्चात् फाइल किए गए थे । विद्वान् न्यायमूर्ति बी. एन. श्रीकृष्ण जो कि वह तत्समय थे, की अध्यक्षता में जांच आयोग अधिनियम के अधीन एक जांच की गई थी । न्यायमूर्ति श्रीकृष्ण ने यह पाया कि इस विशिष्ट घटना में और कुछ अन्य घटनाओं में पुलिस आवश्यक बल से अधिक बल का प्रयोग करने के लिए जिम्मेदार थे और इसलिए महाराष्ट्र सरकार ने उन पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध अभियोजन करने का विनिश्चय किया जिन्होंने अपने हाथों में कानून लिया था । वर्तमान मामले में राज्य ने भारतीय

दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धाराओं 302 और 307 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए 18 पुलिसकर्मियों के विरुद्ध एक परिवाद दर्ज कराया था । इसलिए 2001 सेशन मामला सं. 1171 दर्ज की गई थी जिसमें 18 अभियुक्तों ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 227 के अधीन उन्मोचन के लिए एक आवेदन फाइल किया । विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने नामित अभियुक्तों को उन्मोचित किया और शेष अभियुक्तों के आवेदन को खारिज किया और यह निदेश दिया कि जैसाकि कथन किया गया है अन्यों के विरुद्ध अभियोजन जारी रहेगा । महाराष्ट्र राज्य ने आदेश को चुनौती दी थी । तथापि, इसे एक प्राइवेट पक्षकारों जिसने एक पीड़ित होने का दावा किया है, के द्वारा चुनौती दी गई थी । उच्च न्यायालय ने उक्त पुनरीक्षण खारिज किया, उक्त प्राइवेट पक्षकार वर्तमान अपील के माध्यम से हमारे समक्ष उपस्थित हुआ है । अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री विजय प्रधान द्वारा की गई दलीलों का मूल्यांकन करने के पूर्व हमें कुछ और तथ्यों की भी अवेक्षा करनी चाहिए । घटना जो कि तारीख 9 जनवरी, 1993 को घटित हुई थी, के आधार पर एक प्रथम इत्तिला सूचना अनंत केशव इंगले जो डोंगरी पुलिस थाने में अभियुक्त सं. 10 है और कुल मिलाकर 78 व्यक्तियों के विरुद्ध एक प्रथम इत्तिला सूचना दर्ज कराई गई थी । इन सभी अभियुक्तों को वर्ष 2002 में सेशन न्यायालय को सुपुर्द किया गया था । उक्त सेशन मामला 2002 की विचारण सं. 930 है । 78 व्यक्तियों में से 70 व्यक्तियों को फरार दर्शाया गया है । शेष व्यक्तियों को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धाराओं 143, 144, 145, 147, 149, 307 और धारा 120(ख) और आयुध अधिनियम की धाराओं 325 और 327 के अधीन विभिन्न अपराधों के लिए तारीख 22 दिसम्बर, 2004 को आरोपित किया गया था । उक्त आदेश को उच्च न्यायालय में चुनौती दी गई थी जहां कि अभी भी यह लंबित है ।

6. इस मामले में अभियोजन पिधोनी पुलिस थाने पर 25 मई, 2001 को 2001 की प्रथम इत्तिला सूचना सी. आर. सं. 198 के आधार पर प्रारंभ किया गया था । यह मीरजा अजमतुल्लाह बेग के कथन के आधार पर किया गया है । इस प्रथम इत्तिला सूचना के आधार पर पश्चात्वर्ती अन्वेषण किया गया और एक आरोप पत्र 17 व्यक्तियों के विरुद्ध फाइल किया गया था । इस प्रक्रम पर अभियुक्तों की ओर से दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 227 के अधीन आवेदन फाइल किए गए थे जिसमें वर्तमान प्रत्यर्थी सं. 1 से 9 का उन्मोचन किया गया था और उक्त आदेश को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी और उसकी पुष्टि की गई थी ।

7. प्राइवेट पक्षकार की ओर से उपस्थित हुए विद्वान् श्री प्रधान ने उन्मोचन आदेश और इसी भांति उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए पुष्टि आदेश को प्रबलता से चुनौती दी । अपनी दलील में उन्होंने यह उल्लेख करने का प्रयत्न किया कि दोनों न्यायालयों ने इस परिस्थिति पर अवलंब लेने में त्रुटि की थी कि अभियुक्त जिन्हें उन्मोचित किया गया था, उन्होंने एक भी गोली नहीं चलाई थी । प्रत्यर्थी सं. 1 के संबंध में दलील यह थी कि वह उस दल का नेता था जो दंगों को दबाने के लिए गया था । श्री प्रधान के अनुसार वस्तुतः विशेष ऑपरेशन दस्ते के लिए प्रथमतया सुलेमान बेकरी के सामने जाने का पूर्णतया कोई कारण नहीं था क्योंकि यह वर्णन कि सुलेमान बेकरी की छत से कांच की बोतलें, पत्थर फेंके जा रहे थे और गोली-बारी की जा रही थी यह कुछ नहीं अपितु झूठी कहानी थी । श्री प्रधान ने अत्यंत ही दुख के साथ यह उल्लेख किया कि स्थिति निश्चित रूप से नियंत्रणाधीन थी और यह सुझाने के लिए कोई आवश्यक नहीं था कि विशेष ऑपरेशन दस्ते के घटनास्थल आने की किसी रीति में आवश्यकता थी । श्री प्रधान ने यह दलील दी कि यदि पुलिस चौकी से पिधोनी पुलिस थाने पर कोई वायरलेस संदेश भेजा भी गया था तब यह भी एक पूर्णतया मिथ्या संदेश था क्योंकि सुलेमान बेकरी से गोली-बारी किए जाने का कोई प्रश्न ही नहीं था, विशेष रूप से इस तथ्य की पृष्ठभूमि में कि पुलिस दल जो सुलेमान बेकरी में प्रविष्ट हुआ था, उसने वहां पर कोई भी अग्न्यास्त्र या गोला बारूद नहीं पाया था । प्रस्तुत की गई दलील यह थी कि स्वीकृततः वे सभी व्यक्ति जो अभिकथित रूप से सुलेमान बेकरी में छुपे हुए थे वे मुस्लिम थे और विशेष ऑपरेशन दस्ता उन मुस्लिमों को जो कि सुलेमान बेकरी में उपस्थित थे एक पाठ पढ़ाना चाहता था । श्री प्रधान ने यह उल्लेख किया कि वहां पर पूर्णतया कर्फ्यू था और ऐसा नहीं है कि उपद्रवियों की भीड़ कर्फ्यू आदेश का उल्लंघन करते हुए सड़क पर उतर आई थी । उन्होंने यह उल्लेख किया कि वहां पर अनेकों व्यक्ति थे जो स्वीकृततः मदरसा में अध्ययन कर रहे थे तथा वे निर्दोष मुस्लिम छात्र थे । श्री प्रधान ने इसके आगे यह उल्लेख किया कि 17 या 18 पुलिसकर्मियों के संपूर्ण दल ने सुलेमान बेकरी के सामने के दरवाजे को तोड़ने के पश्चात् प्रवेश किया था और उन्होंने गोली-बारी की थी जिसमें आठ व्यक्तियों की मृत्यु हुई थी और यह कुछ नहीं अपितु मुस्लिमों के विरुद्ध बदला लेने का एक कृत्य था । श्री प्रधान ने हमें क्षेत्र की विस्तृत स्थिति और इसी भांति सुलेमान बेकरी के अन्दर के विवरण भी अत्यंत विस्तार से बताएं । उन्होंने यह दलील दी कि सुलेमान बेकरी के भूतल के ऊपर वर्तमान दल पर जाने

के लिए केवल एक झीना (सीढ़ी) था और भूतल स्वतः एक बहुत छोटा स्थान था । इसलिए उन्होंने यह निवेदन किया कि भूतल पर इतने अधिक व्यक्तियों की उपस्थिति संभव नहीं थी । इसके आगे उन्होंने यह उल्लेख किया कि झीना इतना संकुचित था कि एक समय पर केवल एक ही व्यक्ति ऊपर जा सकता था और इसलिए अनेक व्यक्तियों के ऊपर जाने की कोई गुंजाइश नहीं थी । इसके आधार पर उन्होंने यह दलील दी कि पुलिस दल जो सामने के दरवाजों को तोड़कर प्रवेश करते हुए ऊपर गया था और उन्होंने वहां पर आठ निःसहाय व्यक्तियों की गोली मारकर हत्या कर दी थी और अन्यों को भी क्षतियां पहुंचाई थीं । इसलिए श्री प्रधान ने यह दुःखपूर्ण उल्लेख किया कि सभी क्षतिग्रस्त व्यक्तियों को गोली से क्षतियां पहुंची थीं । इसके आधार पर उन्होंने अपनी यह और दलील दी कि यह सब संभव नहीं था जब तक कि मुस्लिम समुदाय के निर्दोष व्यक्तियों को पाठ पढ़ाने का पुलिसकर्मियों की ओर से कोई सामान्य उद्देश्य न होता । उन्होंने इसके आगे यह उल्लेख किया कि वहां पर ऐसा कुछ नहीं था जो अंधाधुंध गोली-बारी किए जाने को न्यायोचित ठहराता हो । उन्होंने यह तर्क दिया कि पुलिस बल के कुछ व्यक्तियों ने हो सकता है एक भी गोली न चलाई हो, उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 34 या धारा 149 की सहायता से उसमें सम्मिलित करने के लिए पर्याप्त था क्योंकि संपूर्ण जमाव बिना किसी प्रयोजन के दरवाजों को प्रथमतया तोड़ते हुए भवन में ऊपर जाने और सुलेमान बेकरी में छिपे हुए निःसहाय व्यक्तियों पर गोली-बारी करने में पूर्णतया अविधिपूर्ण हो गया था । श्री प्रधान ने अत्यंत प्रबलता से यह दलील थी कि मात्र यह कारण कि प्रत्यर्थी सं. 1 ने दुकान में प्रवेश नहीं किया था, यह उसे पूर्णतया अविमुक्त नहीं करता क्योंकि वह विशेष ऑपरेशन दस्ते का नेता था और उसे पूर्ण जिम्मेदारी लेनी चाहिए थी । उन्होंने यह उल्लेख किया कि वस्तुतः प्रत्यर्थी सं. 1 के लिए घटनास्थल पर आने का कोई कारण नहीं था और इसके पश्चात् अपने दल को दरवाजे तोड़ने और सुलेमान बेकरी में प्रवेश करने का आदेश देने के लिए भी कोई कारण नहीं था । इसलिए श्री प्रधान ने प्रथमतया मुख्य आशय होने की ओर इंगित किया और यह दलील दी कि बेकरी में प्रवेश करने का कृत्य स्वयं यह अभिनिर्धारित करने के लिए पर्याप्त था कि वे अभियुक्त जिन्होंने बेकरी में प्रवेश किया था वह अपराध में भागीदार थे । इस बात को ध्यान में रखते हुए श्री प्रधान ने यह दलील दी कि मात्र यह कारण कि उन्होंने गोली-बारी नहीं की थी यह एक सुसंगत पहलू नहीं था । उन्होंने अनुकल्पी तौर पर यह दलील दी कि प्रत्येक दशा में यह भारतीय दंड संहिता की धारा 141

के खंड 3 के आधार पर पुनः एक आवेदनपूर्ण जमाव था और इसलिए सभी उन्मोचित अभियुक्त अविधिपूर्ण जमाव के सदस्य थे और उन्हें कम से कम आरोपित किया जाना चाहिए था और निचले न्यायालयों द्वारा जांच की जानी चाहिए थी ।

8. इसका उत्तर देते हुए श्री यू. आर. ललित विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने यह उल्लेख किया कि यह दर्शाने के लिए कि स्थिति नियंत्रणाधीन थी और वहां पर पूर्ण शांति थी यह तथ्यों का उपहास होगा । श्री ललित ने यह उल्लेख किया कि स्थिति पूर्णतया तनावपूर्ण थी और एक वायरलेस संदेश बेकरी के सामने स्थित पुलिस चौकी से पिधोनी पुलिस थाना भेजा गया था । श्री ललित ने यह दलील दी कि संपूर्ण पुलिस बल पर एक विशेष समुदाय को पाठ पढ़ाने का हेतुक अभ्यारोपित नहीं किया जा सकता है । उन्होंने यह दलील दी कि पुलिस चौकी के पुलिसकर्मी और विशेष रूप से इंगले जिसने संदेश भेजा था को वहां के संपूर्ण क्षेत्र की जानकारी थी चूंकि वह स्वयं सुलेमान बेकरी में भावी संपूर्ण स्थिति को देखने में समर्थ था और सुलेमान बेकरी की छत को भी उस भवन से जो कि सुलेमान बेकरी के दूसरी ओर स्थित थी, देखने में समर्थ था । उन्होंने यह उल्लेख किया कि पुलिस चौकी केवल दंगे को शांत करने के लिए स्थापित की गई थी और पुलिस चौकी की विद्यमानता इस तथ्य को इंगित करती थी कि उक्त क्षेत्र में सब कुछ नियंत्रणाधीन और शांत नहीं था जो कि मुख्य रूप से मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्र था और जो अत्यंत ही अशांत क्षेत्र था । श्री ललित ने यह उल्लेख किया कि किसी भी कल्पना दृष्टि से विशेष ऑपरेशन दस्ता एक अविधिपूर्ण जमाव नहीं कहा जा सकता क्योंकि उनका कृत्य शांति स्थापित करना था । इसके आगे उन्होंने यह उल्लेख किया कि ऐसा नहीं है कि प्रत्यर्थी सं. 1 ने बिना किसी कारण या औचित्य के विशेष ऑपरेशन दस्ता ले गया था । वस्तुतः वह वहां पर वायरलेस संदेश के कारण पहुंचे थे । इसके आगे उन्होंने यह उल्लेख किया कि जहां तक प्रत्यर्थी सं. 1 का संबंध है, उनका मुस्लिम समुदाय को पाठ पढ़ाने का कोई हेतुक होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था । जहां तक अन्यों, जिन्होंने भवन में प्रवेश किया था, का संबंध है श्री ललित ने यह उल्लेख किया कि यद्यपि उक्त विस्फोटक स्थिति में पुलिसकर्मियों ने हथियार का प्रयोग नहीं किया था और एक भी गोली नहीं चलाई थी, तब भी ऐसे पुलिसकर्मियों पर कोई हेतुक अभ्यारोपित किए जाने का कोई प्रश्न नहीं था । दूसरी ओर, इन पुलिसकर्मियों ने अपने स्वयं को जीवन को जोखिम में डालकर भवन में प्रवेश करना चुना था । श्री ललित ने यह कथन किया कि उपलब्ध साक्ष्य

के आधार पर ताले तोड़कर सुलेमान बेकरी में प्रवेश करना पूर्णतया न्यायोचित था । इसके आगे उन्होंने यह उल्लेख किया कि क्षेत्र की स्थिति ऐसी थी कि उपद्रवियों बंदूकों और गोला-बारूद के साथ सुगमता से भाग सकते थे क्योंकि वहां पर भवन एक दूसरे से जुड़े हुए हैं और उपद्रवियों के लिए गोला-बारूद के साथ भागना अत्यंत ही सुगम था । इस सभी के आधार पर श्री ललित ने यह उल्लेख किया कि विचारण न्यायालय द्वारा पारित किया गया उन्मोचन आदेश जिसकी उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई थी, पूर्णतया न्यायानुमत था ।

9. यह इसी आधार पर है कि हमने पक्षकारों के क्रमिक दावों की परीक्षा की है । इस प्रक्रम पर हम प्रथम इत्तिला सूचना और इसके अन्तर्वस्तुओं पर विचार करेंगे । उनकी एक सूक्ष्म समीक्षा से यह दर्शित होता है कि यह एक स्वीकृत स्थिति थी कि इसका समुदायों के बीच दंगा तारीख 6 से 10 दिसम्बर के बीच चल रहा था और पुनः 6 जनवरी को प्रारंभ हुआ और 16 या 17 जनवरी को ही केवल शांत हुआ था । यह भी एक स्वीकृत स्थिति है कि सार्वजनिक और प्राइवेट संपत्ति को घोर नुकसान पहुंचा था और कई जानें भी गई थीं और चूंकि दंगे ने गंभीर अनुपात धारण कर लिया था, उक्त अवधि के दौरान शहर के विभिन्न भागों में 24 घंटे के लिए कर्फ्यू लगा दिया गया था और विभिन्न स्थानों पर पुलिस चौकी बनाई गई थीं । प्रथम इत्तिला सूचना में यह भी उल्लेख किया गया है कि विशेष ऑपरेशन दस्ते पुलिस द्वारा गठित किए गए थे और प्रत्यर्थी सं. 1 उस समय संयुक्त पुलिस आयुक्त (अपराध), ग्रेटर मुम्बई थे और अन्य सभी अभियुक्त पुलिस निरीक्षक, उप पुलिस निरीक्षक, पुलिस कांस्टेबल इत्यादि थे । यह भी एक स्वीकृत स्थिति थी कि श्री अनंत केशव इंगले अभियुक्त सं. 17 (सेशन न्यायाधीश के समक्ष) तत्समय पिधोनी, पुलिस थाने से संबद्ध थे और सभी अभियुक्त विशेष ऑपरेशन दस्तों से संबद्ध थे । प्रथम इत्तिला सूचना सुलेमान बेकरी और मस्जिद जिसे चूना भट्टी कहा जाता है और मदरसे जिसे दारूल उलूम कहा जाता है की क्षेत्र स्थिति का वर्णन करती है । प्रथम इत्तिला सूचना पुलिस चौकी पर गोली-बारी के संबंध में और सहायक पुलिस निरीक्षक नगारे पुलिस चौकी के भारसाधक और अनंत केशव इंगले (सेशन न्यायालय के समक्ष अभियुक्त सं. 17) के बीच बातचीत के संबंध में वर्णन करती है । सुलेमान बेकरी की छत की ओर से उक्त गोली-बारी के संबंध में, यद्यपि यह प्रख्यान किया गया है कि ऐसी कोई अप्रिय घटना के संबंध में कोई अभिलेख नहीं था जो अभिकथित तौर पर पूर्वाह्न 9.30 बजे प्रारंभ हुई और तीन घंटे तक चली ।

यह उल्लेख किया गया है कि पुलिस चौकी के निकट कोई गोलियां या कारतूस नहीं मिले थे और किसी भी व्यक्ति को कोई क्षति नहीं पहुंची थी । इसके पश्चात् प्रथम इत्तिला सूचना पुलिस चौकी से पिधोनी पुलिस थाने को भेजे गए वायरलेस संदेश को निर्दिष्ट करती है जिसमें गोली-बारी के संबंध में और नियंत्रण कक्ष द्वारा प्रत्यर्थी सं. 1 आर. डी. त्यागी को गोली-बारी के संबंध में सूचना संसूचित की गई थी । यह वहां पर उपस्थित स्टेनगनधारी एक व्यक्ति को प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से की गई बातचीत को भी निर्दिष्ट करते हैं । यह उल्लेख किया गया है कि उक्त स्टेनगनधारी व्यक्ति न तो पकड़ा गया था और न ही स्टेनगन बरामद की गई थी । प्रथम इत्तिला सूचना प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा सुलेमान बेकरी के सामने के दरवाजों को तोड़ने के पश्चात् बेकरी में प्रवेश करने के लिए जारी किए गए आदेशों का भी उल्लेख करती है । प्रथम इत्तिला सूचना इसके पश्चात् डोंगरी पुलिस थाने को किए गए एक निर्देश और विशेष ऑपरेशन दस्ते द्वारा गिरफ्तार किए गए 78 व्यक्तियों के विरुद्ध दर्ज कराई गई प्रथम इत्तिला सूचना को भी निर्दिष्ट करती है । प्रथम इत्तिला सूचना में इसका भी विशेष रूप से उल्लेख किया गया है कि 10-15 व्यक्ति हथियारों के साथ बच निकले थे और उनकी ओर से हत्या, दंगा इत्यादि कारित करने के भी प्रयास किए गए थे । 1993 की प्रथम इत्तिला सूचना सी. आर. सं. 46 में एक विनिर्दिष्ट संदर्भ लिया गया है । इसके पश्चात् पी. आई. पाटिल द्वारा किए गए आगे के अन्वेषण का भी संदर्भ लिया गया है । इसके पश्चात् न्यायमूर्ति श्रीकृष्ण के रिपोर्ट का भी संदर्भ लिया गया है । इसके आगे यह उल्लेख किया गया है कि अनवर अली मोहम्मद इस्लाम जिसकी आयोग द्वारा एक साक्षी के रूप में परीक्षा की गई थी, को बंदूक की गोली से क्षति पहुंची थी । छिपाए गए हथियारों के संबंध में पुलिसकर्मियों के बीच बातचीत का भी संदर्भ लिया गया था । मोहम्मद कुतुबुद्दीन, नुरूल हुदा और अब्दुल वफा हबीबुल्ला खान इत्यादि जिन्होंने सुलेमान बेकरी में पुलिस की प्रवेश होने के संबंध में आयोग के समक्ष अभिसाक्ष्य दिया है, के साक्ष्य के प्रति भी संदर्भ लिया गया है । इसके पश्चात् पंचनामा में यह उल्लेख किया गया है कि सात खाली और दो जिन्दा कारतूस अपराध स्थल से बरामद किए गए थे जो उपद्रवियों द्वारा चलाए गए थे । इसके पश्चात् एक प्रख्यान किया गया है कि पंचनामा के दौरान कोई अग्न्यास्त्र बरामद नहीं किए गए थे । इसके पश्चात् आठ मृत व्यक्तियों को पहुंची क्षतियों का भी संदर्भ लिया गया है । इस मत के प्रति भी एक संदर्भ लिया गया है कि 78 व्यक्तियों को बेकरी के भवन में स्वयं को समाना असंभव था । इसके पश्चात् 17 व्यक्तियों को

बेकरी का दरवाजा तोड़ने और 78 व्यक्तियों को पकड़ना असंभव था । यह भी उल्लेख किया गया है कि क्षेत्र की स्थिति में, यह स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि संपूर्ण वर्णन अतिरंजित है और घटित होने योग्य नहीं है । यह उल्लेख किया गया था कि एक भी गंभीर क्षति विशेष ऑपरेशन दस्ते के किसी सदस्य को नहीं पहुंची थी और न ही आग्नेयास्त्र से कोई क्षति पहुंची थी । यह भी उल्लेख किया गया है कि उपद्रवियों को अग्न्यास्त्रों के साथ बच निकलना असंभव था क्योंकि मस्जिद से भागने का कोई रास्ता नहीं था । इसके पश्चात् यह उल्लेख किया गया है कि डोंगरी पुलिस थाने पर अभिलिखित 1993 की प्रथम इत्तिला सूचना सं. सी. आर. 46 उनके द्वारा कारित 9 व्यक्तियों की मृत्यु को न्यायोचित ठहराने के प्रयास में एक तैयार किया गया दस्तावेज है । इसके आगे यह भी उल्लेख किया गया है कि अनंत केशव इंगले पूर्वाह्न 9.30 बजे पुलिस चौकी पर नहीं हो सकते थे क्योंकि पिधोनी पुलिस थाने पर तारीख 9 जनवरी, 1993 को अपराह्न 12.45 पर की गई थाना डायरी में प्रविष्टि यह दर्शाती है कि इंगले और सहायक पुलिस निरीक्षक जाधव पूर्वाह्न 10.20 पर ही पुलिस थाने से चले गए थे और वह अपराह्न लगभग 12.45 तक सुलेमान बेकरी के कहीं पर निकट भी नहीं थे । आयोग का अभिलेख, बेकरी पुलिस थाने में प्रथम इत्तिला सूचना 1993 की सी. आर. सं. 46 और पंचनामा और उक्त अपराध में एकत्रित की गई सामग्री के प्रति भी संदर्भ लिया गया है ।

10. अभियुक्तों पर यह हेतुक अभ्यारोपित किए गए हैं कि उन्हें दिए गए प्राधिकार का उन्होंने असम्यक् फायदा उठाया था और 9 निर्दोष व्यक्तियों की मृत्यु कारित करने के लिए शक्ति का दुरुपयोग किया था । इस प्रथम इत्तिला सूचना पर प्रबलता से अवलंब लेते हुए श्री प्रधान ने यह उल्लेख किया कि डोंगरी पुलिस थाने में प्रथम इत्तिला सूचना के आधार पर अभियोजन और कुछ नहीं अपितु पुलिस द्वारा स्वयं को बचाने के लिए एक कहानी गढ़ी गई थी जिससे कि सुलेमान बेकरी में गोली-बारी को न्यायोचित ठहाराया जा सके । इस संबंध में कोई विवाद नहीं है कि प्रथम इत्तिला सूचना प्रबलता से जांच आयोग के समक्ष दिए गए साक्ष्य पर अवलंबित है । जब हम धारा 227 के अधीन आवेदन को देखते हैं और विशेष रूप से प्रथम अभियुक्त द्वारा किए गए आवेदन को देखते हुए, तब यह तद्धीन उल्लेख किया गया है कि उन दंगों में 1500 व्यक्तियों से अधिक की मृत्यु हुई थी और करोड़ों रुपए की संपत्ति को क्षति पहुंची थी । यह उल्लेख किया गया है कि संपूर्ण पुलिस बल अत्यंत ही दबाव के अधीन कार्य कर रहा था और उन दंगों के दौरान सात पुलिस अधिकारियों की

मृत्यु हुई थी और 496 अधिकारी/पुलिसकर्मी क्षतिग्रस्त हुए थे । यह भी उल्लेख किया गया था कि अत्याधुनिक आग्नेयास्त्रों और अन्य भीषण बमों का उग्र भीड़ द्वारा प्रयोग किया गया था और पुलिस अधिकारियों को स्थिति को नियंत्रण करने के लिए घोर प्रयास करने पड़े थे और उग्र भीड़ द्वारा पुलिस को गंभीरता से निशाना बनाया गया था । डोंगरी, पिधोनी, नागपदा और अग्रीपदा पुलिस थानों के प्रति एक विस्तृत संदर्भ किया गया है जो कि मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्र थे और साम्प्रदायिक रूप से अतिसंवेदनशील थे । आवेदन में इसके अतिरिक्त पुलिस पर गोली-बारी करते हुए उन पर फेंके गए बमों का भी संदर्भ लिया गया है । तारीख 9 जनवरी को लगभग यह विनिर्दिष्ट रूप से दलील दी गई है कि पुलिस आयुक्त और प्रत्यर्थी सं. 1 संबंधित क्षेत्र में गश्त कर रहे थे । स्थिति अत्यंत ही उग्र और विस्फोटक हो गई थी विशेष रूप से ऊपर उल्लेख किए गए चार पुलिस थानों के क्षेत्रों में और इसलिए एक वायरलेस संदेश आयुक्त को भेजा गया था कि लगभग एक गृह युद्ध जैसी स्थिति उत्पन्न हो गई थी और वस्तुतः क्षेत्र को सेना को सुपुर्द करने का विचार किया गया था । पुलिस आयुक्त क्षेत्र की ओर एक बैठक में सम्मिलित होने गए थे जबकि प्रत्यर्थी सं. 1 विशेष ऑपरेशन दल के साथ वहां पहुंचे थे जबकि अभियोजन साक्षी अजीज देशमुख पिधोनी में क्षेत्र में सतत् रूप से गश्त कर रहे थे । अभियोजन साक्षी अजीत देशमुख के कथन पर अवलंब लेते हुए, इसके अतिरिक्त यह उल्लेख किया गया है कि शरारती तत्व सुलेमान बेकरी के छत के ऊपर से चुनौती दे रहे थे । उन्होंने विशेष ऑपरेशन दस्ते की ओर एक बार गोली चलाए जाने का उल्लेख किया है जब वे गाड़ी से उतर रहे थे । अजीत देशमुख द्वारा आत्मरक्षा में अपने सर्विस रिवाल्वर से बदले में गोली चलाए जाने का भी संदर्भ लिया गया है । अनंत केशव इंगले सेशन न्यायालय के समक्ष अभियुक्त सं. 17 द्वारा एक दुकान के ऊपर से की गई बातचीत का भी संदर्भ लिया गया है और इसकी भी पुष्टि की गई है कि शरारती तत्व स्वचालित आग्नेयास्त्रों का प्रयोग कर रहे थे और तीन व्यक्तियों के पास रिवाल्वर थी । इसके आगे एक प्रविष्टि के प्रति उल्लेख किया गया है जो इसके अतिरिक्त तथ्य पर मुख्य रूप से आधारित थी कि साक्षी देशमुख के बाएं हाथ पर क्षति पहुंची थी क्योंकि उसके हाथ पर कांच की बोतल जैसी एक कठोर वस्तु से चोट पहुंचाई थी और इस परिस्थिति में दरवाजे को तोड़ने का आदेश किया गया था । इससे क्षतिग्रस्त व्यक्तियों के प्रति भी एक उल्लेख किया गया है जिन्होंने छलांग लगाई थी और इसके आगे अभिरक्षा में लिए गए व्यक्तियों के विरुद्ध अन्वेषण किए जाने का भी

उल्लेख किया गया है । आयोग में इस सिफारिश की एक प्रति को भी सदंर्भ किया गया है कि आर. डी. त्यागी (इसमें यहां अभियुक्त सं. 1) के विरुद्ध कोई अभियोजन प्रारंभ नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि उन्होंने पदीय कर्तव्य के निर्वहन में कार्य किया था । अपने आवेदन में श्री आर. डी. त्यागी ने अपने कर्तव्यों के निर्वहन में कार्य करने की प्रतिरक्षा ली थी । यह भी उल्लेख किया गया था कि अभियुक्त स्वतः नहीं गया था अपितु एक वायरलेस संदेश के उत्तर में गया था और वहां पहुंचने पर उस पर गोली चलाई गई थी और साक्षी अजीत देशमुख पर भी गोली चलाई गई थी । इसके आगे यह उल्लेख किया गया था कि आर. डी. त्यागी ने भी सुलेमान बेकरी की छत के ऊपर शरारती तत्वों द्वारा हथियार लिए हुए होने को देखा था । यह भी उल्लेख किया गया है कि सूचना अन्य पुलिस चौकी से सत्यापित कराई गई थी और इसमें यहां प्रत्यर्थी सं. 1 ने पूरी सतर्कता बरती थी और उन्होंने सुलेमान बेकरी में शरारती तत्वों को चेतावनियां जारी की थीं और उन्हें आत्मसमर्पण करने को कहा था और जब इन सभी का कोई परिणाम नहीं निकला, तब बल का प्रयोग करते हुए बेकरी का दरवाजा तोड़ने का आदेश किया गया था । यह भी उल्लेख किया गया है कि अजीत देशमुख पर एक मिसाइल से भी गंभीर चोट पहुंची थी और इसलिए और कोई अनुकल्प न होने के कारण कार्रवाई करनी पड़ी थी । यह इस आधार पर है कि आवेदन किया गया था । कानूनी दलीलों के द्वारा यह तर्क किया गया था कि सुलेमान बेकरी में घटनाओं के संबंध में बेकरी पुलिस थानों पर एक प्रथम इत्तिला सूचना पहले ही दर्ज कराई गई थी, इसलिए इसी घटना के संबंध में कोई दूसरी प्रथम इत्तिला सूचना नहीं हो सकी थी । मुम्बई पुलिस अधिनियम की धारा 161 के अधीन भी कार्रवाई की गई थी । धारा 197 के अधीन भी कार्रवाई की गई थी विशेष रूप से श्री आर. डी. त्यागी के संबंध में । सिविल सेवा नियम को भी लागू किया गया था जो यह इंगित करते हैं कि उनकी 1997 में सेवानिवृत्ति के पश्चात् उनके विरुद्ध अब कार्यवाही नहीं की जा सकती । लगभग इसी प्रभाव का एक तनिक भिन्नता के साथ अभियुक्त सं. 2 से 18 द्वारा अन्य आवेदन किए गए थे ।

11. यह निर्विवादित है और श्री प्रधान द्वारा इस पर वस्तुतः कोई विवाद नहीं किया गया था कि तारीख 9 जनवरी, 1993 को मुम्बई में स्थिति अत्यंत ही विस्फोटक थी यद्यपि श्री प्रधान ने इस पर जोर दिया कि कर्फ्यू के कारण वहां पर पूर्ण शांति और व्यवस्था थी । उपलब्ध सामग्री जो यह इंगित करती है कि उपद्रवी सड़क पर आने के द्वारा कर्फ्यू का उल्लंघन करने का प्रयास

कर रहे थे और महिलाओं को अपनी ढाल बना रहे थे और उपद्रवियों के कहने पर वहां पर लगातार प्रबोधन किए जा रहे थे और वह लोगों को कर्फ्यू का उल्लंघन करने के लिए सड़क पर आने को प्रोत्साहित कर रहे थे, के आधार पर कम से कम इस निष्कर्ष पर पहुंचना संभव नहीं है । सुलेमान बेकरी के सामने पुलिस चौकी की विद्यमानता और पुलिस चौकी से पिधोनी पुलिस थाने पर नियंत्रण कक्ष पर बातचीत से यह स्पष्ट होगा कि वहां पर स्थिति कितनी गंभीर थी । हमने विचारण न्यायालय के आदेश का भी सावधानीपूर्वक परिशीलन किया है । विचारण न्यायालय ने सही तौर पर इस न्यायालय द्वारा **टी. टी. एंटोनी** बनाम **केरल राज्य**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय पर सही तौर पर अवलंब लिया है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि आयोग की रिपोर्ट में व्यक्त की गई मताभिव्यक्तियां और निष्कर्ष केवल सरकार की सूचना के लिए तात्पर्यित है । सरकार द्वारा आयोग की रिपोर्ट का स्वीकार किया जाना केवल यह इंगित करता है कि विधिसम्मत शासन से आबद्ध होने के कारण और ऋजुतापूर्वक कार्रवाई करने के कर्तव्य को देखते हुए इसने इस पर कार्रवाई करना चुना था । इसके अतिरिक्त यह मत व्यक्त किया गया था कि अन्वेषण करने के अपने मुख्य कार्य में आयोग की रिपोर्ट का फायदा इस बात को ध्यान में रखते हुए उठा सकता है कि इसने अन्वेषक अभिकरण को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 169/170 के अधीन एक भिन्न मत गठित करने के लिए अन्वेषक अभिकरण को इससे विरत नहीं किया है यदि इसके द्वारा प्राप्त किए गए साक्ष्य ऐसे निष्कर्ष का समर्थन करता है । तथापि, न्यायालय जांच आयोग के निष्कर्ष की रिपोर्ट द्वारा आबद्ध नहीं थे और न्यायालयों को उनके समक्ष रखे गए साक्ष्य के आधार पर विधि के अनुसार अपने स्वयं के विनिश्चय पर पहुंचना होता है । विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने के लिए **केहर सिंह और अन्य** बनाम **राज्य (दिल्ली प्रशासन)**[2] वाले मामले पर भी अवलंब लिया है कि आयोग की रिपोर्ट सरकार की विचारणा को निर्दिष्ट करती है और आयोग का मत साक्षियों के कथन और अन्य सामग्री पर आधारित है किन्तु इसका दांडिक मामले में कोई साक्ष्यिक महत्व नहीं है । विचारण न्यायालय इसके पश्चात् प्रथमदृष्ट्या मामले की जांच करने को अग्रसर हुआ और अनंत केशव इंगले द्वारा नियंत्रण कक्ष को दिए गए वायरलेस संदेश के अनुसरण में आर. डी. त्यागी के दल के साथ विस्फोटक पहुंचाने पर अवलंब लिया । विचारण

---

[1] ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 2637.

[2] ए. आई. आर. 1988 एस. सी. 1883.

न्यायालय ने इसके पश्चात् संपूर्ण संदेश को उत्कथित किया जिसके आधार पर विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि सुलेमान बेकरी की छत से गोली-बारी की गई थी और अन्दर से दरवाजा बंद था और बार-बार आदेशों के बावजूद भवन में रहने वालों ने दरवाजा खोलने से इनकार किया और इसलिए आर. डी. त्यागी ने उपद्रवियों को पकड़ने के लिए दरवाजे को खोलकर तोड़ने का आदेश विशेष दस्ते को दिया । इसके पश्चात् न्यायालय ने यह इंगित करने के लिए पुलिस रिपोर्ट को स्वीकारा कि सात अभियुक्तों ने एक भी गोली नहीं चलाई थी । इसके आधार पर विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि यद्यपि पुलिस अधिकारियों के पास 638 चक्र गोलियां कब्जे में थीं, उनमें से कुछ ने एक से सात चक्र गोलियां चलाईं जबकि कुछ अन्यों ने एक चक्र गोली भी नहीं चलाई थी । न्यायालय ने सुलेमान बेकरी के अन्दर के व्यक्तियों के कथन पर भी अवलंब लिया और यह निष्कर्ष निकाला कि पुलिसकर्मी भवन के अन्दर रहने वालों की हत्या करने के आशय से अन्दर प्रविष्ट नहीं हुए थे । विचारण न्यायालय ने इसके पश्चात् भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 34 को लागू होने को अपवर्जित किया और इस बात की संभावना को दूर किया कि विशेष ऑपरेशन दस्ते ने निर्दोष व्यक्तियों पर गोली-बारी चलाने और उनकी हत्या करने का कोई पूर्व नियोजित योजना बनाई थी । विचारण न्यायालय ने दरवाजों को तोड़कर खोलने के लिए आर. डी. त्यागी द्वारा जारी किए गए आदेशों का भी विश्लेषण किया है और यह निष्कर्ष निकाला कि वह दरवाजों को तोड़कर खोलने का निदेश देने में न्यायानुमत थे । विचारण न्यायालय ने अजीत देशमुख, ए. पी. आई. के कथन पर भी अवलंब लिया जो एक क्षतिग्रस्त पुलिस अधिकारी था और अंततः यह निष्कर्ष निकाला कि दंड संहिता, 1860 की धारा 34 को लागू होने का प्रश्न वहां पर विशेष रूप से इसलिए नहीं था कि जब संयुक्त आयुक्त अभियुक्त सं. 1 ने विशेष आपरेशन दस्ता की सुरक्षा के लिए सावधानी बरतने का निदेश दिया था और उनके विनिर्दिष्ट रूप से न्यूनतम बल प्रयोग करने का निदेश दिया था । यह इस आधार पर है कि विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि यदि प्रवेश के पश्चात् भी उन पर अभियुक्तों ने एक भी गोली नहीं चलाई थी, वे स्पष्ट रूप से अपने कर्तव्यों के निर्वहन में कार्य कर रहे थे और इसलिए वे मुम्बई पुलिस अधिनियम की धारा 161 के अधीन संरक्षा पाने के लिए हकदार थे । विचारण न्यायालय ने पाया कि पुलिस अधिकारियों के विरुद्ध कोई न्यायोचित मामला नहीं था जिन्होंने ऐसी उग्र स्थिति में भी पूर्णतया कोई गोली-बारी नहीं की थी । इस तथ्य को भी विचार में लिया गया था कि जिन व्यक्तियों की मृत्यु हुई थी उन्हें केवल बंदूक की गोलियों से

पहुंची क्षतियों के परिणामस्वरूप मृत्यु हुई थी और अभियुक्तों ने एक भी गोली नहीं चलाई थी ।

12. उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षणात्मक अधिकारिता की परिधि और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 227 की परिधि को भी निर्दिष्ट किया । उच्च न्यायालय ने **महाराष्ट्र राज्य** बनाम **प्रिया शरण महाराज और अन्य**[1] वाले मामले पर भी अवलंब लिया और पैरा 8 में व्यक्त किए गए मत जो निम्न प्रभाव का था, को भी निर्दिष्ट किया :–

> "इस विषय पर विधि अब सुस्थापित है जैसाकि निरंजन सिंह पंजाबी **बनाम** जितेन्द्र बीज्जाया [(1990) 4 एस. सी. सी. 76 = ए. आई. आर. 1980 एस. सी. 1962] वाले मामले में उल्लेख किया गया है कि धाराओं 227 और 228 के प्रक्रम पर न्यायालय से यह पता लगाने के लिए अभिलेख पर की सामग्री और दस्तावेजों का मूल्यांकन करने की अपेक्षा की जाती है कि क्या वहां उद्भूत हुए तथ्य प्रथमदृष्ट्या की अभिकथित अपराध का गठन करने वाले सभी घटकों की विद्यमानता को प्रकट करते हैं । न्यायालय इस सीमित प्रयोजन के लिए साक्ष्य का विश्लेषण कर सकता है क्योंकि उक्त प्रारंभिक प्रक्रम पर भी यह प्रत्याशा नहीं की जा सकती कि अभियोजन द्वारा जो कुछ कथन किया गया है वह वेदवाक्य है यद्यपि यह सामान्यबोध या मामले की व्यापक संभाव्यताओं के प्रतिकूल हो । इसलिए आरोप विरचित करने के प्रक्रम पर न्यायालय को यह पता लगाने की दृष्टि से सामग्री पर विचार करना होता है कि क्या यह उपधारणा करने के लिए वहां पर आधार है कि अभियुक्त ने अपराध कारित किया है या उसके विरुद्ध अभियोजन करने के लिए प्रयोजित आधार नहीं है और न कि इस निष्कर्ष पर पहुंचने के प्रयोजन के लिए कि इसके आधार पर दोषसिद्धि किए जाने की संभाव्यता नहीं है ।"

न्यायालय ने **योगेश** उर्फ **सचिन जोशी** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[2] वाले मामले में व्यक्त किए गए मतों को भी निर्दिष्ट किया है :–

> "16. तथापि, इस तथ्य का मूल्यांकन करने में न्यायालय को

---

[1] ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 2041.

[2] (2008) 10 एस. सी. सी. 394.

यह पता लगाने के सीमित प्रयोजन के लिए सामग्री का विश्लेषण और उसका महत्व आंकने की शक्ति है कि क्या अभियुक्त के विरुद्ध कोई प्रथमदृष्ट्या मामला बनता है या नहीं ।

व्यापक परीक्षण जो लागू किया जाता है यह है कि क्या अभिलेख पर की सामग्रियां यदि घटित रहती हैं, तब दोषसिद्धि को युक्तियुक्त रूप से संभव बनाती है ।"

13. उच्च न्यायालय द्वारा तत्पश्चात् एक अत्यंत ही सुसंगत मत व्यक्त किया गया है कि अभियोजन के कथनों या परिस्थितियों या दस्तावेजों की सत्यता को प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा चुनौती नहीं दी गई है । इसके पश्चात् उच्च न्यायालय दंड संहिता, 1860 की धारा 34 की व्यापकता और इसी भांति दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 47(2) की व्यापकता पर भी विचार करने के लिए अग्रसर हुआ । इसके पश्चात् उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा किए गए अनुकल्पी तर्क की परिधि पर भी विचार किया कि मामले को आर. डी. त्यागी और अन्य अभियुक्तों जो उन्मोचित किए गए थे के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 111 के अधीन और धारा 113 सपठित धारा 442 के अधीन नए आरोपों को जोड़ने के लिए प्रतिप्रेषित किया जाना चाहिए । अंततः उच्च न्यायालय ने तर्क को नामंजूर किया और हमारे मत में ऐसा सही तौर पर किया । उच्च न्यायालय द्वारा धारा 107 भी निर्दिष्ट की गई थी । इस संबंध में उच्च न्यायालय ने सही तौर पर यह निष्कर्ष निकाला कि आर. डी. त्यागी (उच्च न्यायालय के समक्ष अभियुक्त सं. 2) और अन्य प्रत्यर्थियों के कृत्य दंड संहिता की धारा 107 के अधीन नहीं आते थे, क्योंकि धारा 107 के अधीन इससे अध्यपेक्षाओं में से कोई भी पूरी नहीं की गई थी । श्री प्रधान ने भी हमारे समक्ष उक्त मुद्दे पर बल नहीं दिया था ।

14. हमने मामले में श्री प्रधान द्वारा गहराई से किए गए तर्क का अवलोकन करने के पश्चात् श्री प्रधान को दंड संहिता, 1860 की धारा 34 को लागू होने का औचित्य स्पष्ट करने के लिए उन्हें कहा, विशेष रूप से अभियुक्त सं. 1 के संबंध में और उन अभियुक्तों के संबंध में जिन्होंने एक भी गोली नहीं चलाई थी । प्रथमतया दरवाजे को तोड़कर खोलने के प्रश्न पर विचार करते हुए इस संबंध में कोई विवाद नहीं हो सकता कि अभिलेख पर यह सुझाने के लिए कुछ भी नहीं है कि सुलेमान बेकरी में सब कुछ ठीक था और उसके परिसर के भीतर भारी अशांति चल रही थी । इस तथ्य के संबंध में भी कोई विवाद नहीं हो सकता कि वायरलेस संदेश भेजे गए थे और उनके आधार पर विशेष ऑपरेशन दस्ते द्वारा कार्रवाई की गई

थी जिसको प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा नेतृत्व किया जा रहा था । इसलिए हमारे मत में अभियुक्त सं. 1 सुलेमान बेकरी के सामने के दरवाजों को तोड़कर खोलने का निदेश देने में निश्चित रूप से न्यायानुमत था । हमने स्वयं अभिलेख की परीक्षा की है जो यह सुझाता है कि पुलिसकर्मियों ने दरवाजा खोलने का निदेश दिया था किन्तु वह खोला नहीं गया था । श्री प्रधान ने ऋजुतापूर्वक यह स्वीकार किया था कि सुलेमान बेकरी में व्यक्ति थे । उनकी अकेली दलील यह है कि वे वहां पर कोई रिष्टि कारित नहीं किए थे । अभिलेख पर की सामग्री के आधार पर यह स्पष्ट था कि पुलिस पर मिसाइलें फेंकी जा रही थीं क्योंकि सहायक पुलिस निरीक्षक श्री देशमुख वस्तुतः क्षतिग्रस्त हुए थे और यह समर्थन करने के लिए सामग्री भी उस स्थिति में जब दरवाजों को तोड़ने के पश्चात् पुलिसकर्मियों ने प्रवेश किया था और तब भी कुछ पुलिसकर्मियों ने गोलियां नहीं चलाई थीं, उन पर निश्चित रूप से सामान्य आशय नहीं थोपा जा सकता है । हमारे मत में, विचारण न्यायालय और इसी भांति पुनरीक्षण न्यायालय पहले ही यह मत व्यक्त कर चुके हैं कि जिन्होंने एक भी गोली नहीं चलाई थी उन पर कोई सामान्य आशय में भागीदारी लिया जाना नहीं कहा जा सकता । श्री प्रधान ने अभियोजन को दावे के इस खोखलेपन को देखा कि इन व्यक्तियों को दंड संहिता की धारा 34 की सहायता से मामले में फंसाया जा सकता है । इसलिए उन्होंने यह दलील दी कि कम से कम दरवाजा तोड़कर खोलने के समय तक पुलिस का जमाव विधिपूर्ण उद्देश्य के साथ था क्योंकि उनका यह कर्तव्य था, किन्तु उन्हें सुलेमान बेकरी का दरवाजा तोड़कर खोलना और उसमें अतिचार नहीं करना चाहिए था और वे सभी व्यक्ति जिन्होंने सुलेमान बेकरी में प्रवेश किया उन्होंने एक अवैधपूर्ण जमाव गठित किया क्योंकि उन्होंने अवैध रूप से सुलेमान बेकरी में अतिचार किया था चूंकि इसमें यहां अभियुक्त सं. 1 श्री त्यागी ने उन्हें दरवाजों को तोड़कर खोलने का आदेश दिया था और वे भी उस अवैधपूर्ण जमाव का भाग थे जिसका सामान्य उद्देश्य था । अब प्रश्न यह है कि क्या यह जमाव अवैधपूर्ण जमाव कहा जा सकता है । इस संबंध में कोई विवाद नहीं हो सकता कि वे सभी विशेष ऑपरेशन दस्ते के सदस्य थे और उनका दंगों को दबाने का कर्तव्य था । उनके पहुंचने में और दंगों को नियंत्रण करने के प्रयास करने में कुछ भी अवैध कार्य नहीं किया गया था । यह भी निर्विवादित है कि श्री प्रधान द्वारा इसमें भी कोई विवाद नहीं किया गया है कि दंगे निस्संदेह चल रहे थे । हम सीधे श्री प्रधान के दावे को नामंजूर करते हैं कि वहां पर हर तरफ शांति और मौन था और तब भी विशेष ऑपरेशन दस्ता वहां पर पहुंचा था ।

विचारण न्यायालय और पुनरीक्षण न्यायालय और यहां तक कि हमारे लिए भी यह विश्वास करने के लिए कोई कारण नहीं था कि विशेष ऑपरेशन दस्ता आगे के संकटों (कठिनाइयों) की किन्हीं आशंका के बिना अपने स्वयं की ओर से वहां पर पहुंचा था । वे आशंकाएं वायरलेस संदेश में पर्याप्त रूप से दृश्यमान हैं जिनमें विचारण न्यायालय ने पूर्णतया अवलंब लिया और हमारे मत में यह सही तौर पर लिया गया था । इसलिए यह अभिनिर्धारित करने का कोई औचित्य नहीं है कि स्वयं विशेष ऑपरेशन दस्ता एक अवैधपूर्ण जमाव था ।

15. आगे का प्रश्न विशेष ऑपरेशन दस्ते के उद्देश्य के संबंध में है । एक बेतुका तर्क दिया गया था कि विशेष ऑपरेशन दस्ता वहां पर दंगाइयों को पाठ पढ़ाने के लिए गया था । इस संबंध में पूर्णतया कोई सामग्री नहीं है । श्री त्यागी का एक विशेष समुदाय के प्रति वैरभाव जो कोई भी हो, रखने का कोई कारण मात्र इसलिए नहीं था कि वह एक भिन्न समुदाय से संबंधित व्यक्ति थे । अभिलेख पर यह सुझाने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि विशेष ऑपरेशन दस्ताकर्मियों में से किसी का कोई वैयक्तिक पक्ष (दृष्टिकोण) भी था इसलिए कम से कम उस समय तक जमाव के अवैधपूर्ण होने का प्रश्न नहीं हो सकता है । पुनः यदि प्रथम अभियुक्त ने दरवाजे को तोड़कर खोलने का निदेश दिया था, तब उनका इसके पहले एक दृढ़ कारण था । दंगों को शांत करना और दंगाइयों पर नियंत्रण करने का उनका कार्य और कर्तव्य था । इसके अनुसरण में उन्होंने दरवाजे को तोड़कर खोलने का आदेश दिया था । हमारे मत में, वह ऐसा करने में पूर्णतया न्यायानुमत थे । यदि उन्होंने विशेष ऑपरेशन दस्ते को दरवाजे को तोड़कर खोलने का आदेश दिया था तब उनके लिए और कोई विकल्प नहीं था सिवाय दरवाजे को तोड़कर खोलने का । इसलिए दरवाजे को तोड़कर खोलने में उन्होंने कोई अवैध्यता कारित नहीं की थी । एक बार दरवाजे को तोड़ दिए जाने पर उन्हें उसमें प्रवेश करना था । इसलिए प्रविष्टि अतिचार नहीं की जा सकती है । कोई अतिचार आपराधिक अतिचार बन जाता है यदि यह किसी को गुस्सा दिलाने के आशय से या कुछ अवैध कार्य करने के आशय से किया जाता है जैसाकि यहां पर मामला नहीं है । वहां पर आपराधिक अतिचार गठित करने वाली तथाकथित प्रविष्टि का कोई प्रश्न नहीं था । यदि कुछ सदस्यों ने एक भी गोली नहीं चलाई थी, तब क्या यह कहा जा सकता है कि उनका निर्दोष व्यक्तियों की हत्या करने का एक सामान्य उद्देश्य था ? जिन्होंने गोलियां चलाई थीं और मृत्यु कारित की थी, क्या वह कृत्य हत्या की कोटि में आएगा यह पूर्णतया एक

भिन्न प्रश्न है । यह साक्ष्य के आधार पर साबित किया जाएगा कि उनका ऐसा कार्य करने का आशय था या उन्होंने अपनी शक्तियों के आधिक्य में कार्य किया था, यह विशुद्ध रूप से साक्ष्य का विषय है । किन्तु उन व्यक्तियों के मामले में जिन्होंने एक भी गोली नहीं चलाई थी, यह कहा जाना चाहिए कि उनकी सामान्य आपत्ति थी या उनकी हत्या करने के आशय का सामान्य उद्देश्य था । कुल मिलाकर पुलिस जिसने प्रवेश किया उनके स्वयं के जीवन को जोखिम था । अभिलेख पर यह सुझाने के लिए साक्ष्य है कि उपद्रवी मूकदर्शक नहीं थे या बिना कोई रिष्टि किए वहां पर छिपे हुए नहीं थे । इन परिस्थितियों के अधीन, यदि उस उग्र स्थिति में भी कुछ पुलिसकर्मियों ने एक भी गोली नहीं चलाई थी तब क्या उन्हें कुछ अन्यों द्वारा किए गए कृत्य के लिए प्रतिनिधिक रूप से दायी बनाया जा सकता है जबकि वे कृत्य व्यक्तियों की हत्या करने की सामान्य उद्देश्य के साथ होना भी दर्शित नहीं किए गए हैं ? उत्तर नकारात्मक होना चाहिए । इसलिए हमारे मत में, वहां पर कोई अवैधपूर्ण जमाव होने का कोई प्रश्न नहीं था और प्रत्यर्थी द्वारा उक्त सामान्य उद्देश्य के अनुसरण में कोई कृत्य किए जाने का भी कोई प्रश्न नहीं था । क्या कुछ अन्यों की ओर से गोली-बारी करने और सुलेमान बेकरी के भीतर उग्र भीड़ की हत्या करने का एक उद्देश्य था, इसकी विचारण न्यायालय द्वारा परीक्षा की जानी चाहिए । किन्तु जहां तक वर्तमान प्रत्यर्थियों का संबंध है, एक भी गोली नहीं चलाया जाना निश्चित रूप से उन्हें अभियोजन क्षेत्र से दूर करेगा । हम इससे संबंधित नहीं हैं कि इस आधार पर उन्हें उन्मोचित नहीं किया जा सकता था । वस्तुतः, विचारण न्यायालय और पुनरीक्षण न्यायालय ने केवल उक्त परिस्थिति पर अवलंब नहीं लिया है । उक्त परिस्थिति पर अन्य निकटवर्ती परिस्थितियों को दृष्टिकोण करते हुए विचार किया गया है और इसलिए, हम उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मत से भिन्न मत व्यक्त करने के लिए कोई कारण नहीं पाते हैं ।

16. श्री ललित ने मुम्बई पुलिस अधिनियम के संबंध में तर्क देने का प्रयत्न किया । तथापि, श्री प्रधान उक्त पहलू पर नहीं गए और हमारे लिए यह आवश्यक है कि मुम्बई पुलिस अधिनियम की धारा 161 के प्रभाव पर विचार करे । हम यह पाते हैं कि स्वतः गुणागुण के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि इन प्रत्यर्थियों के विरुद्ध जिन्होंने एक भी गोली नहीं चलाई थी और जो पूर्णतया अपने वरिष्ठ अधिकारियों के आदेशों के अनुसरण में कार्य कर रहे थे और अपने कर्तव्य को कर रहे थे, के विरुद्ध कोई प्रथमदृष्ट्या मामला था ।

17. तथापि, श्री प्रधान ने यह दलील दी कि अभियुक्तों द्वारा घटना में सक्रिय रूप से उनके भाग लिए जाने के संबंध में उनके विरुद्ध दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 161 के अधीन अभिलिखित किए गए साक्ष्यों के कुछ कथनों का भी परिशीलन कराया । वे श्री अब्दुल सत्तार सुलेमान मिठाई वाला, अब्दुल वफा खान, हबीबुल्लाह खान, मुहम्मद कुतुबुद्दीन पुत्र मुहम्मद मुसा सिद्दीक, हसन रजाकुदीन मुहम्मद, गुलाम मुहम्मद फारुख शेख, अब्दुल्ला अबुल कासीम और स्वयं अपीलार्थी के कथन हैं । इनके अलावा श्री प्रधान ने सबरी आलम जमालुद्दीन बलवोर, मुहम्मद हुसैन औलाद अली डफली, मुहम्मद इस्लाम मुहम्मद कुद्दुस शेख, बुदुल अब्दुल लतीफ खान और मुहम्मद रफीक पुत्र महेबुक अली के कथनों पर भी अवलंब लिया है । हमने इन सभी कथनों का सावधानीपूर्वक परिशीलन किया है । प्रथम कथन को छोड़कर सभी कथन प्रत्युत्तर से संलग्न अर्थात् दस्तावेजों के रूप में आए हैं । सभी कथन मदरसा के निवासियों के प्रतीत होते हैं । महत्वपूर्ण रूप से किसी भी कथन में किसी भी प्रत्यर्थियों की ओर से कोई विनिर्दिष्ट कृत्य किए जाने का उल्लेख नहीं किया गया है । सामान्यतया, कथनों में यह उल्लेख किया गया है कि संबंधित व्यक्तियों ने पुलिसकर्मियों को तेज आवाज में चिल्लाते हुए सुना था, जो दरवाजा खोलो, चिल्ला रहे थे और यह भी कह रहे थे कि हथियार कहां छुपाए हैं । अब्दुल वफा खान, हबीबुल्लाह खान के कथन में यह उल्लेख किया गया है कि "एक पुलिसकर्मी ने रायफल की नली ठोड़ी के नीचे लगाई और चिल्लाया 'सबको मार डालो' किन्तु दूसरे पुलिसकर्मियों ने उसे ऐसा करने से रोका था ।" कथनों में विवरण यह है कि कुछ व्यक्तियों को पुलिस द्वारा मार दिया गया था । सभी कथनों में गोली-बारी और मारे जाने का कृत्य पुलिस पर बिना उनके शनाख्त किए अभ्यारोपित किया गया है । इन कथनों में से कुछ उन व्यक्तियों के हैं जो क्षतिग्रस्त थे । संक्षेप में, सभी कथनों में पुलिस पर अभ्यारोपित एकमात्र कृत्य सुलेमान बेकरी में प्रवेश करने और वहां के निवासियों और व्यक्तियों पर गोली-बारी करने और इसके कारण कुछ निवासियों के मृत्यु प्राप्त करने का है । उन पुलिसकर्मियों जिन्होंने गोली चलाई थी की शनाख्त करते हुए या यह सुझाते हुए कि जिन्होंने कोई गोली नहीं चलाई थी, ने रायफल के हत्थे इत्यादि से पीटने के द्वारा कोई अन्य रिष्टि की थी, के संबंध में एक भी कथन नहीं किया गया है । सभी कथन पुलिस के छिपे हुए हथियारों को बाहर निकालने के लिए किए गए आदेश को निर्दिष्ट करते हैं । हमने पूर्वतर में भी यह अभिव्यक्त किया है और पुनः यह दोहराते हुए कि, हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि वास्तव

में सुलेमान बेकरी में कोई हथियार नहीं पाया गया था किन्तु यह समस्या को नहीं सुलझाता क्योंकि श्री ललित ने हमें अत्यंत विस्तार से यह स्पष्ट किया है कि हथियार सुगमता से हटाए जा सकते थे क्योंकि मकान आपस में इतने जुड़े हुए थे कि कोई भी व्यक्ति सुलेमान बेकरी से अन्य भवनों की जुड़ी हुई छतों से सुगमता से भाग सकता था । हमने श्री प्रधान से इस संबंध में एक विनिर्दिष्ट प्रश्न पूछा कि क्या इसमें यहां प्रत्यर्थी सं. 1 या इसमें यहां प्रत्यर्थी सं. 9 के विरुद्ध एक भी कथन किया गया है । श्री प्रधान ने ऋजुतापूर्वक यह स्वीकार किया कि श्री त्यागी (इसमें यहां प्रत्यर्थी सं. 1) या श्री इंगले (इसमें यहां प्रत्यर्थी सं. 9) में से किसी पर भी कोई विनिर्दिष्ट कृत्य अभ्यारोपित नहीं किया गया था । संक्षेप में, कथन यदि उन पर पूर्णतया विश्वास भी कर लिया जाए, वे केवल उन व्यक्तियों के विरुद्ध सामग्री उपलब्ध कराते हैं जिन्होंने वस्तुतः गोली-बारी की थी । इन परिस्थितियों के अधीन, यदि स्वीकृततः प्रत्यर्थियों ने एक भी गोली नहीं चलाई थी, तब यह नहीं कहा जा सकता कि उनका सुलेमान बेकरी या मदरसा और उनसे संबद्ध मस्जिद में रहने वाले निर्दोष व्यक्तियों की हत्या करने का एक सामान्य उद्देश्य था । हम इस संबंध में पूर्णतया आश्वस्त हैं कि विचारण न्यायालय और पुनरीक्षण न्यायालय इन तात्विक परिस्थितियों पर अवलंब लेने में त्रुटिपूर्ण नहीं थी कि किसी भी प्रत्यर्थी ने यद्यपि वे सशस्त्र थे, एक भी गोली नहीं चलाई थी ।

18. श्री प्रधान ने इसके पश्चात् यह दावा किया कि यदि साक्ष्य का पठन करने के पश्चात् कुछ सामग्री कुछ अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध पाई जाती है, तब परिवादी को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 319 के अधीन कार्रवाई के लिए आवेदन करने की स्वतंत्रता होगी । इस विषय पर हमारी ओर से कुछ कहा जाना एक अंदाजा लगाना होगा । किसी ऐसे आवेदन पर, यदि किया जाता है, स्वयं इसके गुणागुण पर विचार करने का कार्य विचारण न्यायालय के लिए होगा । उक्त प्रयोजन के लिए स्वतंत्रता देने का कोई प्रश्न नहीं उठता । कोई अन्य मुद्दे बहस नहीं किए गए ।

19. इन परिस्थितियों में इस अपील में कोई गुणता नहीं पाते हैं और इसे खारिज किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

अनू.

[2012] 2 उम. नि. प. 81

भजन सिंह उर्फ हरभजन सिंह और अन्य

बनाम

हरियाणा राज्य

तथा

जोगा सिंह

बनाम

हरियाणा राज्य

तथा

निशाबर सिंह और एक अन्य

बनाम

हरियाणा राज्य

4 जुलाई, 2011

न्यायमूर्ति (डा.) बी. एस. चौहान और न्यायमूर्ति स्वतंत्र कुमार

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302, 307 और 149 – हत्या – प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में विलंब न होना – प्रत्यक्षदर्शी साक्षी, चिकित्सीय साक्ष्य से अपीलार्थी अभियुक्तों की दोषिता संदेह के परे साबित होने पर निचले न्यायालय द्वारा की गई उनकी दोषसिद्धि में हस्तक्षेप न करते हुए अपील खारिज की गई तथा दोषसिद्धि मान्य ठहराई गई ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 154 – प्रथम इत्तिला सूचना – प्रथम इत्तिला सूचना दर्ज कराए जाने में कोई विलंब न होने पर अभियोजन पक्षकथन प्रबल होता है ।

प्रस्तुत मामले में यह तीन अपीलें 2005 की दांडिक अपील सं. 17-डीबी और 360-डीबीए में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ द्वारा पारित किए गए तारीख 15 दिसम्बर, 2006 के एक ही निर्णय और आदेश के विरुद्ध की गई हैं । उच्च न्यायालय ने 2003 के सेशन विचारण सं. 97 में सेशन न्यायालय के तारीख 25/26 नवम्बर, 2004 के उस निर्णय और आदेश की भागतः पुष्टि की है जिसके द्वारा तीन अपीलार्थियों अर्थात् जोगा सिंह, मुख्तियार सिंह और निशाबर सिंह को भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे

इसमें इसके पश्चात् "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 149 के साथ पठित धारा 302 और 307 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और उन्हें आजीवन कारावास भोगने तथा 10,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने के लिए दंडादिष्ट किया गया था । अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – उपरोक्त को दृष्टिगत करने पर, यह न्यायालय उच्च न्यायालय से इस बाबत सहमत हैं कि न तो प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में कोई विलंब हुआ है और न ही मजिस्ट्रेट को उसकी प्रति भेजने में कोई विलंब हुआ है । यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण होगा कि प्रतिरक्षा पक्ष ने अन्वेषक अधिकारी की प्रतिपरीक्षा करने के दौरान इन मुद्दों के संबंध में कोई भी प्रश्न नहीं उठाया है ताकि अन्वेषक अधिकारी विलंब के संबंध में, यदि कोई विलंब हुआ था, स्पष्टीकरण देता । इस प्रकार, हमारा यह निष्कर्ष है कि इस संबंध में अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों में कोई बल नहीं है । विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि ऐसा प्रतीत होता है कि अभियुक्त पूरन सिंह को भी उसके पिता भजन सिंह **उर्फ** हरभजन सिंह के साथ इस मामले में आलिप्त किया गया है क्योंकि वह मुख्य अभियुक्त जोगा सिंह का भाई है । इस प्रकार, अभियुक्त पूरन सिंह का इस घटना में आलिप्त होना भी संदिग्ध है । दो प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों अर्थात् त्रिलोक सिंह (अभि. सा. 9) और अजायब सिंह (अभि. सा. 10) के साक्ष्य के आधार पर विचार किया जाना चाहिए । उनके कथनों के बीच कोई भी विरोधाभास नहीं है बल्कि एक दूसरे से उनकी संपुष्टि भी होती । अजायब सिंह (अभि. सा. 10) के साक्ष्य से त्रिलोक सिंह (अभि. सा. 9) के वृत्तांत की संपुष्टि होती है । इस साक्षी ने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि गुरदीप सिंह "मोगरा" से लैस था । जोगा सिंह और मुख्तियार सिंह तलवारों से लैस थे । पूरन सिंह और निशाबर सिंह "गड़ासे" से लैस थे । भजन सिंह **उर्फ** हरभजन सिंह के पास "नेजा" था । गुरदीप सिंह ने ज्ञान सिंह के सिर पर मोगरा से क्षति पहुंचाई थी जबकि मुख्तियार सिंह ने ज्ञान सिंह की पीठ पर तलवार से वार किया । वह नीचे गिर गया । इसके पश्चात् जोगा सिंह ने निशान सिंह के वक्ष पर तलवार से वार किया । भजन सिंह **उर्फ** हरभजन सिंह ने उसके वक्ष पर नेजा से वार किया । पूरन सिंह ने उसकी दाईं भौंह पर गड़ासे से वार किया । निशाबर सिंह ने उसकी पीठ पर गड़ासे से वार किया जिसके परिणामस्वरूप निशान सिंह जमीन पर गिर गया । अजायब सिंह (अभि. सा. 10) ने यह भी साक्ष्य दिया है कि जब उसने ज्ञान सिंह और निशान सिंह को बचाने का प्रयास किया था तब जोगा सिंह ने उसके पेट में तलवार से क्षति कारित की । मुख्तियार सिंह ने उसकी गर्दन के पीछे तलवार से क्षति

कारित की । निशाबर सिंह ने उसके बाएं कंधे पर गड़ासे से क्षति पहुंचाई । (पैरा 16, 17 और 18)

अंकित साक्षी के साक्ष्य को सम्यक् रूप से महत्व देना चाहिए क्योंकि घटनास्थल पर उसकी मौजूदगी पर संदेह नहीं किया जा सकता है । आम तौर पर उसके कथन को बहुत विश्वसनीय माना जाता है और यह असंभावी होगा कि वह वास्तविक हमलावर को बचाए और किसी अन्य व्यक्ति को मिथ्या आलिप्त करे । आहत साक्षी के परिसाक्ष्य की अपनी सुसंगतता होती है क्योंकि उसे घटना के समय घटनास्थल पर ही क्षतियां कारित होती हैं और इस बात से उसके परिसाक्ष्य को बल मिलता है कि वह घटनास्थल पर मौजूद था । इस प्रकार, आहत साक्षी के परिसाक्ष्य को विधि में विशेष हैसियत दी गई है । घटनास्थल पर मौजूद होने के आधार पर ऐसा साक्षी आधारभूत रूप से विश्वसनीय माना जाता है और उसके लिए यह असंभावी होगा कि वह अन्य किसी व्यक्ति को मिथ्या फंसाने के लिए वास्तविक अपराधी को बचाए । वर्तमान मामले जैसे मामले में, जहां दो व्यक्तियों की घटनास्थल पर मृत्यु हुई हो और अन्य व्यक्तियों को गंभीर क्षतियां पहुंची हों, वहां प्रत्यक्षदर्शी साक्षी स्वयं को बचाने का प्रयास करते हैं और जिन व्यक्तियों पर हमला किया जा रहा है उन्हें भी बचाने का प्रयास करते हैं । ऐसी तथ्यात्मक स्थिति में साक्षी से यह प्रत्याशा नहीं की जाती है कि वह घटना का सटीक वर्णन एक विशेषज्ञ के रूप में करे । थोड़े बहुत विरोधाभास, सुधार, फर्क उसके कथन में आ ही सकते हैं । इस प्रकार, उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए, हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई संकोच नहीं है कि इस संबंध में अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलील निरर्थक है । यह भी दलील दी गई है कि घटनास्थल पर बहुत से व्यक्ति इकट्ठा हो गए थे किंतु पता नहीं किस कारण से अभियोजन पक्ष द्वारा किसी भी स्वतंत्र साक्षी की परीक्षा नहीं की गई है । ऐसे मामले में जहां अकारण ही दो व्यक्तियों की हत्या कर दी गई हो और एक व्यक्ति को गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त कर दिया गया हो, वहां कोई भी पड़ोसी हस्तक्षेप नहीं करेगा और न ही हमलावरों के विरुद्ध अभिसाक्ष्य देगा चाहे उसने वह घटना स्वयं देखी हो । इसके अतिरिक्त, प्रतिरक्षा पक्ष ने अन्वेषक अधिकारी उपनिरीक्षक प्रकाश चंद (अभि. सा. 18) से यह मालूम नहीं किया है कि उसने स्वतंत्र साक्षियों की परीक्षा न किए जाने के लिए स्पष्टीकरण क्यों नहीं दिया है । इस बात को दृष्टिगत करते हुए, हमारी यह सुविचारित राय है कि अपीलार्थी संदेह का लाभ पाने के हकदार नहीं हैं । (पैरा 21, 24 और 25)

नातेदार साक्षी के साक्ष्य का अवलंब लिया जा सकता है परंतु यह तब जबकि वह विश्वसनीय हो । दिए गए मामले में अभियुक्त की दोषसिद्धि के निष्कर्ष पर पहुंचने के पूर्व ऐसे साक्ष्य की सावधानीपूर्वक संवीक्षा और मूल्यांकन किया जाना चाहिए । इस न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए दोषमुक्ति के निर्णय और आदेश में उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किए जाने के संबंध में कई बार मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित किए हैं । अपील न्यायालय को ऐसे मामले में दोषमुक्ति के निर्णय को आम तौर पर अपास्त नहीं करना चाहिए जिसमें दो मत संभव हों भले ही अपील न्यायालय द्वारा दिया गया मत अधिक संभावी हो । दोषमुक्ति के निर्णय पर विचार करते समय, अपील न्यायालय को अभिलेख पर प्रस्तुत संपूर्ण साक्ष्य पर विचार करना चाहिए ताकि यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि क्या विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया मत अनुचित है या अन्यथा चलने योग्य नहीं है । दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप किया जाना केवल "आपवादिक परिस्थितियों" में ही "आबद्धकारी कारणों" से ही अनुज्ञात किया जा सकता है । अपील न्यायालय इस पर विचार करने के लिए हकदार है कि क्या तथ्य के निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए विचारण न्यायालय ग्राह्य साक्ष्य पर विचार करने में असफल रहा है और/या अभिलेख पर प्रस्तुत किए गए साक्ष्य पर विधि के प्रतिकूल विचार किया है । इसी प्रकार, यदि सबूत का भार गलत तरीके से डाला गया है तब अपील न्यायालय द्वारा इस विषय की भी संवीक्षा की जा सकती है । "सारभूत और आबद्धकारी कारण", "ठीक और पर्याप्त आधार", "अत्यधिक ठोस परिस्थितियां", "विकृत निष्कर्ष", "स्पष्ट भूल" आदि जैसी अभिव्यक्तियां दोषमुक्ति के विरुद्ध किसी अपील में अपील न्यायालय की विस्तृत शक्ति को कम करने के लिए आशयित नहीं हैं । ऐसे वाक्यांशों में भाषा के दाव-पेचों के जैसी प्रकृति अधिक होती है ताकि दोषमुक्ति के निर्णय में हस्तक्षेप करने के लिए अपील न्यायालय के मन में अनिच्छा का भाव पैदा किया जा सके । इस प्रकार, जब केवल एक ही मत व्यक्त किया जाना संभव हो अर्थात् अभियोजन साक्ष्य से अभियुक्त के दोषी होने का संकेत मिलता हो और निर्णय प्रथमदृष्ट्या ही अनुचित हो तब अपील न्यायालय दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप कर सकता है । अपील न्यायालय को अभियुक्त की निर्दोषिता की उपधारणा को ध्यान में रखना चाहिए और यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि विचारण न्यायालय द्वारा की गई दोषमुक्ति से निर्दोषिता की उपधारणा प्रबलित हो जाती है । जहां अन्य मत भी संभव हो वहां सामान्य अनुक्रम में हस्तक्षेप करने से बचना चाहिए जब तक कि हस्तक्षेप

करने के लिए ठोस कारण न हो । (पैरा 26 और 28)

यह विधि की सुस्थापित प्रतिपादना है कि किसी साक्षी के साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय छोटो-मोटे मामलों को लेकर ऐसे थोड़े बहुत फर्कों से न्यायालय किसी साक्ष्य को पूर्णतया खारिज नहीं कर सकता है जिनसे अभियोजन पक्षकथन का मूल आधार प्रभावित न होता हो । ऐसे असंगत ब्यौरों को लोप या विरोधाभास नहीं कहा जा सकता है जिनसे किसी साक्ष्य की विश्वसनीयता संदिग्ध न होती हो । छोटे-मोटे ब्यौरों में आए फर्क से अभियोजन पक्षकथन का मूल आधार अन्यथा प्रभावित नहीं होता है, तब ऐसी स्थिति में न्यायालय छोटे-मोटे फर्कों और विभिन्नताओं के आधार पर साक्ष्य को खारिज नहीं करेगा । सतर्कता और सावधानी परखने के पश्चात् और असत्य, अतिश्योक्ति और सुधारों से सत्य को अलग करने के लिए साक्ष्य की संवीक्षा करने पर न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि अंतिम साक्ष्य अभियुक्त को दोषसिद्ध करने के लिए पर्याप्त है या नहीं । इस प्रकार, ऐसे लोपों, विरोधाभासों और फर्कों को असम्यक् महत्व नहीं दिया जाना चाहिए जिनका संबंध मामले के मूल आधार से नहीं होता है और जो अभियोजन साक्ष्य के मूल वृत्तांत को विचलित न कर सके । वर्तमान मामले में हमें साक्षियों के साक्ष्य में न तो कोई महत्वपूर्ण विरोधाभास दिखाई देता है और न ही चिकित्सीय साक्ष्य या प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य में ऐसा कोई विवाद दिखाई देता है जिसका लाभ अपीलार्थियों के पक्ष में जाए । साक्ष्य में ऐसे छोटे-मोटे सुधार या परिवर्तन आदि आए हैं जो महत्वपूर्ण नहीं है और उन्हें अनदेखा किया जाना चाहिए । अपीलार्थी जोगा सिंह द्वारा आत्म प्रतिरक्षा का यह आधार कि उसने शिकायतकर्ता पक्ष को अपनी जान बचाने के लिए क्षतियां पहुंचाई थीं, अत्यंत असंभावी और स्वीकार न किए जाने योग्य है । उच्च न्यायालय ने इस साक्ष्य को खारिज करके ठीक ही किया है और यह मत व्यक्त किया है कि अपीलार्थी जोगा सिंह यह भी नहीं समझता था कि शिकायतकर्ता पक्ष उसके विरुद्ध जाल बिछाये हुए था जब उसे आरंभ में अपने घर से बुलाया गया था । उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए, हमें किसी भी अपील में कोई बल दिखाई नहीं देता है । ये अपीलें खारिज की जाती हैं । तारीख 15 दिसंबर, 2006 के उच्च न्यायालय के निर्णय की पूर्णतया पुष्टि की जाती है । 2007 की दांडिक अपील संख्या 562 में के अपीलार्थी अर्थात् भजन सिंह, पूरन सिंह और गुरदीप सिंह को इस न्यायालय द्वारा तारीख 2 अगस्त, 2008 और 22 जुलाई, 2009 के आदेशों के अनुसार जमानत पर छोड़ा गया है । (पैरा 30, 31, 32 और 33)

अवलंबित निर्णय

पैरा

[2011] (2011) 1 एस. सी. सी. 793 :
कैलाश और अन्य बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ; 21

[2011] (2011) 4 एस. सी. सी. 779 :
रुकैया बेगम और अन्य बनाम **कर्नाटक राज्य** ; 28

[2011] (2011) 2 एस. सी. सी. 776 :
दुर्बल बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ; 21

[2011] (2011) 4 एस. सी. सी. 324 :
उत्तर प्रदेश राज्य बनाम **नरेश और अन्य** ; 21

[2011] (2011) 3 एस. सी. सी. 317 :
वी. एस. अच्युतानंदन बनाम **आर. बालाकृष्ण पिल्लई और अन्य** ; 28

[2011] ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 280 :
ब्रह्मस्वरूप और एक अन्य बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ; 28

[2011] (2011) 2 एस. सी. सी. 36 :
हिमांशु उर्फ **चिंटू** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली)** ; 26

[2010] ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 3624 :
किशन सिंह (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि बनाम **गुरपाल सिंह और अन्य** ; 9

[2010] ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 1639 :
एम. सी. अली और एक अन्य बनाम **केरल राज्य** ; 26

[2010] (2010) 10 एस. सी. सी. 259 :
अब्दुल सईद बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ; 21

[2010] (2010) 1 एस. सी. सी. 108 :
अरुण कुमार शर्मा बनाम **बिहार राज्य** ; 14

[2010] (2010) 8 एस. सी. सी. 19 :
विजय उर्फ **चीनी** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ; 30

[2009] (2009) 13 एस. सी. सी. 542 :
उत्तर प्रदेश राज्य बनाम **हरि चंद** ; 22

[2008] (2008) 12 एस. सी. सी. 531 :
गोरिज पेंतय्या बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य** ; 9

[2008] ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 320 :
सर्वेश नरायण शुक्ला बनाम **दरोगा सिंह और अन्य** ; 14

[2008] (2008) 15 एस. सी. सी. 315 :
एन. एच. मुहम्मद अफरास बनाम **केरल राज्य** ; 14

[2007] (2007) 5 एस. सी. सी. 634 :
सुमन सूद उर्फ **कमलजीत कौर** बनाम **राजस्थान राज्य** ; 28

[2007] (2007) 13 एस. सी. सी. 501 :
रमेश बाबू राव देवारकर और अन्य बनाम
महाराष्ट्र राज्य ; 14

[2006] ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 1410 :
जम्मू-कश्मीर राज्य बनाम **मोहन सिंह और अन्य** ; 14

[2006] (2006) 12 एस. सी. सी. 626 :
जगदीश मुराव बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** ; 14

[2003] (2003) 3 एस. सी. सी. 355 :
राजीवन और एक अन्य बनाम **केरल राज्य** ; 13

[2003] (2003) 11 एस. सी. सी. 271 :
पंजाब राज्य बनाम **करनैल सिंह** ; 14

[2003] (2003) 7 एस. सी. सी. 258 :
गुरदेव सिंह और एक अन्य बनाम **पंजाब राज्य** ; 14

[2001] ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 3031 :
मुंशी प्रसाद और अन्य बनाम **बिहार राज्य** ; 12

[2001] ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 990 :
राजस्थान राज्य बनाम **तेजा सिंह** ; 14

[2000] ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 754 :
जी. सागर सूरी और एक अन्य बनाम **उत्तर**
प्रदेश राज्य और अन्य ; 9

[1998] ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 49 :
शिवराम और एक अन्य बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ; 11

[1997] ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 3247 :
साहिब सिंह बनाम **हरियाणा राज्य** ; 9

[1996] ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 3041 :
कर्नाटक राज्य बनाम **मोईन पटेल और अन्य** ; 12

[1985] ए. आई. आर. 1985 एस. सी. 131 :
उत्तर प्रदेश राज्य बनाम **गोकरण और अन्य** ; 14

[1976] ए. आई. आर. 1976 एस. सी. 2304 :
सरवन सिंह और अन्य बनाम **पंजाब राज्य** ; 14

[1972] ए. आई. आर. 1972 एस. सी. 2679 :
पाला सिंह और एक अन्य बनाम **पंजाब राज्य** ; 12

[1961] ए. आई. आर. 1961 एस. सी. 715 :
सनवत सिंह और अन्य बनाम **राजस्थान राज्य** । 28

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : **2007 की दांडिक अपील सं. 562. [इसके साथ 2008 की दांडिक अपील सं. 982 और 983 की भी सुनवाई की गई]**

2005 की दांडिक अपील सं. 360 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ की खंड न्यायपीठ के तारीख 15 दिसम्बर, 2006 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री अमित कुमार, रितेश रतनाम और जवाहर लाल

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री राजीव गौड़ नसीम और कमल मोहन गुप्ता

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति (डा.) बी. एस. चौहान ने दिया ।

न्या. (डा.) चौहान – यह तीन अपीलें 2005 की दांडिक अपील सं. 17-डीबी और 360-डीबीए में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ द्वारा पारित किए गए तारीख 15 दिसम्बर, 2006 के एक ही निर्णय और आदेश के विरुद्ध की गई हैं । उच्च न्यायालय ने 2003 के सेशन विचारण

सं. 97 में सेशन न्यायालय के तारीख 25/26 नवम्बर, 2004 के उस निर्णय और आदेश की भागतः पुष्टि की है जिसके द्वारा तीन अपीलार्थियों अर्थात् जोगा सिंह, मुख्तियार सिंह और निशाबर सिंह को भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 149 के साथ पठित धारा 302 और 307 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और उन्हें आजीवन कारावास भोगने तथा 10,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने के लिए दंडादिष्ट किया गया था । इसके अतिरिक्त, उच्च न्यायालय ने अभियुक्तों/अपीलार्थियों अर्थात् भजन सिंह, पूरन सिंह और गुरदीप सिंह को दोषसिद्ध किया जिन्हें विचारण न्यायालय द्वारा सभी आरोपों से दोषमुक्त किया गया था, उच्च न्यायालय ने इन सभी अभियुक्तों को अन्य अभियुक्तों के समान दंड से दंडादिष्ट किया ।

2. इन अपीलों को जिन तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है वे निम्न प्रकार हैं :–

(क) शिकायतकर्ता त्रिलोक सिंह (अभि. सा. 9) की शिकायत में उल्लिखित अभियोजन वृत्तांत इस प्रकार है कि तारीख 6 नवम्बर, 2002 को 5.00 बजे अपराह्न में वे अपने मकान पर अपने पुत्रों अर्थात् ज्ञान सिंह (मृतक), निशान सिंह (मृतक), अपनी पत्नी स्वर्ण कौर, पुत्री हरभजन कौर, पौत्र हरभजन सिंह और नाती अजायब सिंह (आहत-अभि. सा. 10) के साथ मौजूद था । भजन सिंह, नेजा (गुप्ती) से, गुरदीप सिंह मोगरा (पिस्तौल) से, पूरन सिंह गड़ासे से, जोगा सिंह तलवार से, निशाबर सिंह गड़ासे से और मुख्तियार सिंह तलवार से लैस थे जिनके साथ दो महिलाएं अर्थात् चिन्दर कौर और मंजीत कौर भी थीं, ये सब व्यक्ति उसके मकान में घुस आए और ललकार कर कहा कि उन्होंने उनके मवेशियों को गली में बांध रखा है जिसके लिए वे उन्हें सबक सिखाएंगे । सभी अभियुक्तों ने ज्ञान सिंह (मृतक) और निशान सिंह (मृतक) पर हमला किया । गुरदीप सिंह ने ज्ञान सिंह के सिर पर मोगरे से वार किया और मुख्तियार सिंह ने ज्ञान सिंह की कमर पर तलवार से वार किया जिसके परिणामस्वरूप वह गिर गया । जोगा सिंह ने निशान सिंह के वक्ष पर तलवार से वार किया । भजन सिंह ने उसकी कमर पर नेजे से क्षति पहुंचाई, पूरन सिंह ने उसकी दाईं भौंह पर गड़ासे से वार किया, निशाबर सिंह ने उसकी कमर पर गड़ासे से क्षति पहुंचाई और इसके परिणामस्वरूप निशान सिंह जमीन पर गिर गया । जोगा सिंह ने अजायब सिंह (अभि. सा. 10) के आमाशय पर तलवार से वार किया, मुख्तियार सिंह ने अजायब सिंह की गर्दन पर तलवार

से वार किया और इसके परिणामस्वरूप वह गिर गया । इसके पश्चात् सभी हमलावर घटनास्थल से अपने-अपने हथियारों के साथ भाग गए । ज्ञान सिंह और निशान सिंह की क्षतियों के कारण घटनास्थल पर ही मृत्यु हो गई । आहत अजायब सिंह (अभि. सा. 10) को अस्पताल ले जाया गया ।

(ख) शिकायत के आधार पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई गई और उसे प्रदर्श पीबी-1 के रूप में रजिस्ट्रीकृत किया गया । उप निरीक्षक प्रकाश चंद (अभि. सा. 18), फोटाग्राफर सुरिन्दर कुमार और अन्य पुलिस कार्मिकों के साथ लगभग 8.15 बजे अपराह्न में घटनास्थल पर पहुंचा । शवों आदि के फोटो खींचे गए, ज्ञान सिंह और निशान सिंह के शवों की मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट तैयार की गई और रक्तरंजित मिट्टी घटनास्थल से उठाई गई । इसे अलग से पार्सल में मुहरबंद किया गया । शवों को शवपरीक्षण के लिए भेज दिया गया और स्थल नक्शा तैयार किया । तारीख 7 नवम्बर, 2002 को डा. राजेश गांधी (अभि. सा. 11) द्वारा शवपरीक्षण किया जिन्होंने यह राय व्यक्त की कि दोनों व्यक्तियों की मृत्यु का कारण क्षतियों से होने वाला सदमा और रक्तस्राव है । आहत अजायब सिंह (अभि. सा. 10) की भी परीक्षा तारीख 6 नवम्बर, 2002 को की गई जिसमें यह पाया गया कि उसके वक्ष और उदर में अनेक वेधित क्षतियां थीं । तारीख 7 नवम्बर, 2002 को उसकी शल्य चिकित्सा की गई और उसे तारीख 20 नवम्बर, 2002 को अस्पताल से छुट्टी दे दी गई ।

(ग) तारीख 10 नवम्बर, 2002 को भजन सिंह **उर्फ** हरभजन सिंह को गिरफ्तार किया और उसके प्रकटीकरण कथन के आधार पर नेजा (गुप्ती) उसके मकान से बरामद किया गया । अपीलार्थी पूरन सिंह के प्रकटीकरण कथन के आधार पर उसके मकान में रखे उसके संदूक के नीचे से गड़ासा बरामद किया गया और उसी दिन अपीलार्थी जोगा सिंह के इस प्रकटीकरण कथन के आधार पर तलवार बरामद की गई कि उसने तलवार अपने आवासीय मकान में बिस्तर के नीचे छुपा रखी है । तारीख 11 नवम्बर, 2002 को गुरदीप सिंह ने प्रकटीकरण कथन दिया जिसके आधार पर एक मोगरा, जिसका प्रयोग अपराध में अभिकथित रूप से किया गया था, उसके आवासीय मकान से बरामद किया गया । उसी दिन मुख्तियार सिंह ने भजन सिंह के मकान से छुपाई गई तलवार बरामद कराई । अन्वेषण पूरा होने पर, न्यायालय में आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया । छहों अभियुक्तों के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 149 के साथ पठित धारा 148, 302 और 307 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए आरोप विरचित किए गए । दो महिलाओं अर्थात् चिन्दर कौर

और मंजीत कौर को उन्मुक्त कर दिया गया । चूंकि सभी अभियुक्तों ने उन पर लगाए गए आरोपों का दोषी न होने का अभिवाक् किया इसलिए उन्होंने विचारण की मांग की और उनका विचारण किया गया ।

(घ) विचारण के दौरान, अभियोजन पक्ष ने कुल मिलाकर आहत अजायब सिंह (अभि. सा. 10) और शिकायतकर्ता त्रिलोक सिंह (अभि. सा. 9) सहित 19 साक्षियों की परीक्षा की । सभी अपीलार्थियों की परीक्षा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "संहिता" कहा गया है) की धारा 313 के अधीन की गई । अपीलार्थी जोगा सिंह ने यह अभिवाक् किया है कि घटना के समय वह अपने मकान में मौजूद था जो शिकायतकर्ता के मकान के बराबर में है । अजायब सिंह (अभि. सा. 10) उसके घर पर आया और उसने उससे कहा कि उसे कोई व्यक्ति ग्राम की "फिरनी" पर बुला रहा है । जब वह बाहर आया, ज्ञान सिंह और निशान सिंह (दोनों मृतक) और अजायब सिंह (अभि. सा. 10) ने उसे दबोच लिया और उसे बलपूर्वक घसीट कर अपने घर की ओर ले आए । इस बात की आशंका और संदेह होने पर कि वे उसे अपने मकान के भीतर ले जाएंगे और उसकी हत्या कर देंगे, तब उसने ज्ञान सिंह को धक्का दिया जिसके परिणामस्वरूप उसका सिर दीवार से जा टकराया । अन्य व्यक्तियों ने अर्थात् निशान सिंह (मृतक) और अजायब सिंह (अभि. सा. 10) ने उसे बचाने के लिए और स्थिति पर काबू करने के लिए कृपाण निकाली और उससे आत्मरक्षा के लिए वार किया । इस पृष्ठभूमि के आधार पर ज्ञान सिंह, निशान सिंह और अजायब सिंह को क्षतियां पहुंचीं । अन्य अभियुक्तों ने मात्र अभिकथनों से इनकार किया है और इस मामले में मिथ्या फंसाए जाने की शिकायत की है । तथापि, किसी भी अपीलार्थी/अभियुक्त ने अपनी प्रतिरक्षा में कोई भी साक्षी प्रस्तुत नहीं किया है ।

(ङ) विचारण पूरा होने पर, विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अपीलार्थी भजन सिंह **उर्फ** हरभजन सिंह, पूरन सिंह और गुरदीप सिंह संदेह का लाभ दिए जाने के हकदार हैं और उन्हें सभी आरोपों से दोषमुक्त कर दिया । तथापि, अन्य शेष तीन अपीलार्थी अर्थात् जोगा सिंह, मुख्तियार सिंह और निशान सिंह को दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 307 के अधीन दोषसिद्ध किया और उन्हें दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन आजीवन कारावास भोगने तथा एक हजार रुपए के जुर्माने के संदाय करने का दंडादेश दिया और दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 307 के अधीन सात वर्ष का कारावास भोगने और पांच हजार रुपए के

जुर्माने का संदाय करने जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर छह मास का अतिरिक्त कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया । तथापि, उन्हें दंड संहिता की धारा 148 के अधीन आरोपों से दोषमुक्त कर दिया ।

3. विचारण न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध किए गए तीन अपीलार्थियों ने इस निर्णय से व्यथित होकर 2005 की दांडिक अपील सं. 17-डीबी फाइल की और अन्य तीन अपीलार्थियों की दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध हरियाणा राज्य ने 2005 की दांडिक अपील सं. 360 डीबीए फाइल की । उच्च न्यायालय ने दोनों अपीलों की एक साथ सुनवाई की और तारीख 15 दिसम्बर, 2006 के एक ही निर्णय और आदेश द्वारा उनका निपटारा किया और 2005 की दांडिक अपील सं. 17-डीबी में अपीलार्थियों की दोषसिद्धि को कायम रखा । न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निर्णय और आदेश को उलट दिया जिसके द्वारा अन्य तीन अपीलार्थियों को दोषमुक्त किया गया था और उच्च न्यायालय ने उन्हें उन्हीं अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया । उच्च न्यायालय ने एक ही जैसा दंडादेश अधिनिर्णीत किया जो विचारण न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध किए गए अभियुक्तों को दिया गया था । इस प्रकार ये अपीलें फाइल की गई हैं ।

4. अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री अमित कुमार ने यह दलील दी है कि किसी भी स्वतंत्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी की परीक्षा नहीं की गई है । उच्च न्यायालय ने शिकायतकर्ता त्रिलोक सिंह (अभि. सा. 9) और उसके पौत्र अजायब सिंह (अभि. सा. 10) के साक्ष्य का अत्यधिक अवलंब लिया है । इस तथ्य के बावजूद कि बहुत से व्यक्तियों ने इस घटना को देखा है फिर भी उनमें से किसी भी व्यक्ति की परीक्षा नहीं की गई है । त्रिलोक सिंह (अभि. सा. 9) और अजायब सिंह (अभि. सा. 10) के अभिसाक्ष्यों और निचले न्यायालयों के निर्णयों से यह स्पष्ट हो गया है कि अभियोजन पक्ष द्वारा घटनास्थल को बदला गया है और इस प्रकार अभियोजन पक्ष सही तथ्यों को प्रकट करने का अपना कर्तव्य पूरा नहीं कर सका है । मृतकों और अजायब सिंह (अभि. सा. 10) को पहुंची क्षतियां चिकित्सा साक्ष्य से मेल नहीं खाती हैं । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में तीन घंटे का असाधारण विलंब किया गया है यद्यपि पुलिस थाना घटनास्थल के निकट ही था । अपराध की सूचना, जैसाकि संहिता की धारा 157 के अधीन अपेक्षित है, इलाका मजिस्ट्रेट को तीन घंटे के असाधारण विलंब के पश्चात् दी गई है । अपराध में प्रयोग किए गए हथियार चिकित्सा विशेषज्ञों को उनकी राय लेने के लिए नहीं दिखाए गए हैं जिससे यह सुनिश्चित हो जाता कि मृतकों और आहत अजायब सिंह

(अभि. सा. 10) को जो क्षतियां पहुंची थीं वे इन हथियारों से कारित की जा सकती थीं या नहीं । उच्च न्यायालय ने, जहां तक तीन अपीलार्थियों का संबंध है, उनकी दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप करके गलती की है । इस प्रकार, अपीलें खारिज किए जाने योग्य हैं ।

5. इसके प्रतिकूल, हरियाणा राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री राजीव गौड़ "नसीम" ने अपीलों का दृढ़तापूर्वक विरोध करते हुए यह दलील दी है कि अपीलार्थियों द्वारा पूर्व नियोजित हमला किया गया था क्योंकि गुरदीप सिंह और भजन सिंह **उर्फ** हरभजन सिंह उस दिन 7.00 बजे पूर्वाह्न में शिकायतकर्ता के मकान पर आए थे और उन्होंने उससे कहा कि वह गली में उसके मवेशियों को न बांधा करे अन्यथा शिकायतकर्ता के परिवार वालों को भयानक परिणाम भुगतने होंगे । परिवार वालों को सबक सिखाने के सामान्य आशय को अग्रसर करने में उसी दिन 5.00 बजे अपराह्न में हमला किया गया । अपीलार्थियों ने दो निर्दोष व्यक्तियों की नृशंस हत्या कारित की है और अजायब सिंह (अभि. सा. 10) को गंभीर क्षतियां पहुंचाई हैं । अपीलार्थियों के प्रकटीकरण कथनों के आधार पर हथियार बरामद किए गए हैं और उन्हें रिपोर्ट के लिए न्यायालय के प्रयोगशाला भेजा गया था और रिपोर्ट सकारात्मक पाई गई । निकट नातेदार के साक्ष्य का अवलंब लेने के लिए विधि के अधीन कोई प्रतिषेध नहीं है, अपितु यह अपेक्षित है कि ऐसे व्यक्तियों के साक्ष्य की संवीक्षा पूरी सतर्कता के साथ की जानी चाहिए । तथापि, आहत साक्षी के साक्ष्य का अवलंब लिया जाना चाहिए परन्तु अन्य पक्ष के विरुद्ध साक्ष्य गढ़ने के लिए ये क्षतियां ऊपरी या स्वयं कारित की गई नहीं होनी चाहिए । चिकित्सा साक्ष्य और प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य में कोई भी सारभूत विसंगति नहीं है । यदि सामान्य उद्देश्य साबित हो जाता है, तब ऐसी छोटी-मोटी विसंगतियां महत्वपूर्ण नहीं रह जाती हैं । उच्च न्यायालय ने तीन अपीलार्थियों की दोषमुक्ति के आदेश को उलट कर ठीक किया है क्योंकि उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि तथ्यों के निष्कर्ष जो विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित किए गए थे, अनुचित हैं । इस प्रकार, अपीलों में गुणता का अभाव है और ये खारिज की जानी चाहिए ।

6. हमने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों द्वारा दी गई परस्पर विरोधी दलीलों पर विचार किया है और अभिलेख का परिशीलन किया है ।

7. **क्षतियां :**

I. डा. राजेश गांधी (अभि. सा. 11) ने डा. आर. एन. भूरा के साथ

मिलकर ज्ञान सिंह के शव का शवपरीक्षण किया है और उन्होंने निम्न क्षतियां पाईं :–

(1) पांचवीं (टी-5) कशेरूक के पीछे की ओर मध्यरेखा के दाईं ओर 2 सें. मी. की दूरी पर वेधित घाव है । घाव की दिशा क्षैतिज है । घाव की माप 3 सें. मी. x 2 सें. मी. है । विच्छेदन करने पर दाएं फेफड़े में विदीर्ण घाव है । गुहा में लगभग 250 मिलीलीटर द्रव मिश्रित रक्त मौजूद है । आगे और विच्छेदन करने पर यकृत के पश्च पृष्ठ पर 2 सें. मी. x 1 सें. मी. माप का छिन्न घाव मौजूद है । उदरीय गुहा में 700 मिलीलीटर द्रव मिश्रित रक्त मौजूद है ।

(2) करोटि का विच्छेदन करने पर पार्श्वकपालीय भाग में 5 सें. मी. x 2 सें. मी. माप की रक्तपूतिता पाई गई ।

इस साक्षी ने यह भी राय व्यक्त की है कि मृत्यु का कारण ऊपर उल्लिखित क्षतियों के परिणामस्वरूप होने वाला आघात और रक्तस्राव है जिनकी प्रकृति मृत्युपूर्व की है और प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित किए जाने के लिए पर्याप्त है ।

II. उसी दिन लगभग 10.30 बजे पूर्वाह्न में, डा. राजेश गांधी (अभि. सा. 11) और अन्य चिकित्सकों ने निशान सिंह के शव का शवपरीक्षण किया है और निम्न क्षतियां पाई हैं :–

(1) ग्रीवा के सामने की ओर छिन्न घाव मौजूद है जो बाईं ओर पर मध्य रेखा के पार्श्व में है, तिरछा है और खोलने पर कण्ठनाल और ग्रास नली में छिद्र पाया जाता है । घाव की माप 6 सें. मी. x 3 सें. मी. है । बाह्य ग्रैवीय धमनी भी छिद्रयुक्त है ।

(2) दाईं कोहनी के अग्र पार्श्विक भाग में छिन्न घाव मौजूद है । उस घाव का आकार 6 सें. मी. x 3 सें. मी. है जो मांसपेशी तक गहरा है ।

(3) स्कंधास्थि के नीचे 4 सें. मी. की दूरी पर दाईं ओर पीठ पर वेधित घाव है, यह घाव मध्य कक्षीय रेखा के मध्य में 6 सें. मी. की दूरी पर तिरछा बना हुआ है और इसका आकार 3 सें. मी. x 2 सें. मी. है और इसकी गहराई फेफड़े तक है । फेफड़े का विच्छेदन करने पर यह घाव धारदार कटा हुआ दिखाई देता है ।

(4) पश्चोदर के नीचे की ओर 6 सें. मी. की दूरी पर मध्य अधिजठर भाग में वेधित घाव मौजूद है । घाव तर्कु आकार और

तिरछा है जिसकी माप 4 सें. मी x 2 सें. मी. है । वपाजाल (पेट का परदा जो उदरस्थ आशयों को जठर के साथ जोड़ता है) बाहर निकला हुआ है ।

III. अजायब सिंह (अभि. सा. 10) की चिकित्सा परीक्षा की गई और उसके शरीर पर निम्न क्षतियां पाई गईं :–

(1) बाएं कन्धे पर 6 सें. मी x 3 सें. मी. माप का छिन्न घाव जिसकी गहराई मासपेशी तक है ।

(2) आमाश्य में तलवार से पहुंचाई गई क्षति ।

(3) ग्रीवा पर पहुंची क्षति ।

इस साक्षी, रेशन एनंएटोमोसिस और यकृत शल्यन, द्विपार्श्विक अन्तःपर्शु का निकास नाल बनाकर तथा उदर प्रक्षालन (आमाश्य की सफाई) करके उदर-शल्यन द्वारा समन्वेषण किया गया ।

8. अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री अमित कुमार ने यह दलील दी है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने और उसकी प्रति न्यायालय को भेजने में विलंब हुआ है । अतः अभियोजन पक्ष अपराध की उत्पत्ति को निष्पक्ष रूप में दर्शाने में असफल रहा है ।

9. इत्तिलाकर्ता द्वारा विस्तृत ब्यौरों के साथ घटना की तत्काल रिपोर्ट किए जाने से अभियोजन पक्ष का वृत्तांत विश्वसनीय प्रतीत होता है । यदि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल किए जाने में कुछ विलंब हुआ है तब शिकायतकर्ता को इस संबंध में स्पष्टीकरण देना चाहिए । निःसंदेह, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में हुए विलंब से शिकायकर्ता का पक्षकथन असंभाव्य नहीं होता है जबकि ऐसा विलंब समुचित रूप से स्पष्ट किया गया हो । तथापि, शिकायत दर्ज कराने में जानबूझकर किया गया विलंब घातक साबित हो सकता है । विलंब के ऐसे मामले में यह उपधारित नहीं किया जा सकता है कि लगाए गए अभिकथन बाद में आया विचार है या घटनाओं का उल्लेख बढ़ाचढ़ाकर किया गया है । न्यायालय को अपने समक्ष प्रस्तुत किए गए तथ्यों पर सावधानीपूर्वक विचार करना चाहिए जिसका यह कारण है कि शिकायकर्ता पक्ष दुर्भावना से अन्य पक्ष को तंग करने या बदले की भावना से दांडिक कार्यवाहियां चला सकता है । न्यायालयों की कार्यवाहियों को तंग या उत्पीड़ित करने के हथियार के रूप में प्रयोग किए जाने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाना चाहिए । ऐसे मामले में, जब अन्य पक्षकार को स्पष्ट रूप से निजी दुर्भावना के कारण तंग करने

और लंबी और दुखदाई दांडिक कार्यवाही चलाने के उद्देश्य से प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई जाती है तब न्यायालय यह मत व्यक्त कर सकता है कि ऐसा करना विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग किए जाने की कोटि में आएगा । (**साहिब सिंह** बनाम **हरियाणा राज्य**[1] ; **जी. सागर सूरी और एक अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[2]; **गोरिज पेंतय्या** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य**[3] और **किशन सिंह (मृतक)** द्वारा **विधिक प्रतिनिधि** बनाम **गुरपाल सिंह और अन्य**[4] वाले मामले देखिए)

10. वर्तमान मामले में, यह घटना तारीख 6 नवंबर, 2002 को लगभग 5.00 बजे अपराह्न में घटित हुई थी । त्रिलोक सिंह (अभि. सा. 9) पुलिस थाना सफीदौं को जा रहा था जब प्रकाश चंद्र (अभि. सा. 18) अर्थात् पुलिस उप निरीक्षक अन्य पुलिस कार्मिकों के साथ पुराना बस अड्डा, सफीदौं पर उसे मिला था । त्रिलोक सिंह (अभि. सा. 9) का कथन उप निरीक्षक प्रकाश चंद्र द्वारा अभिलिखित किया गया । फाइल पर उपलब्ध साक्ष्य से यह साबित होता है कि विशेष रिपोर्ट तारीख 6 नवंबर, 2002 को 10.45 बजे अपराह्न में इलाका मजिस्ट्रेट द्वारा प्राप्त की गई थी । यह घटना ग्राम छप्पर में घटित हुई थी जो पुलिस थाना सफीदौं से लगभग 6 कि. मी. की दूरी पर है । त्रिलोक सिंह (अभि. सा. 9) के दो पुत्र अर्थात् ज्ञान सिंह और निशान सिंह की इस घटना में मृत्यु हुई है । अजायब सिंह (अभि. सा. 10) गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त हुआ है । उसे अस्पताल ले जाया गया । इसलिए, ये सभी प्रबंध करने के पश्चात्, त्रिलोक सिंह (अभि. सा. 9) पुलिस में रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए पुलिस थाने गया । उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए, हम इस अकाट्य निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि इस मामले में पुलिस में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में कोई विलंब नहीं हुआ है ।

न्यायालय को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की प्रति भेजने में हुआ विलंब

11. **शिवराम और एक अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[5] वाले मामले में इस न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 157 के उपबंधों पर विचार किया है जिनके अंतर्गत यह अपेक्षा की गई है कि पुलिस कार्मिक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की प्रति इलाका मजिस्ट्रेट को तत्काल

---

[1] ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 3247.
[2] ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 754.
[3] (2008) 12 एस. सी. सी. 531.
[4] ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 3624.
[5] ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 49.

भेजेंगे । न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि यदि इलाका मजिस्ट्रेट को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की प्रति अग्रेषित करने में विलंब किया जाता है तब मात्र इस परिस्थिति से अभिलेख पर का अन्य विश्वसनीय साक्ष्य निष्प्रभावी नहीं होगा । इससे यह दर्शित होता है कि ऐसे गंभीर अपराध में अन्वेषक अभिक्रम उतना सावधान और सचेत नहीं था जितना उसे होना चाहिए था ।

12. **मुंशी प्रसाद और अन्य** बनाम **बिहार राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने इस मुद्दे पर पुनः विचार करते हुए यह मत व्यक्त किया है :–

> "यह सत्य है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 157 के अधीन पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को इस संबंध में आबद्ध किया गया है कि वह प्राप्त की गई सूचना की रिपोर्ट मजिस्ट्रेट को तत्काल भेजे किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि अभिलेख पर उपलब्ध अन्य सकारात्मक और विश्वसनीय साक्ष्य त्यक्त कर दिया जाए । तकनीकी आधार पर न्याय के महत्व को कम नहीं किया जा सकता यदि न्यायालय का अन्यथा समाधान हो जाता है और वह अभियोजन पक्षकथन की सत्यता के संबंध में इस निष्कर्ष पर पहुंचता है जो अन्यथा भी युक्तियुक्त साबित होता है, तब अभियोजन पक्षकथन निष्फल नहीं होगा ।"

इस न्यायालय ने उक्त मामले को विनिश्चित करते समय **पाला सिंह और एक अन्य** बनाम **पंजाब राज्य**[2] और **कर्नाटक राज्य** बनाम **मोईन पटेल और अन्य**[3] वाले मामलों में किए गए अपने पूर्ववर्ती निर्णयों का अवलंब लिया है ।

13. **राजीवन और एक अन्य** बनाम **केरल राज्य**[4] वाले मामले में, इस न्यायालय ने ऐसे मामले पर विचार किया है जिसमें इलाका मजिस्ट्रेट को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की प्रति भेजने में असामान्य विलंब हुआ है और यह अभिनिर्धारित किया है कि स्पष्ट न किए गए असामान्य विलंब से अभियोजन पक्षकथन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है । तथापि, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर होगा ।

---

[1] ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 3031.
[2] ए. आई. आर. 1972 एस. सी. 2679.
[3] ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 3041.
[4] (2003) 3 एस. सी. सी. 355.

14. ऐसा ही मत **रमेश बाबू राव देवारकर और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में दोहराया गया है जिसमें इलाका मजिस्ट्रेट को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की प्रति भेजने में चार दिन का विलंब किया गया है और ऐसे असामान्य विलंब के संबंध में कोई भी संतोषजनक स्पष्टीकरण नहीं दिया जा सका है । उक्त मामले को विनिश्चित करते समय, **राजस्थान राज्य** बनाम **तेजा सिंह**[2] ; और **जगदीश मुराव** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[3] वाले मामलों में किए गए पूर्ववर्ती निर्णयों का अवलंब लिया गया है ।

[**सरवन सिंह और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य**[4] ; **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **गोकरण और अन्य**[5] ; **गुरदेव सिंह और एक अन्य** बनाम **पंजाब राज्य**[6] ; **पंजाब राज्य** बनाम **करनैल सिंह**[7] ; **जम्मू-कश्मीर राज्य** बनाम **मोहन सिंह और अन्य**[8] ; **एन. एच. मुहम्मद अफरास** बनाम **केरल राज्य**[9] ; **सर्वेश नरायण शुक्ला** बनाम **दरोगा सिंह और अन्य**[10] ; और **अरुण कुमार शर्मा** बनाम **बिहार राज्य**[11] वाले मामले भी देखिए ।]

15. इस प्रकार, उपरोक्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत आंतरिक और बाहरी शर्तों का उपबंध किया गया है जिनमें से एक संबद्ध मजिस्ट्रेट द्वारा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की प्रति प्राप्त किया जाना है । इससे यह प्रयोजन पूरा होता है कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट न तो समयपूर्व की हो और न ही पूर्व तारीख की हो । मजिस्ट्रेट को तत्काल प्रत्येक गंभीर अपराध की सूचना दी जानी चाहिए ताकि वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 159 के अधीन, यदि ऐसा अपेक्षित है, कार्य करने की स्थिति में आ सके । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 159 मजिस्ट्रेट को अपराध का अन्वेषण कराने और उसके संबंध में स्वयं प्राथमिक जांच करने या उसके अधीनस्थ किसी मजिस्ट्रेट द्वारा जांच कराने के लिए सशक्त

---

[1] (2007) 13 एस. सी. सी. 501.
[2] ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 990.
[3] (2006) 12 एस. सी. सी. 626.
[4] ए. आई. आर. 1976 एस. सी. 2304.
[5] ए. आई. आर. 1985 एस. सी. 131.
[6] (2003) 7 एस. सी. सी. 258.
[7] (2003) 11 एस. सी. सी. 271.
[8] ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 1410.
[9] (2008) 15 एस. सी. सी. 315.
[10] ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 320.
[11] (2010) 1 एस. सी. सी. 108.

बनाती है । यह धारा मजिस्ट्रेट को अन्वेषण के बारे में सूचना देते रहने के लिए बनाई गई है ताकि वह अन्वेषण को नियंत्रित कर सके और यदि आवश्यक हो, समुचित निदेश भी दे सके । ऐसा नहीं है कि यदि मजिस्ट्रेट को रिपोर्ट भेजने में किए गए प्रत्येक विलंब से आवश्यक रूप से यह निष्कर्ष निकाला जाएगा कि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट कथित समय पर नहीं कराई गई है या यह समयपूर्व या तारीख पूर्व कराई गई है या अन्वेषण निष्पक्ष और तत्काल नहीं किया गया है । ऐसा प्रत्येक विलंब घातक नहीं होता है जब तक कि यह दर्शित न किया जाए कि अभियुक्त पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है । इस धारा में उल्लिखित 'तत्काल' अभिव्यक्ति का यह अर्थ नहीं है कि अभियोजन पक्ष से यह अपेक्षा की जाए कि वह मजिस्ट्रेट को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट भेजने में हुए विलंब के प्रत्येक घंटे का स्पष्टीकरण दे । दिए गए मामले में, यदि मृत और आहत व्यक्तियों की संख्या अत्यधिक है, तब रिपोर्ट भेजने में हुआ विलंब स्वाभाविक होगा । निःसंदेह, प्रभावी परिस्थितियों में युक्तियुक्त समय के भीतर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट भेज देनी चाहिए । तथापि, मजिस्ट्रेट को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की प्रति भेजने में हुए असामान्य विलंब से, जिसका स्पष्टीकरण भी नहीं दिया गया है, अभियोजन पक्षकथन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है । अभियोजन पक्ष के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला जा सकता है यदि ऐसी परिस्थितियां हों जिनसे यह पता चलता हो कि सम्यक् रूप से सोच-विचार करने के पश्चात् अभियुक्त व्यक्तियों को मिथ्या आलिप्त करने के लिए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में जोड़-तोड़ किए गए हैं । विलंब किए जाने से वैध रूप से प्रथम इत्तिला रिपोर्ट पर संदेह किए जाने का आधार बन जाता है । क्योंकि ऐसा करने से अभियोजन पक्ष को पर्याप्त समय मिल जाता है कि वह प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में सुधार और जोड़-तोड़ कर सके । इस प्रकार, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट भेजने में हुआ विलंब स्वयं में ऐसी परिस्थिति नहीं है जिसके आधार पर संपूर्ण अभियोजन पक्षकथन त्यक्त किया जा सके । विशेषकर ऐसी स्थिति में जब अभियोजन पक्ष ने रिपोर्ट भेजने में हुए विलंब का तर्कसम्मत स्पष्टीकरण दिया हो या स्वयं अभियोजन पक्षकथन अनधिक्षेप्य साक्ष्य द्वारा साबित किया गया हो ।

16. उपरोक्त को दृष्टिगत करने पर, हम उच्च न्यायालय से इस बाबत सहमत हैं कि न तो प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराने में कोई विलंब हुआ है और न ही मजिस्ट्रेट को उसकी प्रति भेजने में कोई विलंब हुआ है । यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण होगा कि प्रतिरक्षा पक्ष ने अन्वेषक अधिकारी की प्रतिपरीक्षा करने के दौरान इन मुद्दों के संबंध में कोई भी प्रश्न नहीं उठाया है ताकि अन्वेषक अधिकारी विलंब के संबंध में, यदि कोई

विलंब हुआ था, स्पष्टीकरण देता । इस प्रकार, हमारा यह निष्कर्ष है कि इस संबंध में अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों में कोई बल नहीं है ।

17. अपीलार्थियों की ओर से यह भी दलील दी गई है कि चिकित्सीय साक्ष्य और प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य में विरोधाभास है । विचारण न्यायालय ने इस मुद्दे पर विचार किया है और अपने निर्णय के पैरा 22 में निम्न मत व्यक्त किया है :–

> ".....यह कि अभियुक्त जोगा सिंह और अभियुक्त मुख्तियार सिंह ने आहतों पर तलवारों से हमला किया था जबकि अभियुक्त निशाबर सिंह ने ज्ञान सिंह और निशान सिंह की मृत्यु कारित करने के लिए गड़ासे का प्रयोग किया और अभियोजन साक्षी अजायब सिंह पर प्राणघातक हमला किया । विचारण न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया है कि अभियुक्त गुरदीप सिंह द्वारा करोटि में कारित की गई क्षति की संपुष्टि अभिलेख पर प्रस्तुत चिकित्सीय साक्ष्य से नहीं होती है क्योंकि ऐसे बलपूर्वक वार से पहुंचाई गई क्षति के परिणामस्वरूप निशान अवश्य ही दिखाई देगा किंतु चिकित्सक द्वारा ऐसा कोई भी निशान नहीं देखा गया है ।"

विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि ऐसा प्रतीत होता है कि अभियुक्त पूरन सिंह को भी उसके पिता भजन सिंह **उर्फ** हरभजन सिंह के साथ इस मामले में आलिप्त किया गया है क्योंकि वह मुख्य अभियुक्त जोगा सिंह का भाई है । इस प्रकार, अभियुक्त पूरन सिंह का इस घटना में आलिप्त होना भी संदिग्ध है ।

18. दो प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों अर्थात् त्रिलोक सिंह (अभि. सा. 9) और अजायब सिंह (अभि. सा. 10) के साक्ष्य के आधार पर विचार किया जाना चाहिए । उनके कथनों के बीच कोई भी विरोधाभास नहीं है बल्कि एक दूसरे से उनकी संपुष्टि भी होती है । अजायब सिंह (अभि. सा. 10) के साक्ष्य से त्रिलोक सिंह (अभि. सा. 9) के वृत्तांत की संपुष्टि होती है । इस साक्षी ने यह भी अभिसाक्ष्य दिया है कि गुरदीप सिंह 'मोगरा' से लैस था । जोगा सिंह और मुख्तियार सिंह तलवारों से लैस थे । पूरन सिंह और निशाबर सिंह 'गड़ासे' से लैस थे । भजन सिंह **उर्फ** हरभजन सिंह के पास 'नेजा' था । गुरदीप सिंह ने ज्ञान सिंह के सिर पर मोगरा से क्षति पहुंचाई थी जबकि मुख्तियार सिंह ने ज्ञान सिंह की पीठ पर तलवार से वार किया । वह नीचे गिर गया । इसके पश्चात् जोगा सिंह ने निशान सिंह के वक्ष पर तलवार से

वार किया । भजन सिंह **उर्फ** हरभजन सिंह ने उसके वक्ष पर नेजा से वार किया । पूरन सिंह ने उसकी दाईं भौंह पर गड़ासे से वार किया । निशाबर सिंह ने उसकी पीठ पर गड़ासे से वार किया जिसके परिणामस्वरूप निशान सिंह जमीन पर गिर गया । अजायब सिंह (अभि. सा. 10) ने यह भी साक्ष्य दिया है कि जब उसने ज्ञान सिंह और निशान सिंह को बचाने का प्रयास किया था तब जोगा सिंह ने उसके पेट में तलवार से क्षति कारित की । मुख्तियार सिंह ने उसकी गर्दन के पीछे तलवार से क्षति कारित की । निशाबर सिंह ने उसके बाएं कंधे पर गड़ासे से क्षति पहुंचाई ।

19. त्रिलोक सिंह (अभि. सा. 9) और अजायब सिंह (अभि. सा. 10) के अभिसाक्ष्यों से पूर्ण रूप से चिकित्सा रिपोर्टों की संपुष्टि होती है । उच्च न्यायालय ने इस मुद्दे का उचित मूल्यांकन निम्न प्रकार किया है :–

> "इस प्रकार उनके परिसाक्ष्यों के अनुसार ज्ञान सिंह (मृतक) को दो क्षतियां, निशान सिंह (मृतक) को चार क्षतियां और अजायब सिंह (अभि. सा. 10) को तीन क्षतियां कारित की गईं । चिकित्सीय साक्ष्य में भी, चिकित्सा विधिक रिपोर्ट की प्रति प्रदर्श पी. ए. ए. के अनुसार ज्ञान सिंह (मृतक) के शरीर पर दो क्षतियां पाई गई हैं और अजायब सिंह (अभि. सा. 10) के शरीर पर चार क्षतियां पाई गई हैं । त्रिलोक सिंह (अभि. सा. 9) और अजायब सिंह (अभि. सा. 10) द्वारा किए गए कथन के अनुसार क्षतियों की जगह में थोड़ा विरोधाभास है ।"

त्रिलोक सिंह (अभि. सा. 9) और अजायब सिंह (अभि. सा. 10) के परिसाक्ष्य पूर्णतया विश्वसनीय हैं । अजायब सिंह (अभि. सा. 10) उसी घटना में क्षतिग्रस्त होने वाला साक्षी है और उसके परिसाक्ष्य को अनदेखा नहीं किया जा सकता है ।

20. उच्च न्यायालय ने अजायब सिंह (अभि. सा. 10) को कारित हुई क्षतियों पर विचार करते हुए निम्न अभिनिर्धारित किया है :–

> "अजायब सिंह (अभि. सा. 10) की क्षतियों के संबंध में यह कहा जा सकता है कि ये क्षतियां प्राणघातक हैं । इस साक्षी की छोटी आंत और यकृत के छिद्रों को बंद करने के लिए शल्य चिकित्सा की गई । वह पी. जी. आई., एम. एस., रोहतक अस्पताल में तारीख 6 नवंबर, 2002 से 20 नवंबर, 2002 तक भर्ती रहा । डा. परयेश गुप्ता (अभि. सा. 17) और डा. सतीश बंसल (अभि. सा. 19) ने अभियोजन साक्षी अजायब सिंह की क्षतियों की प्रकृति साबित की है । अपीलार्थी और दोषमुक्त किए गए सह-अभियुक्तों का आशय या ज्ञान उसकी

हत्या कारित करने का था । विनिश्चित किए जाने के लिए यह प्रश्न नहीं है कि क्षति की प्रकृति कैसी है अपितु यह है कि आशय और ज्ञान, जो भी हो, था या नहीं । शारीरिक क्षति मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त नहीं भी हो सकती है । अभियुक्त को दंड संहिता की धारा 307 के अधीन दोषसिद्ध किया जा सकता है यदि उसका आशय मृत्यु कारित करने का हो ।

डा. राजेश गांधी (अभि. सा. 11), डा. परयेश गुप्ता (अभि. सा. 17) और डा. सतीश बंसल के परिसाक्ष्यों की संवीक्षा करने पर हमारी यह सुविचारित राय है कि विचारण न्यायालय ने उनकी विशेषज्ञ साक्ष्य का अत्यधिक अवलंब लिया है । विचारण न्यायालय को चिकित्सकों द्वारा व्यक्त की गई अस्वाभाविक राय के आधार पर त्रिलोक सिंह और अजायब सिंह के प्रत्यक्ष साक्ष्य को खारिज नहीं करना चाहिए था । इस आधार पर हमें आक्षेपित निर्णय में हस्तक्षेप करते हुए भजन सिंह **उर्फ** हरभजन सिंह, पूरन सिंह और गुरदीप सिंह की दोषमुक्ति को अपास्त करना होगा । ये अभियुक्त-अपीलार्थी निशाबर सिंह, मुख्तियार सिंह और जोगा सिंह के साथ प्रतिनिधिक रूप से दायी हैं जो संहिता की धारा 149 के अधीन अनुध्यात प्रतिनिधिक दायित्व के सिद्धांत पर आधारित है । अपीलार्थी निशाबर सिंह, मुख्तियार सिंह और जोगा सिंह की दोषसिद्धि प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य और चिकित्सा साक्ष्य पर पूर्णतया आधारित हैं और इस संबंध में हमें आक्षेपित निर्णय में कोई भी कमी दिखाई नहीं देती है ।"

21. अंकित साक्षी के साक्ष्य को सम्यक् रूप से महत्व देना चाहिए क्योंकि घटनास्थल पर उसकी मौजूदगी पर संदेह नहीं किया जा सकता है । आम तौर पर उसके कथन को बहुत विश्वसनीय माना जाता है और यह असंभावी होगा कि वह वास्तविक हमलावर को बचाए और किसी अन्य व्यक्ति को मिथ्या आलिप्त करे । आहत साक्षी के परिसाक्ष्य की अपनी सुसंगतता होती है क्योंकि उसे घटना के समय घटनास्थल पर ही क्षतियां कारित होती हैं और इस बात से उसके परिसाक्ष्य को बल मिलता है कि वह घटनास्थल पर मौजूद था । इस प्रकार, आहत साक्षी के परिसाक्ष्य को विधि में विशेष हैसियत दी गई है । घटनास्थल पर मौजूद होने के आधार पर ऐसा साक्षी आधारभूत रूप से विश्वसनीय माना जाता है और उसके लिए यह असंभावी होगा कि वह अन्य किसी व्यक्ति को मिथ्या फंसाने के लिए वास्तविक अपराधी को बचाए । यदि किसी आहत साक्षी के साक्ष्य को त्यक्त करना हो तब ऐसा करने के लिए तर्कसम्मत साक्ष्य आवश्यक होगा ।

इस प्रकार, आहत साक्षी के साक्ष्य पर तब तक विश्वास किया जाना चाहिए जब तक कि उसके साक्ष्य को विरोधाभासों और फर्कों के आधार पर खारिज न किया जाए । (**अब्दुल सईद** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1], **कैलाश और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[2], **दुर्बल** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[3] ; और **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **नरेश और अन्य**[4] वाले मामले देखिए ।)

22. **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **हरि चंद**[5] वाले मामले में इस न्यायालय ने विधि की ऊपर उल्लिखित स्थिति को दोहराया है :–

> "किसी भी स्थिति में, जब तक कि मौखिक साक्ष्य की संपुष्टि चिकित्सीय साक्ष्य से पूर्णतया न हो जाए तब तक मौखिक साक्ष्य को प्राथमिक माना जाएगा ।"

23. इस प्रकार चिकित्सीय और प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य के बीच विरोधाभास के ऐसे मामले में विधि की स्थिति इस प्रभाव से स्पष्ट की जा सकती है कि यद्यपि किसी साक्षी का प्रत्यक्षदर्शी परिसाक्ष्य चिकित्सीय साक्ष्य की तुलना में अधिक साक्ष्यिक महत्व रखता है, जब चिकित्सीय साक्ष्य प्रत्यक्ष परिसाक्ष्य को असंभावी बनाता है तब वह साक्ष्य का मूल्यांकन करने की प्रक्रिया में सुसंगत संघटक बन जाता है । तथापि, जहां चिकित्सीय साक्ष्य ऐसा हो कि उससे प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य के सत्य होने की संभावना पूर्णतया समाप्त हो जाए तब प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य को अविश्वसनीय माना जा सकता है । **अब्दुल सईद** (उपरोक्त) वाला मामला देखिए ।

24. वर्तमान मामले जैसे मामले में, जहां दो व्यक्तियों की घटनास्थल पर मृत्यु हुई हो और अन्य व्यक्तियों को गंभीर क्षतियां पहुंची हों, वहां प्रत्यक्षदर्शी साक्षी स्वयं को बचाने का प्रयास करते हैं और जिन व्यक्तियों पर हमला किया जा रहा है उन्हें भी बचाने का प्रयास करते हैं । ऐसी तथ्यात्मक स्थिति में साक्षी से यह प्रत्याशा नहीं की जाती है कि वह घटना का सटीक वर्णन एक विशेषज्ञ के रूप में करे । थोड़े बहुत विरोधाभास, सुधार, फर्क उसके कथन में आ ही सकते हैं ।

इस प्रकार, उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए, हमें यह अभिनिर्धारित

---

[1] (2010) 10 एस. सी. सी. 259,
[2] (2011) 1 एस. सी. सी. 793.
[3] (2011) 2 एस. सी. सी. 776.
[4] (2011) 4 एस. सी. सी. 324.
[5] (2009) 13 एस. सी. सी. 542.

करने में कोई संकोच नहीं है कि इस संबंध में अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलील निरर्थक है ।

25. यह भी दलील दी गई है कि घटनास्थल पर बहुत से व्यक्ति इकट्ठा हो गए थे किंतु पता नहीं किस कारण से अभियोजन पक्ष द्वारा किसी भी स्वतंत्र साक्षी की परीक्षा नहीं की गई है । ऐसे मामले में जहां अकारण ही दो व्यक्तियों की हत्या कर दी गई हो और एक व्यक्ति को गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त कर दिया गया हो, वहां कोई भी पड़ोसी हस्तक्षेप नहीं करेगा और न ही हमलावरों के विरुद्ध अभिसाक्ष्य देगा चाहे उसने वह घटना स्वयं देखी हो । इसके अतिरिक्त, प्रतिरक्षा पक्ष ने अन्वेषक अधिकारी उपनिरीक्षक प्रकाश चंद (अभि. सा. 18) से यह मालूम नहीं किया है कि उसने स्वतंत्र साक्षियों की परीक्षा न किए जाने के लिए स्पष्टीकरण क्यों नहीं दिया है । इस बात को दृष्टिगत करते हुए, हमारी यह सुविचारित राय है कि अपीलार्थी संदेह का लाभ पाने के हकदार नहीं हैं ।

26. नातेदार साक्षी के साक्ष्य का अवलंब लिया जा सकता है परंतु यह तब जबकि वह विश्वसनीय हो । दिए गए मामले में अभियुक्त की दोषसिद्धि के निष्कर्ष पर पहुंचने के पूर्व ऐसे साक्ष्य की सावधानीपूर्वक संवीक्षा और मूल्यांकन किया जाना चाहिए । [**एम. सी. अली और एक अन्य** बनाम **केरल राज्य**[1] ; और **हिमांशु** उर्फ **चिंटू** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली**[2]) वाले मामले देखिए ।]

27. यह भी दलील दी गई है कि जहां तक तीन अपीलार्थियों का संबंध है उच्च न्यायालय ने उनकी दोषमुक्ति के निर्णय को उलटने में कोई भी न्यायोचित नहीं किया है ।

28. इस न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए दोषमुक्ति के निर्णय और आदेश में उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किए जाने के संबंध में कई बार मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित किए हैं । अपील न्यायालय को ऐसे मामले में दोषमुक्ति के निर्णय को आम तौर पर अपास्त नहीं करना चाहिए जिसमें दो मत संभव हों भले ही अपील न्यायालय द्वारा दिया गया मत अधिक संभावी हो । दोषमुक्ति के निर्णय पर विचार करते समय, अपील न्यायालय को अभिलेख पर प्रस्तुत संपूर्ण साक्ष्य पर विचार करना चाहिए ताकि यह निष्कर्ष निकाला जा सके कि क्या विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया मत अनुचित है या अन्यथा चलने योग्य

---

[1] ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 1639.

[2] (2011) 2 एस. सी. सी. 36.

नहीं है । दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप किया जाना केवल "आपवादिक परिस्थितियों" में ही "आबद्धकारी कारणों" से ही अनुज्ञात किया जा सकता है । अपील न्यायालय इस पर विचार करने के लिए हकदार है कि क्या तथ्य के निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए विचारण न्यायालय ग्राह्य साक्ष्य पर विचार करने में असफल रहा है और/या अभिलेख पर प्रस्तुत किए गए साक्ष्य पर विधि के प्रतिकूल विचार किया है । इसी प्रकार, यदि सबूत का भार गलत तरीके से डाला गया है तब अपील न्यायालय द्वारा इस विषय की भी संवीक्षा की जा सकती है ।

'सारभूत और आबद्धकारी कारण', 'ठीक और पर्याप्त आधार', 'अत्यधिक ठोस परिस्थितियां', 'विकृत निष्कर्ष', 'स्पष्ट भूल' आदि जैसी अभिव्यक्तियां दोषमुक्ति के विरुद्ध किसी अपील में अपील न्यायालय की विस्तृत शक्ति को कम करने के लिए आशयित नहीं हैं । ऐसे वाक्यांशों में भाषा के दांव-पेचों के जैसी प्रकृति अधिक होती है ताकि दोषमुक्ति के निर्णय में हस्तक्षेप करने के लिए अपील न्यायालय के मन में अनिच्छा का भाव पैदा किया जा सके । इस प्रकार, जब केवल एक ही मत व्यक्त किया जाना संभव हो अर्थात् अभियोजन साक्ष्य से अभियुक्त के दोषी होने का संकेत मिलता हो और निर्णय प्रथमदृष्ट्या ही अनुचित हो तब अपील न्यायालय दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप कर सकता है ।

अपील न्यायालय को अभियुक्त की निर्दोषिता की उपधारणा को ध्यान में रखना चाहिए और यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि विचारण न्यायालय द्वारा की गई दोषमुक्ति से निर्दोषिता की उपधारणा प्रबलित हो जाती है । जहां अन्य मत भी संभव हो वहां सामान्य अनुक्रम में हस्तक्षेप करने से बचना चाहिए जब तक कि हस्तक्षेप करने के लिए ठोस कारण न हो ।

(**सनवत सिंह और अन्य** बनाम **राजस्थान राज्य**[1] ; **सुमन सूद** उर्फ **कमलजीत कौर** बनाम **राजस्थान राज्य**[2] ; **ब्रह्मस्वरूप और एक अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[3] ; **वी. एस. अच्युतानंदन** बनाम **आर. बालाकृष्ण पिल्लई और अन्य**[4] ; **रुकैया बेगम और अन्य** बनाम **कर्नाटक राज्य**[5] वाले मामले देखिए ।)

---

[1] ए. आई. आर. 1961 एस. सी. 715.

[2] (2007) 5 एस. सी. सी. 634.

[3] ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 280.

[4] (2011) 3 एस. सी. सी. 317.

[5] (2011) 4 एस. सी. सी. 779.

29. उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि विचारण न्यायालय का निर्णय अनुचित है क्योंकि उसने यह अभिनिर्धारित किया है कि यह सामान्य उद्देश्य का स्पष्ट मामला है । उच्च न्यायालय ने इस मुद्दे को निम्न प्रकार विनिश्चित किया है :–

> "अपीलार्थी निशाबर सिंह, मुख्तियार सिंह और जोगा सिंह ने सामान्य उद्देश्य रखने में दोषमुक्त किए गए अपने सह-अभियुक्तों अर्थात् भजन सिंह **उर्फ** हरभजन सिंह, पूरन सिंह और गुरदीप सिंह के साथ भाग लिया है । उन्होंने अभियोजन साक्षी त्रिलोक सिंह के मकान के आंगन में यह ललकारा देते हुए प्रवेश किया कि गली में मवेशी बांधने के लिए उन्हें सबक सिखाएंगे । संहिता की धारा 149 के अंतर्गत सभी छह अभियुक्त ज्ञान सिंह और निशान सिंह को क्षति कारित करने के लिए जिम्मेदार हैं जिस कारण उनकी मृत्यु हुई है और अभियोजन साक्षी अजायब सिंह को घातक क्षतियां पहुंची हैं । विचारण न्यायालय ने भजन सिंह **उर्फ** हरभजन सिंह, पूरन सिंह और गुरदीप सिंह को परिकल्पित चिकित्सीय साक्ष्य के आधार पर अभियोजन साक्षी त्रिलोक सिंह और अजायब सिंह के विश्वसनीय प्रत्यक्ष साक्ष्य को अनदेखा करते हुए दोषमुक्त करके न्यायोचित नहीं किया है ।"

उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए, हमारा यह निष्कर्ष है कि अपीलार्थियों की ओर से दी गई दलीलों को स्वीकार करने का कोई भी कारण नहीं है ।

30. यह विधि की सुस्थापित प्रतिपादना है कि किसी साक्षी के साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय छोटे-मोटे मामलों को लेकर ऐसे थोड़े बहुत फर्कों से न्यायालय किसी साक्ष्य को पूर्णतया खारिज नहीं कर सकता है जिनसे अभियोजन पक्षकथन का मूल आधार प्रभावित न होता हो । ऐसे असंगत ब्यौरों को लोप या विरोधाभास नहीं कहा जा सकता है जिनसे किसी साक्ष्य की विश्वसनीयता संदिग्ध न होती हो । छोटे-मोटे ब्यौरों में आए फर्क से अभियोजन पक्षकथन का मूल आधार अन्यथा प्रभावित नहीं होता है, तब ऐसी स्थिति में न्यायालय छोटे-मोटे फर्कों और विभिन्नताओं के आधार पर साक्ष्य को खारिज नहीं करेगा । सतर्कता और सावधानी परखने के पश्चात् और असत्य, अतिश्योक्ति और सुधारों से सत्य को अलग करने के लिए साक्ष्य की संवीक्षा करने पर न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि अंतिम साक्ष्य अभियुक्त को दोषसिद्ध करने के लिए पर्याप्त है या नहीं । इस प्रकार, ऐसे लोपों, विरोधाभासों और फर्कों को असम्यक् महत्व नहीं दिया जाना चाहिए जिनका संबंध मामले के मूल आधार से नहीं

होता है और जो अभियोजन साक्ष्य के मूल वृत्तांत को विचलित न कर सके । चूंकि मनुष्य की मानसिक सक्षमता से यह प्रत्याशा नहीं की जा सकती है कि वह सभी ब्यौरों, छोटे-मोटे फर्कों को स्पष्ट कर सके और ऐसे फर्क साक्ष्य के कथन में आएंगे ही आएंगे । [**विजय** उर्फ **चीनी** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] और **ब्रह्मस्वरूप** (उपरोक्त) वाले मामले देखिए]

31. वर्तमान मामले में हमें साक्षियों के साक्ष्य में न तो कोई महत्वपूर्ण विरोधाभास दिखाई देता है और न ही चिकित्सीय साक्ष्य या प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य में ऐसा कोई विवाद दिखाई देता है जिसका लाभ अपीलार्थियों के पक्ष में जाए । साक्ष्य में ऐसे छोटे-मोटे सुधार या परिवर्तन आदि आए हैं जो महत्वपूर्ण नहीं हैं और उन्हें अनदेखा किया जाना चाहिए ।

32. अपीलार्थी जोगा सिंह द्वारा आत्म प्रतिरक्षा का यह आधार कि उसने शिकायतकर्ता पक्ष को अपनी जान बचाने के लिए क्षतियां पहुंचाई थीं, अत्यंत असंभावी और स्वीकार न किए जाने योग्य है । उच्च न्यायालय ने इस साक्ष्य को खारिज करके ठीक ही किया है और यह मत व्यक्त किया है कि अपीलार्थी जोगा सिंह यह भी नहीं समझता था कि शिकायतकर्ता पक्ष उसके विरुद्ध जाल बिछाए हुए था जब उसे आरंभ में अपने घर से बुलाया गया था ।

33. उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए, हमें किसी भी अपील में कोई बल दिखाई नहीं देता है । ये अपीलें खारिज की जाती हैं । तारीख 15 दिसंबर, 2006 के उच्च न्यायालय के निर्णय की पूर्णतया पुष्टि की जाती है । 2007 की दांडिक अपील संख्या 562 में के अपीलार्थी अर्थात् भजन सिंह, पूरन सिंह और गुरदीप सिंह को इस न्यायालय द्वारा तारीख 2 अगस्त, 2008 और 22 जुलाई, 2009 के आदेशों के अनुसार जमानत पर छोड़ा गया है । उनके जमानत बंधपत्र रद्द किए जाते हैं, उन्हें यह निदेश दिया जाता है कि वे आज से दो सप्ताह की अवधि के भीतर न्यायालय में अभ्यर्पण करेंगे और ऐसा न किए जाने पर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, जीन्द (हरियाणा) उन्हें अपनी अभिरक्षा में लेंगे और उन्हें अपने दंड का शेष भाग भोगने के लिए जेल भेजेंगे । इस निर्णय और आदेश की एक प्रति विद्वान् मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, जीन्द (हरियाणा) को सूचना और अनुपालन के लिए भेजी जाए ।

अपीलें खारिज की गईं ।

अस./अनू.

---

[1] (2010) 8 एस. सी. सी. 19.

[2012] 2 उम. नि. प. 108

राम जेठमलानी और अन्य

बनाम

भारत संघ

4 जुलाई, 2011

न्यायमूर्ति बी. सुदर्शन रेड्डी और न्यायमूर्ति सुरिन्दर सिंह निज्जर

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 32(2) – विशेष अन्वेषण टीम का गठन – कई अधिकारिताओं तथा कई विभागों और अभिकरणों के बीच विशेषज्ञता और जानकारी तथा सरकार के कई अंगों के बीच समन्वय बनाने की असफलता उचित अन्वेषण की एक गंभीर अड़चन है इसलिए विधि के नियम और संवैधानिक मूल्यों की अभिप्राप्ति के लिए विदेशी बैंकों में पड़े बेहिसाब धन का पता लगाने, विधिविरुद्ध क्रियाकलापों से जुड़े लोगों को दंडित करने और देश के धन को वापस लाने के लिए विशेष अन्वेषण टीम का गठन किया जाना न्यायसंगत और उचित है ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 32(2) और अनुच्छेद 21 [सपठित वियना कन्वेंशन आफ दि ला आफ ट्रीटीज, 1969 – अनुच्छेद 31] – दस्तावेजों का प्रकटन – एकान्तता का अधिकार – अभियुक्त के विरुद्ध सदोष कार्य करने का प्रथमदृष्ट्या आधार स्थापित हुए बिना बेहिसाब धन से संबंधित व्यक्तियों के बैंक खातों के ब्यौरों का उद्घाटन व्यक्ति के एकान्तता के मूल अधिकार का अतिक्रमण होगा, अतः अनुच्छेद 32(1) के अधीन कार्यवाहियों के संदर्भ में भी दस्तावेजों का प्रकटन अनुचित होगा ।

यह रिट याचिका वर्ष 2009 में श्री राम जेठमलानी, श्री गोपाल शरमन, श्रीमती जलबाला वैद्य, श्री के. पी. एस. गिल, प्रोफेसर बी. बी. दत्ता और श्री सुभाष कश्यप सभी सुज्ञात व्यक्ति सामाजिक कार्यकर्ता भूतपूर्व नौकरशाह या ऐसे लोग हैं जो समाज में उत्तरदायित्वपूर्ण हैसियत रखते हैं, द्वारा फाइल की गई । उन लोगों ने श्री सिटीजन इंडिया नामक संगठन भी गठित किया जिसका यह उद्देश्य बताया कि सुशासन सभी सार्वजनिक संस्थाओं के कार्यकरण में परिवर्तन और गुणता में बेहतरी लाना कहा गया है । बेहिसाब धन की भारी मात्रा जो ऐसी अधिकारिताओं में स्थित बैंकों में पड़ी है और जो खाताधारकों के उन खातों को संरक्षित करने वाले ठोस एकांत निधियों की संवीक्षा से बचने के कारण फल-फूल रहे हैं, चिन्ताएं पैदा करती हैं । सर्वप्रथम विदेशों में पड़ा ऐसा भारी धन और

व्यक्तियों और देश के अस्तित्व द्वारा बेहिसाब ऐसा भारी धन ऐसी आशंका करने की आवश्यकता को इंगित करता है कि वे ऐसे क्रियाकलापों द्वारा सृजित किए गए हैं जिन्हें विधिविरुद्ध समझा जाता है । इसके अतिरिक्त बेहिसाब धन की ऐसी भारी रकम ऐसा नैसर्गिक संदेह भी पैदा करता है कि उन्हें करों के संदाय को प्रवंचित करने के लिए देश के बाहर अंतरित किया गया है और तद्द्वारा राष्ट्र की क्षमता को ऐसे कार्यों को निभाने से हीन करता है जो लोकहित में है ।

मीडिया में रिपोर्टों और पांडित्यपूर्ण प्रकाशनों में भी ऐसी घुमावदार रिपोर्टें हैं कि विभिन्न व्यक्ति अधिकांशतः नागरिक किंतु जिनमें गैर नागरिक भी सम्मिलित हो सकते हैं और भारत में उपस्थित अन्य अस्तित्वों ने भारत या भारत से संबंधित क्रियाकलापों के माध्यम से भारी मात्रा में धन पैदा किया और विभिन्न विदेशी बैंकों में विशेषकर कर आश्रयों और ऐसी अधिकारिताओं, जहां बैंक खातों की अन्तर्वस्तुओं की बाबत और ऐसे खातों को धारण करने वाले व्यक्तियों की पहचान छिपाने की बाबत कठोर गोपनीय विधियां हैं, में छिपाए । याची का यह अभिकथन है कि ऐसा अधिकांश धन बेहिसाब है और इस बात की पूरी संभावना है कि यह विधिविरुद्ध क्रियाकलापों के माध्यम से चाहे भारत में या भारत के बाहर किंतु भारत से जोड़कर सृजित किए गए हैं । इसके अतिरिक्त यह अभिकथन है कि ऐसे धनों का वृहत्त भाग भारत के भीतर सृजित किया गया है और विभिन्न विधियों को तोड़कर जिसकी अर्थव्यवस्था केवल करों की प्रवंचना तक ही सीमित नहीं है, भारत से बाहर ले जाया गया है । भारत संघ द्वारा बैंक खातों से संबंधित बेहिसाब धन और दस्तावेजों के प्रकटन की मांग करते हुए याचियों ने उच्चतम न्यायालय के समक्ष रिट याचिका प्रस्तुत की । उच्चतम न्यायालय द्वारा समुचित आदेश देते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत यह विषय कतिपय नामित व्यक्तियों और उनके अभिकथित रूप से बिखरे संगमों द्वारा धारित बेहिसाब धन की भारी रकम के मुद्दे से संबंधित है, परिणामतः न्यायालय संवैधानिक परिप्रेक्ष्य से अपनी गंभीर चिंता व्यक्त करता है जैसाकि स्वयं भारत सरकार द्वारा अधिकथित है । बेहिसाब धन की मात्रा अति विशाल है । कारण बताओ नोटिसें काफी समय पहले जारी की गई हैं । नामित व्यक्ति भी देश में मौजूद थे फिर भी अन्वेषणों में अज्ञात और संभाव्यतः न जाने योग्य यद्यपि आसानी से अनुमेय हैं, के कारण मामलों की कार्यवाही में अवगुण्ठित गति से कार्यवाही आरंभ हुई । यहां तक कि नामित व्यक्तियों से भी किसी

मात्रा की गंभीरता के साथ अभी तक प्रश्नगत नहीं किया गया है, यह गंभीर व्यतिक्रम है विशेषकर जब देश को आंतरिक और बाह्य दोनों दृष्टियों से सुरक्षा के व्यापक मुद्दे के परिप्रेक्ष्य से देखा जाता है । महत्वपूर्ण यह है कि भारत संघ ने जानकारी दस्तावेज और सूचना अभिप्राप्त की थी जो हसन अली खान और उसके अभिकथित सह षड्यंत्रकर्ताओं और ज्ञात अन्तरराष्ट्रीय सशस्त्र व्यवहारियों के बीच संभव संबंध दर्शित करता है । इसके अतिरिक्त भारत संघ के पास यह भी जानकारी थी जिससे यह इंगित होता है कि अन्तरराष्ट्रीय सशस्त्र लेनदेन नेटवर्क और इस कार्य में अति प्रभावशाली व्यवहारी होने के कारण ऐसी अधिकारिता में भी बैंक का खाता नहीं खोल सकता जिसे अपने बैंकों में जमा किए जाने वाले धन का स्रोत न पूछने पर अधिक बल दिए जाने की साधारणतया अभिस्वीकृति की जाती है । संभवतया हसन अली खान ने अन्य अधिकारिता में उसी बैंक की शाखा में खाता खोलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । स्वयं भारत संघ की मांग के अनुसार अभिकथित आयकर की मात्रा देश के पक्ष में जाती है और धन की मात्रा कुछ खातों में 8.04 विलियन यूएस डालर है और कुछ अन्य खातों में 70,000/- करोड़ रुपए से अधिक है जिसके लिए कहा गया है कि हसन अली खान और टपुरिया के विभिन्न बैंक खातों के माध्यम से किए गए हैं । इसके अतिरिक्त सभी खातों से यह पता चला है कि किसी भी नामित व्यक्तियों के पास धन की ऐसी भारी मात्रा का कोई ज्ञात और विधिसम्मत स्रोत नहीं है । व्यक्तिगत या संयुक्त रूप से इन सभी कारकों से विधि और क्रियाकलापों, राष्ट्रीय सुरक्षा और राज्य के विरुद्ध कार्य सहित अन्य अवैध क्रियाकलापों के लिए भारत में निधियों के अंतरण के स्रोत के बारे में तत्काल प्रश्न उद्भूत होना चाहिए । हमारे द्वारा बार-बार ही जोर देने पर ऐसे विषय यदि कर संग्रहण के मुद्दे से अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं फिर भी उसके समान हैं । विलम्बतः भारत संघ ने यह निष्कर्ष निकाला कि ऐसे पहलुओं का भी अन्वेषण गंभीरता से किया जाना चाहिए । तथापि, राष्ट्रीय सुरक्षा पर्यवेक्षक से इन अन्य मामलों में वस्तुतः गंभीर अन्वेषण का कोई साक्ष्य नहीं है । असलियत यह है कि भारत संघ ने हसन अली खान और टपुरिया के क्रियाकलापों में उचित अन्वेषण करने का घोर प्रयास किया । जहां हाल ही के अन्वेषण के माध्यम से भारत संघ को कुछ व्यक्तियों जिनके नामों की प्रतिकूल जानकारी प्राप्त हुई है, से भी पूछताछ की और कई लोगों से अभी पूछताछ की जानी है । यह उचित जटिल अन्वेषण वस्तुतः अभी आरंभ हुआ है । अब भी यह निष्कर्ष निकालना जल्दबाजी होगी कि भारत संघ वस्तुतः उचित अन्वेषण संचालित करने के लिए

सभी आवश्यक मशीनरी लगा दी है । उच्चस्तरीय समिति का गठन एक आवश्यक कदम था और यहां तक इसे स्वागत योग्य कदम कहा जा सकता है । फिर भी यह अपर्याप्त कदम है । न्यायालय की यह दृढ़ राय है कि इन मामलों में देश और विदेश दोनों में कई अधिकारिताओं तथा कई विभागों और अभिकरणों में विशेषज्ञता और जानकारी तथा सरकार का प्रभाजन उचित अन्वेषण संचालित करने में एक गंभीर अड़चन है । हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि वस्तुतः एक ऐसे निकाय का सृजित किया जाना आवश्यक है जो समन्वय करे, निदेश दे और जहां आवश्यक हो राज्य के विभिन्न संस्थानों द्वारा समयबद्ध और अतिशीघ्र कार्यवाही का आवश्यक निदेश दे । हम यह भी अभिनिर्धारित करते हैं कि व्यापक निरीक्षण क्षमता में इन मामलों में इस न्यायालय का लगातार संबद्ध रहना विधि के नियम को कायम रखने और संवैधानिक मूल्यों की अभिप्राप्ति के लिए आवश्यक है । तथापि, इस न्यायालय द्वारा दैनन्दिन अन्वेषण से जुड़ा रहना या अन्वेषण के सभी पहलुओं पर सतत् मानीटर करना संभव नहीं होगा । मुद्दा मात्र यह नहीं है कि क्या भारत संघ अभिकथित धनों के सभी या कुछ महत्वपूर्ण भाग को वापस लाने का आवश्यक प्रयास कर रही है । तथ्य यह है कि ऐसी कुछ सूचना है कि ऐसी भारी रकम विदेशी बैंकों में पड़ी हो सकती है, यह निहित करता है कि राज्य की संविधान के अधीन ऐसे धनों के संसाधनों का पता लगाने, ऐसे दोषी को दंडित करने जहां ऐसे धनों को सृजित किया गया है और/या विधिविरुद्ध क्रियाकलापों के माध्यम से विदेश ले जाया गया है, का हर संभव प्रयास करने और देश के धन को वापस लाने का प्रयास करने का संविधान के अधीन मूल दायित्व है । सफलता की मात्रा को यदि हम धन की मात्रा वापस लाने के रूप में देखें तो यह उन पहलुओं सहित कई अन्य कारकों पर निर्भर है जो अन्तरराष्ट्रीय राजनीतिज्ञ अन्तरराष्ट्रीय संबंधों से संबंधित है हो सकता है जो हमारे नियंत्रण में हैं या नहीं । असलियत यह है कि उन कारकों की बाबत जो भारत संघ की शक्ति के भीतर हैं जैसे संभावित आपराधिक संबंध का अन्वेषण, राष्ट्रीय सुरक्षा के खतरे आदि की बाबत भी प्रयास नहीं किए गए हैं । संविधान की निष्ठा मात्र तात्विक सफलता का विषय नहीं है । किंतु राज्य के नैतिक प्राधिकार के परिप्रेक्ष्य से संभवतः और महत्वपूर्ण ऐसे सभी आयामों पर प्रयास की ईमानदारी का विषय जो ऐसी समस्या की सूचना देता है जो संवैधानिक परियोजनाओं को धमकी देता है । इसके अतिरिक्त ऐसी गंभीरता की मात्रा जिसके साथ उन विभिन्न आयामों की बाबत प्रयास किए जा रहे हैं, क्षमता निर्माण के निबंधनानुसार परिणाम

निकलने की भी प्रत्याशा की जा सकती है और भविष्य में गंभीर रूप से धन का लेखा रखने या अनुपालन करने के विधि प्रवर्तन भाग के आवश्यक बरताव पर विकास करने की भी प्रत्याशा की जा सकती है । विधि प्रवर्तन के अन्वेषणों और प्रयासों की प्रबलता के गुणदोष का मार्ग केवल इस मापमान से नहीं किया जा सकता है जो न्यायालय इस बाबत प्रत्याशा करता है जैसा भूतकाल में हुआ है । ऐसे फायदों का मूल्यांकन किया जाना भी आवश्यक होगा जिसके भविष्य में ऐसे क्रियाकलापों को रोकने से देश में प्रोद्भूत होने की संभावना है । लोग गरीब हो सकते हैं और सभी तरह के प्रवंचन से ग्रस्त हो सकते हैं । तथापि, वह गरीब और ग्रस्त आम जनता नैतिक और मानवीय दृष्टिकोण से अमीर है । ऐसे लोग जिनके पास शक्ति है कई दुर्बलताओं और सफलताओं की अपनी सहिष्णुता से गरीब और सशक्त से कम ख्याति वाले नहीं हैं जो स्वतः उनकी मानवता न्यास और सहिष्णुता के भारी गुणों का परिचायक है । उस महानता का मेल हमारी संवैधानिक परियोजना के उनके गरिमामय जीवन प्रदान करने के व्यापक लक्ष्य के प्रत्येक शक्ति और प्रत्येक संसाधन के प्रयोग द्वारा ही किया जा सकता है । ऐसे प्रयास जो यह न्यायालय इस बाबत करती है और इस बाबत करेगी तथा उन मामलों को यद्यपि आवश्यक नहीं है फिर भी छोटे और लघु भाग के रूप में समझा जा सकता है । अंततः संविधान का संरक्षण और इसकी दूरदृष्टि और मूल्यों का संवर्धन करना न्यायालय लोगों की सेवा का एक तात्विक तरीका है । (पैरा 20, 41, 42, 44, 46 और 47)

संविधान के मूलभूत ढांचे का संशोधन विधायिका की संशोधन करने वाली शक्ति द्वारा भी नहीं किया जा सकता । संविधान के अनुच्छेद 32 के खंड (1) के अनुसरण में इस आधार पर इस न्यायालय के समक्ष अर्जी देने के अधिकार की गारंटी देता है कि संविधान के भाग III के अधीन गारंटीकृत अधिकारों का अतिक्रमण हुआ है । यह उपबंध संविधान के आधारभूत ढांचे का भाग है । अनुच्छेद 32 का खंड (2) इस न्यायालय को भाग III द्वारा प्रदत्त किन्हीं आधारों के प्रवर्तन के लिए निदेश या आदेश या रिट जिसके अन्तर्गत बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, अधिकार पृच्छा और उत्प्रेषण रिट हैं जो भी समुचित हो निकालने की शक्ति होगी । यह संविधान के आधारभूत ढांचे का एक भाग भी है । इसलिए कि अनुच्छेद 32 के खंड (1) द्वारा गारंटीकृत अधिकार सार्थक होगा और विशेषकर क्योंकि ऐसी याचिकाएं मूल अधिकारों के संरक्षण की मांग करती हैं यह आवश्यक है कि ऐसी कार्यवाहियों में याचियों को मामले की उचित सुस्पष्टता के

लिए उनके लिए आवश्यक जानकारी से वंचित नहीं किया जाता है और उसकी सुनवाई की जाए विशेषकर जहां ऐसी जानकारी राज्य के कब्जे में है । किसी संवैधानिक सिद्धांत या संवैधानिक प्रतिषेध के उपवर्णित आधारों का उल्लेख किए बिना ऐसी जानकारी की पहुंच से इनकार करना अनुच्छेद 32 के खंड (1) द्वारा प्रदत्त अधिकार को विफल कर देगा । इसके अतिरिक्त चूंकि कामन ला इतिहास और परंपरा द्वारा न्यायिक कार्यवाहियां यद्यपि सारभूत रूप से पूरी तरह प्रतिकूल नहीं होती, किन्तु दोनों पक्षकारों का यथासंभव पूरी तरह से न्यायालय के समक्ष सभी सुसंगत जानकारी, विश्लेषण और तथ्य रखने का उत्तरदायित्व होता है । अधिकांश स्थितियों में राज्य के पास अधिक व्यापक जानकारी होती है । जो वर्तमान मामले जैसे ऐसी कार्यवाहियों में सुसंगत होती हैं । राज्य के कुछ अभिकर्ता यह समझते हैं कि ये कार्यवाहियां विरोधी प्रकृति की हैं अतः सभी आवश्यक जानकारी प्रस्तुत करने का कर्तव्य और भार याचियों पर है अतः राज्य ऐसी जानकारी पूरी तरह से देने के बाध्यताधीन नहीं है । राज्य के कुछ अभिकर्ता कार्यवाहियों के तत्काल संदर्भ में सरकार की अनुकूल घटनाओं और तथ्यों को गढ़ने की भी ईप्सा कर सकते हैं । यद्यपि ऐसी कार्यवाही मूल अधिकारों के संरक्षण के कार्य में पूरा न्याय देने में उद्यत नहीं होगी । उस हद तक याची और यह न्यायालय दोनों अनुच्छेद 32 के खंड (1) के अधीन कार्यवाहियों में बाधित हो जाएगा । मामले के लिए यह उल्लेख करना आवश्यक है कि न्यायिक कार्यवाहियों के दावे में सुसंगत साक्ष्य द्वारा प्राख्यान करने और साबित करने का भार साधारणतः ऐसा दावा करने के प्रस्ताव पर होता है ; तथापि, मूल अधिकारों के संरक्षण का भार प्राथमिकतः राज्य का कर्तव्य है । परिणामतः जब तक संवैधानिक आधार विद्यमान न हो राज्य ऐसी रीति में कार्य नहीं कर सकता जो इस न्यायालय को ऐसी कार्यवाहियों में सम्पूर्ण न्याय देने में अड़चन डालते हों । याचियों से जानकारी विधारित करना या कार्यवाहियों के संदर्भ में राज्य के अनुकूल सुसंगत घटनाओं और तथ्यों को बनाने की मांग करना यद्यपि अंततः मूल अधिकारों के संरक्षण करने के आवश्यक कार्य के लिए घातक है फिर भी अनुच्छेद 32 के खंड (1) में गारंटी के लिए विध्वंसक होगा और सारतः अनुच्छेद 32 के खंड (2) में अन्तर्विष्ट इस न्यायालय की शक्तियों का प्रयोग करने की क्षमता को दुर्बल कर देता है जो भाग 3 में अनुष्ठापित मूल अधिकारों को कायम रखने तथा संविधान के उपबंधों और संविधानवाद के व्यापक न्यायशास्त्र के लिए अनुमार्गणीय है । मूल अधिकारों को कायम रखने के कार्य में राज्य विरोधी नहीं हो सकता । साधारणतः राज्य

न्यायालय को अपने कब्जे के सभी तथ्यों और जानकारी को प्रकट करने तथा यह याचियों को प्रदान करने के कर्तव्याधीन है । ऐसा इसलिए है क्योंकि याची ऐसे तथ्यों और विधि को प्रकाश में लाने में समर्थ होगा जो न्यायालय के अपने विनिश्चय के लिए सुसंगत हो सकते हैं । अनुच्छेद 32 के अधीन इन ऐसी कार्यवाहियों में याची और राज्य दोनों आवश्यकतः न्यायालय के आंख और कान होते हैं । याची को अंधा बना देना सारतः अनुच्छेद 32 की कार्यवाहियों में न्यायिक विनिश्चय करने की प्रक्रिया की निष्ठा की गरिमा से विशेषकर जहां मुद्दा मूल अधिकारों को कायम करने का है, अपकर्षित करेगा । इसके अतिरिक्त न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि अनुच्छेद 32 के खंड (1) और अनुच्छेद 19 के खंड (क) के उपखंड (I) के बीच विशेष संबंध है जो नागरिकों को वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान करता है । ऐसी स्वतंत्रता का मूल आधार और नियामक वांछनीयता सम्पूर्ण मानवता के ऐतिहासिक अनुभवों पर निर्भर करता है ; जब तक जवाबदेह न हो राज्य निरंकुश हो जाएगा । अनुच्छेद 32 के खंड (1) के अधीन कार्यवाहियों और अनुच्छेद 32 के खंड (2) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का आह्वान जवाबदेही को सुनिश्चित करने का प्रारंभिक संवैधानिक लक्षण है । किसी संवैधानिक लोकतंत्र को बाधा और अस्तित्व सारतः ऐसी कार्यवाहियों पर निर्भर करता है । राज्य द्वारा याचियों से जानकारी विधारित करना और उसके द्वारा इस न्यायालय के समक्ष वाक् और अभिव्यक्ति की उनकी स्वतंत्रता को अवरुद्ध कर जो अनुच्छेद 32 के खंड (2) में वर्णित और अपवादों पर आधारित है जैसे भारत की प्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों, लोक व्यवस्था, शिष्टाचार या सदाचार के हितों में अथवा न्यायालय अवमान, मानहानि या अपराध उद्दीपन के संबंध में या ऐसी विधि द्वारा जो ऐसे अपवादों को रेखांकन करते हैं बशर्ते कि ऐसी विधि अनुच्छेद 32 के खंड (2) में उपवर्णित आधारों या संविधान में कई अन्यत्र उपबंधित हों, के अनुकूल हेगा । अब यह सुज्ञात सुमान्यता प्रतिपादना है कि न्यायालय वैश्विक घटनाओं के नेटवर्क और सामाजिक कार्यों से उलझता जा रहा है । इस प्रक्रिया में पर्याप्त सावधानी का प्रयोग किए जाने की आवश्यकता है विशेषकर जहां सरकारें संविदायी दस्तावेज के कारण संधियां कर रही हैं । सरकारों के कार्य तभी विधिपूर्ण हो सकते हैं जब संवैधानिक अनुज्ञा की चारदीवारी के भीतर किया जाए । कोई संधि ऐसे नहीं की जा सकती या उसका निर्वचन इस प्रकार नहीं किया जा सकता है जो संवैधानिक निष्ठा को कम करती हो । जर्मनी के साथ दोहरे कराधान करार के अनुच्छेद

26(1) के अंतिम वाक्य की बाबत ऐसी बहुलता जिस पर भारत संघ दवाब डाल रहा है । आवश्यकतः न्यायालय संविधान द्वारा बिना सीमाओं को पार करता है । इस प्रकार की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती । न्यायालय जर्मनी के साथ दोहरे कराधान करार की बाबत प्रकटन की अड़चन के रूप में प्रश्नगत दस्तावेजों का परिशीलन किया और भारत संघ के तर्कों को सुना । न्यायालय जर्मनी के साथ दोहरे कराधान करार के उपबंधों से उद्भूत उसके तर्कों में कोई सार नहीं पाता । तथापि, एक मुख्य संवैधानिक मुद्दा और चिंता अभी तक बनी हुई है । यह इस बाबत है कि क्या व्यक्तियों के नाम और उनके बैंक खातों के ब्यौरे जिसकी बाबत कोई सम्पूर्ण अन्वेषण नहीं किया गया है जो सदोषपूर्ण कार्य और आरंभ की गई कार्यवाहियों को प्रकट करता हो तथा याचियों के पास कोई अन्य विश्वसनीय जानकारी और इस समय उपलब्ध साक्ष्य नहीं है कि कोई सदोषपूर्ण कार्य किया गया है जो याचियों को प्रकट किया जाए । एकांतता का अधिकार जीवन के अधिकार का एक अभिन्न भाग है । यह संवैधानिक मूल्य है और महत्वपूर्ण है कि मानवों को ऐसी स्वतंत्रता के परिक्षेत्र की अनुज्ञा दी जाए जो सार्वजनिक संवीक्षा से मुक्त हो बशर्ते वे विधिपूर्ण ढंग से कार्य कर रहे हैं । न्यायालय इस तथ्य को समझता है और प्रशंसा करता है कि बेहिसाब धनों की बाबत स्थिति बहुत गंभीर है । फिर भी संवैधानिक न्याय निर्णायक के रूप में हमें संवैधानिक मूल्यों की पवित्रता का संरक्षण करने और ऐसे अविचारित कदम जो मूल अधिकारों को घटाते हैं चाहे सरकार या प्राइवेट नागरिकों द्वारा किए गए हों और चाहे उनका कितना भी अच्छा अभिप्राय हो, बहुत सावधानीपूर्वक संवीक्षा किए जाने की आवश्यकता पर हमेशा हमें ध्यान देना चाहिए । संवैधानिक मूल्यों के एक क्षेत्र के उत्सादन की समस्या का हल संवैधानिक मूल्यों के उत्सादन के एक अन्य क्षेत्र का सृजन करना नहीं हो सकता । अनुच्छेद 32 के खंड (1) के अधीन मूल अधिकारों के प्रभावी रूप से संरक्षण करने के नागरिकों के अधिकार के अनुच्छेद 21 के अधीन नागरिकों और व्यक्तियों के अधिकारों के विरुद्ध संतुलित करना होगा । बेहिसाब धन जैसी समस्याओं का तत्कालीन समाधान निकालने के लिए आवेशपूर्ण इच्छा पर बाद वाले की बलि नहीं चढ़ाई जा सकती क्योंकि यह खतरनाक परिस्थितियां पैदा करेगा जिसमें चौकस अन्वेषण, परीक्षण और अन्य नागरिकों के समूह द्वारा भीड़ भड़काने की घटना आम बात हो सकती है । मूल अधिकारों को कायम रखने के लिए इस न्यायालय के समक्ष अर्जी देने के नागरिकों को इसलिए मंजूर किया जाता है कि नागरिक अन्य बातों के साथ-साथ संवैधानिक परियोजना के संरक्षण के

लिए राज्य के कार्यकरण के बारे में हमेशा चौकस रहे । उस अधिकार को अन्य नागरिकों के धर्म परीक्षकों तक विस्तारित नहीं किया जा सकता । ऐसा कौतुहलक आदेश जहां नागरिकों के एकांतता के अधिकार का अन्य नागरिकों द्वारा भंग किया जाता है वहां सामाजिक व्यवस्था के लिए विध्वंसकारी है । जीवन के अधिकार के भाग के रूप में एकांतता के अधिकार जैसे मूल अधिकारों की धारणा मात्र इस प्रकार नहीं है कि राज्य को उसे अपकीर्ति करने का व्यादेश देता हो । यह अन्य व्यक्तियों द्वारा मूल अधिकारों के प्रयोग के संदर्भ में भी समाज के अन्य लोगों की कार्यवाहियों के विरुद्ध भी उन्हें कायम रखने का राज्य का उत्तरदायित्व सम्मिलित है । व्यक्तियों के बैंक खातों के ब्यौरों के प्रकटन से उनके दोषपूर्ण कार्य के लिए अभियोजित करने के प्रथमदृष्टया आधारों की स्थापना के बिना उनके एकांतता के अधिकारों का अतिक्रमण हुआ । बैंक खातों के ब्यौरों का उपयोग उन लोगों द्वारा किया जा सकता है जो तंग करना चाहते हैं या व्यक्तियों को अन्यथा नुकसान पहुंचाना चाहते हैं । न्यायालय ऐसी संभाव्यताओं के प्रति अपनी आंख मूंदे नहीं रह सकते और वस्तुत: अनुभव से यह प्रकट होता है कि अनधिकृत व्यक्तियों को बैंककारी ब्यौरों का सार्वजनिक उपचार या उपलब्धता से दुरुपयोग होता है । मात्र यह तथ्य कि किसी नागरिक के पास विशिष्ट अधिकारिता में स्थित किसी बैंक में बैंक खाता है, उसके खाते के ब्यौरों को प्रकट करने का आधार नहीं हो सकता जो राज्य ने अर्जित किया है । निर्दोष नागरिक जिसके अन्तर्गत समाज या राष्ट्र की बेहतरी के लिए सक्रिय रूप से कार्य कर रहे हैं । उन लोगों के षड्यंत्र का शिकार हो सकते हैं जो समाज के सहज कार्यकरण के पहलू को नुकसान पहुंचाना चाहते हैं । क्या स्वयं राज्य नागरिकों के बैंक खातों के ब्यौरों तक पहुंच सकता है, एक पृथक् मामला है । तथापि, राज्य नागरिकों को सार्वजनिक रूप से अपने बैंक खातों के ब्यौरे प्रकट करने के लिए मजबूर नहीं कर सकता या स्वयं प्रकट नहीं कर सकता । राज्य से फायदा प्राप्त करने या अन्वेषण को सुकर बनाने और ऐसे व्यक्तियों को अभियोजित करने के लिए स्वयं राज्य संवैधानिक अनुज्ञेयता की चारदीवारी के भीतर उचित रूप से अन्वेषण न किया हो, व्यक्तियों को सदोष कार्य के लिए अभियोजित करने के प्रथमदृष्ट्या आधारों को स्थापित करने में समर्थ रहा है । राज्य तात्विक साक्ष्य के आधार पर सदोष कार्य को प्रथमदृष्ट्या निष्कर्ष पर पहुंचने में समर्थ होने के पश्चात् ही उसे अन्य लोगों को जानकारी प्रदान करने का अधिकार होगा, यह बात पटल पर आती है । नागरिकों अन्य व्यक्तियों और अस्तित्वों द्वारा

इस बात की विश्वसनीय जानकारी होने की दशा में सदोष कार्य बैंक खातों से जुड़ा हो सकता है, यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि उन्हें राज्य को सूचित करने का अधिकार है और वस्तुतः नैतिक कर्तव्य है और परिणामतः राज्य संवैधानिक अनुज्ञेयता की सीमाओं के भीतर इसका अन्वेषण करने के लिए आबद्धकर है । यदि राज्य ऐसा करने में असफल रहता है तो समुचित न्यायालय हमेशा हस्तक्षेप कर सकते हैं । न्यायालय के समक्ष मामलों में मुख्य समस्या राज्य की निष्क्रियता है । यह इस प्रकार हसन अली खान और टपुरिया के विनिर्दिष्ट दृष्टांतों की बाबत और समानान्तर अर्थव्यवस्था, काले धन का सृजन आदि से संबंधित मुद्दों की बाबत भी है । असफलता संवैधानिक मूल्यों या राज्य को उपलब्ध शक्तियों की ही नहीं है ; असफलता मानव अभिकरण की भी है । प्रतिक्रिया चौकन्नापन का संवर्धन और तद्द्वारा और अन्य संवैधानिक मूल्यों का अतिक्रमण नहीं हो सकता । प्रतिक्रिया राज्य की असफलताओं के कारण अंतर्वस्तु के निस्तेज होने से मूल अधिकारों का संरक्षण करने के लिए अनुच्छेद 32 के खंड (1) के अधीन व्यक्तियों के एकांतता के अधिकार का संरक्षण करने के रूप में और इस न्यायालय में व्यक्तियों के अर्जी देने के अधिकार के संरक्षण दोनों के उन मूल्यों को अधिक प्रभावी बनाने का प्राख्यान निश्चय ही होना चाहिए । संतुलन से केवल एक निष्कर्ष निकलता है ; अन्वेषण के तंत्र को मजबूत बनाने और व्यापक नागरिकों द्वारा यह सुनिश्चित करने की चौकसी की राज्य के अभिकर्ता ऐसे तंत्र को कमजोर न करे । (पैरा 65, 66, 67, 68, 69, 70, 71, 72, 73, 77 और 78)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2011]	(2011) 1 एस. सी. सी. 560 : **सेंटर फार पीआईएल** बनाम **भारत संघ** ;	48
[2005]	(2005) 5 एस. सी. सी. 517 : **संजीव कुमार** बनाम **हरियाणा राज्य** ;	48
[2004]	(2004) 8 एस. सी. सी. 610 : **एनएचआरसी** बनाम **गुजरात राज्य** ;	48
[2004]	(2004) 10 एस. सी. सी. 1 : **भारत संघ** बनाम **आजादी बचाओ आन्दोलन** ;	61
[1996]	(1996) 2 एस. सी. सी. 199 : **विनीत नारायण** बनाम **भारत संघ** ।	38, 48

आरंभिक (सिविल) अधिकारिता : 2009 की रिट याचिका (सिविल) सं. 176 के साथ 2009 का अंतरवर्ती आवेदन सं. 1.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 32 के अधीन रिट याचिका ।

पक्षकारों की ओर से सर्वश्री गोपाल सुब्रह्मणियम, महासालिसिटर, एच. पी. रावल, पी. पी. मल्होत्रा, अपर महासालिसिटर, अनिल दीवान, रजिन्द्र सच्चर, कृष्णन वेणुगोपाल, मुकल रोहतगी, राजीव मोहिती, आई. पी. बगादिया, जे. एस. अत्री, वरिष्ठ अधिवक्ता, (सुश्री) लता कृष्णामूर्ति, आर. एन. कंरजावाला, (सुश्री) मनिक कंरजावाला, संदीप कपूर, रणवीर सिंह, रवि शर्मा, प्रणव दियेस, करन कालिया, अर्जुन महाजन (मैसर्स कंरजावाला कंपनी की ओर से), गौरव जैन, (सुश्री) आभा जैन, (श्रीमती) अनुराधा मुतातकर, (श्रीमती) अनाघ एस. देसाई, श्यामोहन, (सुश्री) मीनाक्षी अरोड़ा, दीवांश मोहता, टी. ए. खान, अरिजीत प्रसाद, कुनाल बहरी, बी. वी. बालाराम दास, बी. कृष्णा प्रसाद, राजीव नंदा, प्रताप वेणुगोपाल, (सुश्री) सुरेखा रमन, दिलीप पूलाक्कीट, (सुश्री) नम्रता सूद, अनुज शर्मा (मैसर्स के. जे. जोहन कंपनी की ओर से), कुलदीप एस. परिहार, एच. एस. परिहार, संजय खरडे, (सुश्री) आशा गोपालन नायर, (सुश्री) साधना संधु, (सुश्री) अनिल कटियार, समीर अली खान, संतोष पॉल, बी. वी. रेड्डी, अरविंद गुप्ता, (सुश्री) आरती सिंह,

(सुश्री) मोहीता बगटी और अशोक कुमार गुप्ता-I, अधिवक्ता

आदेश

वाटरगेट होटल सेंधमारी के अपने अन्वेषण की सहायता के दौरान वांशिगटन पोस्ट के पत्रकार वूडवर्ड को अंग्रेजी सरकार के गुप्त मुखबिर द्वारा संक्षिप्त और सरल सलाह दी गई कि "धन का पता लगाओ" । प्राय: धन को अर्थशास्त्रियों द्वारा ऐसे आवरण के रूप में वर्णन किया जाता है जो वास्तविक मूल्य और अर्थव्यवस्था को अन्तर्निहित करता है । मुद्रा विनिमय के माध्यम के रूप में बाजार स्थल में विनिमय के सफल कार्यकरण के लिए धन का महत्व है । तथापि, अधिकांश सामाजिक संव्यवहारों में धनीकरण की वृद्धि सामाजिक व्यवस्था के लिए संभाव्य समस्या के रूप में देखा जाता है क्योंकि यह बाजार स्थल में अभिप्राप्त कीमत के निबंधनानुसार अधिकांश सामाजिक परस्पर व्यवहार क्षेत्रों के मूल्यों का निर्धारण और नैतिक वांछनीयता की गति का द्योतक है ।

2. कुछ अति नव उदारवादी सिद्धांतों द्वारा यथा प्रतिपादित मूल्य और मूल्यों की कीमत आधारित धारणा यह विवक्षा करती है कि ऐसे मूल्य जिन्हें समाज में विकसित किया जाना है जिनके लिए लोग कीमत अदा करने के इच्छुक हैं । मूल्य और सामाजिक कार्य जिसके लिए बाजार में प्रभावी मांग व्यक्त नहीं की गई है, की उपेक्षा की जाती है । यद्यपि उसकी अनिवार्यतः के अनुसार मात्र दिखावटी सेवा के लिए भुगतान किया जाता है । तथापि, इसका खंडन नहीं किया जा सकता कि बाजार में ऐसी सभी दिखावटी सेवा जिसका संव्यवहार कीमत के लिए किया जा सकता है या किया जा रहा है, अनिवार्यत: सही है और सामाजिक कल्याण को बढ़ावा देता है । फिर भी, कुछ क्रियाकलाप यद्यपि वे कीमती हैं और मूल्य विनिमय के निबंधनानुसार प्रत्यक्षत: परिमेय हैं, को उचित ही अप्रायिक रूप में देखा जाता है । यह राजनैतिक अर्थव्यवस्था और राज्य संरचना की सुस्थापित प्रतिपादना है कि राज्य का ऐसे सभी प्रकार के संव्यवहारों और सामाजिक क्रियाकलापों का अवधारण करने और प्रभावी बनाने में अनिवार्यत: हित है जो विधिक व्यवस्था के भीतर आते हैं । कतिपय प्रकार के ऐसे अपहानिपूर्ण क्रियाकलापों, जो खुल्लम-खुल्ला अपराधों की सीमा से बाहर हो सकते हैं, से लेकर सामाजिक और आर्थिक उत्पादन को सामाजिक दृष्टि से अपहानिकर रीतियों को विनियमित और नियंत्रित करना और परिणामस्वरूप

इसे कम करते जाना तथा ऐसे क्रियाकलापों को प्रोन्नत करना जिनकी पूर्विकता ऐसे अन्य क्रियाकलापों, जिनकी पूर्विकता सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से किसी भी प्रकार से मूल्यांकन करने पर निम्नतर हो सकती है, की बजाय उच्चतर होना समझी जाती है, ये सभी उत्तरदायित्व राज्य के हैं । क्या राज्य के ऐसे क्रियाकलापों का परिणाम प्रत्यक्षत: परिमेय फायदाप्रद है या नहीं, प्राय: उनकी वांछनीयता ; उनके अभाव या उनके सारवान निस्तेजता का अवधारण करने में अधिक महत्वपूर्ण कारक नहीं है, को सामाजिक विध्वंसक के रूप में देखा जाना चाहिए ।

3. आधुनिक संविधानवाद द्वारा प्रतिपादित लोक हित में राज्य द्वारा आर्थिक, सामाजिक या राजनैतिक संदर्भों में क्रियाकलापों की संवीक्षा या नियंत्रण को राज्य द्वारा "धन का पता लगाओ" सारत: कार्यान्वित किया जाता है । आधुनिक समाज में धन के अंतरण के बिना किसी व्यक्ति को थोड़ी भी संतुष्टि नहीं होती । किसी अन्य सामाजिक कार्य की तरह छोटे या बड़े अपराध की घटना थोड़े या भारी धन के अंतरण से जुड़ी होती है । इस अर्थ में धन अपराध की शक्ति और उसका पारितोषिक दोनों हो सकता है । जैसाकि विद्वानों द्वारा उल्लेख किया गया है । बढ़ते वैश्वीकरण के साथ-साथ ऐसे आदर्शवादी और सामाजिक संरचना जिसमें संव्यवहार देश के आर-पार तक होते हैं, में परिमाण पर बहुत थोड़ा या तनिक भी नियंत्रण नहीं रहता है और विभिन्न संव्यवहारों के लिए विनिमय में धन के अंतरण का तरीका तथा वैध और अवैध दोनों के रूप में दिया गया मूल्य तथा राष्ट्र और राज्य भी सभी प्रकार के सीमा पार अपराधों की जटिल समस्याओं का सामना करना आरंभ कर चुके हैं । क्या विधिसंगत और वांछित संव्यवहारों के परिप्रेक्ष्य में तत्काल और सही या गलत अधिकांश रकम के रूप में निधियों के बहाव की यह जटिल प्रक्रिया इस न्यायालय के समक्ष मामलों के संदर्भ में विवाद्यक विषय नहीं है ।

4. इस न्यायालय की वे चिन्ताएं जो हमारे समक्ष प्रस्तुत विषयों के संदर्भ में उद्भूत हुई हैं, ऐसे धनों के अंतरण और धनों के संचयन की बाबत हैं जो विदेशी बैंकों में कई व्यक्तियों और देश की अन्य विधिक सत्ताओं के प्रति बेहिसाब हैं । इस न्यायालय की चिंता न केवल विदेशी बैंकों में गुप्त रूप से छिपाए गए उक्त धन की मात्रा से संबंधित हैं बल्कि ऐसी रीति के बारे में भी हैं जिस माध्यम से वे देश से बाहर ले जाए गए हैं और ऐसे क्रियाकलापों की प्रकृति से भी संबंधित हैं जो ऐसे धनों का संचयन पैदा कर सकता है । इस न्यायालय की चिन्ता उन क्रियाकलापों

की प्रकृति से भी संबंधित है जो ऐसे धनों से आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकरण के रूप में और इस तथ्य के बारे में भी क्या कि ऐसा धन ऐसे समूह और व्यक्तियों को अंतरित किए जा सकते हैं जो उनका उपयोग विधिविरुद्ध क्रियाकलापों में कर सकते हैं जो राज्य के विरुद्ध कार्यवाहियों समेत राष्ट्र के लिए व्यापक खतरा है । इस न्यायालय की चिन्ताएं इस संबंध में भी हैं कि क्या ऐसे बेहिसाब धन को पैदा करने, उन्हें विदेश में अंतरित करने और भारत में उन्हें पुन: वापस लाने के क्रियाकलाप वस्तुत: ऐसी संस्कृति पैदा करते हैं जो ऐसे चक्र के गुण की प्रशंसा करते हैं और ऐसे क्रियाकलाप जो ऐसे चक्र को पैदा करते हैं, के कार्य को व्यक्तियों और कार्य के अभीष्ट ढंग के रूप में देखा जाता है । इस न्यायालय की चिन्ताएं ऐसी रीति और ऐसे विस्तार के संबंध में भी हैं जिससे ऐसे चक्र सीमा पार आपराधिक क्रियाकलाप, प्रकृति और गंभीरता से लड़ने के राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय दोनों के प्रयासों को नुकसान पहुंचा रहे हैं । अन्तत: इस न्यायालय की चिन्ताएं देश के सामाजिक कार्य, विभिन्न फलकों द्वारा सृजित धनों का लेखा रखने में संस्थागत स्रोतों, क्षमताओं और जानकारी तथा नैतिक प्रकृति की अक्षमताओं के बारे में भी व्यवस्थावार असमर्थता की सीमा की और तद्द्वारा नियंत्रण के प्रभावी तंत्र विकसित करने के बारे में भी हैं । ये असमर्थताएं शासन के संवैधानिक आदेश की अंतर आत्मा को छूते हैं । क्या ऐसी असमर्थता ऐसी क्षमताओं के निर्माण के लिए पर्याप्त संसाधनों के न होने के कारण हैं या सामाजिक और राजनैतिक कार्य के व्यापक क्षेत्र में धन लोलुपता की वृहत्त संस्कृति के कारण हैं जो संवैधानिक आदेशों को उलझन में डाल देते हैं ।

5. बेहिसाब धन की भारी मात्रा जो ऐसी अधिकारिताओं में स्थित बैंकों में पड़ी है जो खाताधारकों के उन खातों को संरक्षित करने वाले ठोस एकांत निधियों की संवीक्षा से बचने के कारण फल-फूल रहे हैं, उपरोक्त रेखांकित सभी चिन्ताएं पैदा करती हैं । सर्वप्रथम विदेशों में पड़ा ऐसा भारी धन और व्यक्तियों और देश के अस्तित्व द्वारा बेहिसाब ऐसा भारी धन ऐसी आशंका करने की आवश्यकता को इंगित करता है कि वे ऐसे क्रियाकलापों द्वारा सृजित किए गए हैं जिन्हें विधिविरुद्ध समझा जाता है । इसके अतिरिक्त बेहिसाब धन की ऐसी भारी रकम ऐसा नैसर्गिक संदेह भी पैदा करता है कि उन्हें करों के संदाय को प्रवंचित करने के लिए देश के बाहर अंतरित किया गया है और तद्द्वारा राष्ट्र की क्षमता को ऐसे कार्यों को निभाने से हीन करता है जो लोक हित में है ।

6. राज्य के आधारभूत कृत्यों के बारे में कई विचारधाराएं हैं और ये आदर्शी प्रत्याशा है कि राज्य की क्या भूमिका होनी चाहिए । उन विचारधाराओं में से यह प्रश्न कि कौन-सी विचारधारा बिल्कुल सही है, संवैधानिक न्यायनिर्णयन की सहायता के रूप में किसी विनिर्दिष्ट विचारधारा को चुनने या नामंजूर करने का मापदंड नहीं हो सकता है । मानवीय ज्ञान की ज्ञान शास्त्रियों की कमजोरियों की मजबूरियों के भीतर इस समय विनिश्चय करने के उत्तरदायित्व के परे संवैधानिक न्याय निर्णायकों को जबरदस्ती ऐसे विषयों को चुनने के लिए मजबूर होना पड़ता है जो विधि और तथ्य दोनों की बाबत सुसंगत प्रश्नों को विरचित करने का तार्किक आधार उपलब्ध कराता है । संस्थागत अर्थशास्त्र एक ऐसा परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करता है जो हमारे लिए इस समय उपयोगी पथप्रदर्शक हो सकता है । कार्यात्मक परिप्रेक्ष्य की दृष्टि राज्य और सरकारें यह हल करने के लिए अस्तित्व में आती दिखाई पड़ती हैं जो संस्थागत अर्थशास्त्री द्वारा लोक सद्भाव पैदा करने में समन्वय समस्याओं के रूप में हैं और ऐसी अनुपयोगिता को निवारित करने के लिए जो अधिकतम उपयोगिता की सीमा बढ़ाने के नैतिक खतरे से उभरता है जो माल और सेवाओं के फायदे की वांछा करता है जो आम जनता को उपलब्ध कराए जाते हैं फिर भी उनके उत्पादन के लिए भुगतान न करने का हित रखते हैं ।

7. राष्ट्र की सुरक्षा, विधि बनाने और विधि व्यवस्थित करने के कार्यों से संबंधित उन सभी विषयों सहित शासन की अवसंरचना, अपराध निवारण, खोज और दंड, आर्थिक व्यवस्था का समन्वय और उन लोगों के लिए न्यूनतम स्तर की सामग्री और सांस्कृतिक हित सुनिश्चित करना जो स्वयं अपना प्रबंध करने की स्थिति में नहीं है या जिन्हें अर्थव्यवस्था और समाज के संचालन द्वारा अलग-थलग छोड़ दिया गया है, को लोक हित के प्रकार के कुछ उदाहरण के रूप में उद्धृत किया जा सकता है जिसके लिए राज्य से उपबंध करने और उसकी व्यवस्था सुनिश्चित करने की प्रत्याशा की जाती है । चूंकि बाजार से प्राथमिकत: व्यक्तियों और समूहों के विशुद्धत: स्वकेन्द्रित क्रियाकलापों को प्रदान करने की प्रत्याशा की जाती है क्योंकि बाजार और विशुद्धत: प्राइवेट सामाजिक कार्य का परिक्षेत्र ऐसे हित उपबंध करने में असफल रहते हैं । परिणामत: राज्य और सरकार लोक हित की समस्याओं का समन्वय करने और उनका उपबंध करने के लिए सुधार करने के लिए उभरता है ।

8. बेहिसाब धन, विदेशी बैंकों में नागरिकों और राष्ट्र की विधिक

व्यवस्था के एककों द्वारा धारित भारी रकम विशेषकर कार्य आश्रयों या धन के स्रोतों के बारे में गुप्त ज्ञात इतिहास की अधिकारिता स्पष्टत: राज्य के उन क्षेत्रों के समन्वय से अपने क्रियाकलाप का प्रबंध करने की क्षमता का समझौता उपदर्शित करते हैं जिसका संवैधानिक परिप्रेक्ष्य से किया जाना अपेक्षित है । यह इस प्रकार दो संदर्भों में है । ऐसे व्यष्टियों या अन्य विधिक सत्ताओं जो ऐसा धन रखते हैं, की संख्या के साथ-साथ स्वयं ऐसे धन की मात्रा पहली नजर में उपदर्शित कर सकेगा कि देश के भीतर सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में अधिकांश क्रियाकलाप विधिविरुद्ध हैं और व्यक्तिगत तथा सामूहिक दोनों स्तर पर भारी सामाजिक नुकसान कारित करते हैं । दूसरा विदेश में पड़े धन की भारी मात्रा देश के भीतर व्यष्टियों और अन्य विधिक सत्ताओं द्वारा सृजित आयकर करों के संग्रहण राज्य की क्षमता में सारवान् कमजोरी उपदर्शित करता है । ऐसे राज्य का सृजन विभिन्न लोकहित सेवाओं का भार उठाने के लिए राज्य के लिए आवश्यक है जिसका संवैधानिक रूप से अधिदेश दिया गया है और प्रसामान्यत: अपने नागरिकों को प्रदान करने की उनसे प्रत्याशा है । उपरोक्त की बाबत प्राय: मात्रा की क्षमता राज्य की असफलता की मात्रा का परिचायक होगा और एक विशिष्ट बिन्दु के परे राज्य नैतिक प्राधिकार को कम करने के दोषपूर्ण चक्र में घूमता नजर आएगा जिसके द्वारा ऐसे विधिविरुद्ध क्रियाकलापों की घटनाएं कारित होंगी जिसमें धन सृजित किए जाने की ईप्सा को और कर प्रवंचन की घटनाओं की मात्रा और गहनता में वृद्धि होगी ।

9. परिणामत:, विदेशी बैंकों में नागरिकों और अन्य विधिक सत्ताओं द्वारा धारित बेहिसाब धन का मुद्दा नागरिकों के कल्याण के मौलिक महत्व का विषय है । ऐसे धनों की मात्रा अपराध निवारण और कर संग्रहण दोनों के लिए भी राज्य की कमजोरी का कच्चा उपदर्शक है । ऐसे धनों की मात्रा और ऐसी घटनाओं की संख्या जिसके माध्यम से ऐसे धन सृजित किए जाते हैं और चुपचाप बाहर भेज दिए जाते हैं, के आधार पर कर "राज्य की मृदुलता" की मात्रा को प्रकट कर सकेगा ।

10. "मृदुलता" की अवधारणा को नोबेल विद्वान् गुन्नार मइरदाल द्वारा व्यापकत: रूपायित किया गया था । यह ऐसी मात्रा का व्यापक आधारित मूल्यांकन है जिससे राज्य और इसका तंत्र शासन के अपने दायित्वों से निपटने के लिए सज्जित है । राज्य जितना अधिक मृदु है उतना ही अधिक इस बात की संभावना है कि विधि निर्माता, विधि व्यवस्थापक और विधि विध्वंसक के बीच गलत संबंध है ।

11. जब अपराध, "अपराध" जैसे सर्वज्ञात शब्द का उपयोग किया जाता है तो ये लोगों और विख्यात संस्कृति के लिए यह सोचना आम बात हो जाती है कि यह "छोटा अपराध" है या व्यष्टियों द्वारा किए गए अपने आप में एक अपराध है । वह अन्तर्वलित मुद्दों की गंभीरता का घोर दुष्प्रकटीकरण होगा । अपराध अधिक घातक है जो राष्ट्रीय सुरक्षा और राष्ट्रीय हित को खतरा पहुंचाते हैं । उदाहरण के लिए वैश्वीकरण के साथ-साथ राष्ट्रीय राज्यों को अन्तरराष्ट्रीय आयुध व्यवहारियों औषध विक्रेताओं तथा आतंक के नेटवर्क सहित विभिन्न प्रकार के आपराधिक नेटवर्कों से मुकाबला करना पड़ता है । अन्तरराष्ट्रीय आपराधिक नेटवर्क जो देश में उपजे आतंक या अतिवादी समूह का समर्थन करते हैं या जो विद्रोही देशों में पुष्पित और पल्लिवित तथा संरक्षित किए गए हैं । राष्ट्र राज्यों की सीमाओं के पार धनों के विधिसंगत और विधिविरुद्ध अंतरण के अंतरणों द्वारा औपचारिक और अनौपचारिक नेटवर्क पर आधारित हैं । वे सम्पूर्ण विश्व में वित्तीय अंतरण के सूक्ष्म ढ़ाचे के अंतराल में कार्य करते हैं और विधि तथा प्रयास की खामी और दरार का फायदा उठाते हैं । अतिवादी और नव उदारवादियों द्वारा मार्गदर्शित उन अंतरण के तंत्रों पर ढीलापन एक वैश्विक बाजार पैदा करने पर बल देता है जो विधि के तनाव से मुक्त है और राष्ट्र राज्यों द्वारा इसका प्रवर्तन सम्पूर्ण विश्व में अपराधियों और आतंक नेटवर्क द्वारा क्रियाकलापों की मात्रा, विस्तार और सघनता को बढ़ाने में भी योगदान दे सकता है ।

12. "धन लिप्सा उचित है", संस्कृति जो नव उदारवादी सिद्धांतकारों द्वारा संवर्धित की गई है, के कारण कई राज्य ऐसी स्थिति का सामना कर रहे हैं जहां पूंजीवाद का माडल जैसे राज्य संस्थित करने के लिए आबद्ध हैं और बाजार अपने पंख फैला रहा है जो लूटमार करने की प्रक्रिया है । खनन माफिया से लेकर राजनैतिक संचालकों तक जो सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में विशिष्ट व्यक्तियों या समूहों के लिए उपयुक्त राज्य की नीतियां बनाने के इच्छुक हैं, का उद्देश्य क्षमताओं को कम करना विधि को प्रवृत्त करने का आशय आर्थिक लाभ कमाने के चारे के रूप में है । यद्यपि, राज्य ऐसे लोगों को हिंसात्मक समर्थन प्रदान करता है जो ऐसे लुटेरे पूंजीवाद को प्राय: अपने नागिरकों के विशेषकर अपने गरीबों के मानव अधिकारों का अतिक्रमण करते हुए फायदा पहुंचाते हैं और बाजार कारबार घरानों द्वारा प्रभावित सरकारी तंत्र की तरह कार्य करना आरंभ करता है ; और राज्य ऐसे बाजार की तरह कार्य करना आरंभ करता है जहां सब कुछ

कीमत के लिए विक्रय पर उपलब्ध है ।

13. ऐसे सुशासन का प्रतिमान जो पिछले तीन दशकों से उभरकर सामने आया है, बाजार और उसके प्राकृतिक अनुक्रम को प्राथमिकत: प्रदान करता है और राज्य द्वारा उसके नियंत्रण की किसी हद तक पूर्विकता प्रदान करता है । राज्य की भूमिका रात्रि प्रहरी की तरह नव उदारवादी समर्थक के रूप में देखा जाता है और फिर भी उससे धन सृजन करने वाली मशीनरी की दराज से अपने हाथ निकालने की प्रत्याशा की जाती है । अरथुर लाफ्फर के सिद्धांतों और वाशिंगटन कनसेनसुस द्वारा समर्थित सिद्धांतों के आधार पर विशिष्ट वर्ग और नीति निर्माताओं की यह व्यापक प्रज्ञा है कि कर दरों की कमी और उसके द्वारा कर सत्ता को प्रतिगामी बनाने व्यष्टियों की उद्यमी आत्मा की अनुमानित बुद्धि को अवप्रेरित करेगा जो स्वहित की इच्छा द्वारा प्रेरित तथा भारी आर्थिक शक्ति संचालित करने की वांछा से प्रेरित होगा । यह प्रत्याशित था कि यह इस संतति को और अधिक गति से अधिक धन उपलब्ध कराएगा और तद्द्वारा कम कर दरों पर भी राज्य को समुचित कर राजस्व सृजित करने में समर्थ बनाएगा । इसके अतिरिक्त नैतिक निबंधनों में फायदा होना प्रत्याशित था कि कर दर कम करने से अपना धन छिपाने के लिए धन उत्पादनकर्ताओं के प्रोत्साहन में कमी आएगी जिसके द्वारा कर प्रवंचन के दोष से उन्हें बचाएगा । क्या वह सामाजिक संगठन का समुचित माडल है या नहीं और संवैधानिक न्यायनिर्णयन के परिप्रेक्ष्य से क्या यह विभिन्न संविधानों के पाठों में यथा सन्निहित संविधानवाद की अपेक्षाओं को पूरा करता है, ऐसा प्रश्न नहीं है जिस पर हम विचार करना चाहते हैं ।

14. फिर भी यह उल्लेख करना आवश्यक होगा कि तनाव मुक्त बाजारों के उपरोक्त वृत्तांत के मरहम से असहमति है कि वह हमेशा समाज के फायदे के लिए होगा और उसके लिए हमेशा कार्य करेगा । कर संग्रहण तंत्र का बल राज्य द्वारा संगृहीत राजस्व पर सीधा प्रभाव डालने की प्रत्याशा की जा सकती है और ऐसा किया जाना चाहिए । यदि तंत्र कमजोर, कम कर्मचारी वाला, आदर्शत: अन्य तरीके से प्रेरित है या अभिकर्ता इस प्रकार स्वास्थ्यवर्धक हेतुक से प्रेरित नहीं है तो राज्य द्वारा संगृहीत राजस्व की रकम का पतन होगा और निष्क्रिय हो जाएगा या राज्य के लिए ऐसा राजस्व सृजित नहीं कर सकेगा जो उसके दायित्वों के अनुरूप हो । नव उदारवादी प्रतिमान के भीतर तथा इस विचारधारा के प्रोद्धरण से भी कि राज्य के राजस्व से वृहत्त सरकार की उपेक्षा होती है और इस प्रकार स्वयं

ठोस कर संग्रहण तंत्र अवांछनीय होगा । जहां विशिष्ट वर्ग कर दर कम करने के लिए लोकतांत्रिक राजनीति को ढीला करते हैं वहां यह प्रतीत होगा कि कार्यपालिका के हाथों में राज्य तंत्र नव उदारवाद की प्रतिमान की पराकाष्ठा को संवर्धित करने का इच्छुक होगा और स्वयं विशिष्ट उद्यमों में संयोजित होगा और धन के प्रोद्धरण और संग्रहण की सारवान् क्षमता को विकसित न करने का इच्छुक होगा तथा विधिसम्मत करों के संग्रहण के लिए दूसरा मार्ग अपनाएगा । जैसाकि प्रत्याशा की जा सकती है कई राष्ट्रों के परिणाम विध्वंसकारी रहे हैं ।

15. इसके अलावा यह भी प्रतीत होता है कि इस विषाक्त सांस्कृतिक वातावरण में जिसमें धन लिप्सा का गुणगान किया जाता है, सादृश्य उपभोग को आवश्यक और सामाजिक मूल्यवान दोनों के रूप में देखा जाता है और धनवान व्यक्तियों को भगवान के अवतार के रूप में देखा जाता है वहां राज्य के अभिकर्ता नव उदारवादी प्रतिमान की धारणा के अधीन हो सकते हैं कि राज्य की भूमिका का उपयोग एक को समर्थ बनाने के लिए किया जाए न कि महत्वपूर्ण नियंत्रण रखने के लिए । इस बरताव का विवेकाधिकार विशेषकर आर्थिक क्रियाकलापों को विनियमित करने के संबंध में जिसके अन्तर्गत वैध और अवैध दोनों विभिन्न प्रकार के क्रियाकलापों से सृजित धनों का हिसाब रखने सहित विवेकाधिकार के प्रयोग पर महत्वपूर्ण प्रभाव होगा । नव उदारवाद की विचारधारा से प्रभावित होते हुए पूर्णत: यह संभव है कि आर्थिक और सामाजिक क्रियाकलापों के पर्यवेक्षण के कार्य से न्यस्त राज्य के अभिकर्ता परम सतर्कता की ओर अधिक गलती कर सकते हैं जिसके द्वारा गलत कार्य करने के संकेतों की उपेक्षा हो सकती है यहां तक कि जब वे मजबूत हों । शक्तियों के दृष्टांत की सार्वजनिक रूप से दृश्य स्टॉक मार्किट घोटालों की उपेक्षा करना या भारी पैमाने पर अवैध खनन की ओर आंखें बंद कर लेना आम बात हो गई है और जिन्हें आसानी से उद्धृत किया जा सकता है । राज्य के कमजोर या अनिस्तत्वहीन उत्तरदायित्वों से ऐसे क्रियाकलापों का होना अनुज्ञात किया जाता रहा है और यहां तक कि अधिक आर्थिक लाभ की खोज में प्राइवेट गतिविधियों के सभी तरीकों की अनुज्ञेयता की इस व्यापक संस्कृति को उदारदान कहा जाता है । विशिष्ट वर्ग के ऐसे व्यक्तियों द्वारा जो राज्य की शक्तियां रखते हैं और जो अधिक शोषणात्मक आर्थिक क्षेत्र में स्वयं पकड़ रखते हैं, द्वारा नैतिक समझौतों को ऐसे बरताव को कमजोर विधियों और प्रवर्तन तंत्र और बरताव की ऐसी कमजोर विधि के साथ ऐसी अनुज्ञात्मक विधि द्वारा चिन्हित वातावरण में फलने-फूलने की प्रत्याशा की जा सकती है ।

16. उपरोक्त के साथ-साथ हम प्रशासन के विखंडन पर भी चर्चा करना चाहते हैं । जहां आर्थिक और सामाजिक क्रियाकलाप क्षेत्र में विस्तार हुआ है और उनकी दुनियादारी में तीव्र गति से वृद्धि हुई है वहां राज्य द्वारा प्रशासन का उत्तर और अधिक विशिष्टीकरण और विभाग सृजित करना है । कुछ हद तक यह अपरिहार्य हो गया है । फिर भी यह सही प्रतीत होता है कि ऐसे विभागों के बीच सूचना के आदान-प्रदान करने की यांत्रिक क्षमता को विकसित करने की विभागों और अभिकरणों की सीमाओं के पार सूचना के बहाव में तनाव और समन्वय प्राप्त करने की परिणामी समस्याओं के स्तरों को कम करने के बीच सूचनागत विषमताओं को कम करने की आवश्यकता है । ऐसा जीवन और सामाजिक कार्य जिसके भीतर मानव जीवन संभव हो सकता है ऐसे विशेषज्ञों की विशिष्टीकृत जागीरदारी के आधार पर आरंभ नहीं होता । वे विशेषज्ञता की अन्तर्निहित प्रकृति के परिणामस्वरूप निर्मित सीमाओं को पार करते हैं । प्राय: परिणाम प्रणालीवार अंधता है फिर भी वृहत्तर विशिष्टीकरण के चकाचौंध द्वारा लुभाया जा रहा है । सूचना के कई बिन्दु जिनका संग्रहण विशिष्टीकृत सूचना प्रौद्योगिकी के विकास द्वारा बढ़ता जा रहा है, अभिकरणों और विभागों के बीच समन्वय की कमी के कारण उपेक्षा की जाती है और नौकरतंत्र के भीतर अपने निजी शाद्वल को उत्साहपूर्वक संरक्षित करने की प्रवृत्ति होती है । कुछ घटनाओं में विधि और क्रियाकलापों का उचित रूप से अन्वेषण करने और उन्हें रोकने की असफलता ऐसे अति विशिष्टीकरण जानकारी के आदान-प्रदान करने में तनाव और विभागी तथा विशिष्टीकृत सीमाओं के आर-पार के समन्वय के परिणामस्वरूप हो सकती है ।

17. यदि राज्य विधि निर्माता, विधि व्यवस्थापक, विधि तोड़ने वाले के बीच अप्रिय संबंध के रूप में काफी हद तक मृदु है तथा नैतिक प्राधिकार और नैतिक प्रोत्साहन भी नगण्य हैं तो अर्थव्यवस्था और समाज पर उपयुक्त नियंत्रण रखना व्यर्थ हो जाएगा । भारी बेहिसाब धन साधारणत: इस बात का सूचक है । प्रोफेसर रोटवर्ड ने अपनी हाल ही की पुस्तक में पिछले कुछ दशकों से कई असफल और विध्वंस राज्यों का मूल्यांकन करने के पश्चात् यह कहा :

> "**असफल राज्य समान आर्थिक अवसर प्रदान करते हैं –** किंतु केवल कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के लिए । ऐसे लोग जो शासक या अल्पतंत्र के इर्द-गिर्द रहते हैं, अधिक धनवान होते जाते हैं जबकि उनके छोटे कम भाग्यशाली लोग भूखे रहते हैं । नियामक फायदों और मुद्रा अनुमान तथा विवाचन की जानकारी से काफी फायदे होते

हैं । किंतु वास्तविक धन बनाने का विशेष अधिकार अन्य सारी बातें नष्ट हो रही हैं, शासन करने वाले विशिष्ट वर्ग के मुवक्किलों तक सीमित रह जाते हैं..... राष्ट्र, राज्य का सभी नागरिकों की भलाई और अधिकतम संपन्नता का उत्तरदायित्व सहजदृश्यत: नहीं रह जाता है यदि यह कभी पहले विद्वान् था । भ्रष्टाचार कई राज्यों में फलता-फूलता है किंतु असफल राज्यों में यह प्राय: विध्वंसकारी माप तक पहुंच जाता है । वस्तुत: व्यापक छोटे या स्नेहक भ्रष्टाचार है किंतु असफल राज्यों में धन लोलुपता के भ्रष्टाचार का चिह्न का स्तर बढ़ता जा रहा है ।"[1]

18. भारत स्वयं को एक विशिष्ट स्थिति में पाता है । प्राय: उभरती अर्थव्यवस्था जो शीघ्रता से बढ़ रही है, प्रख्यात संस्कृति में और जिसे विश्व स्तर पर भावी आर्थिक और राजनैतिक भीमकाय व्यक्ति के रूप में माने जाने की प्रत्याशा है, सर्वमानत: कुछ उत्तरदायी और विद्वत् वर्गों में तथा शासकीय वर्ग में भी समझा और जाना जाता है कि इसके कुछ नागरिकों और अन्य विधिक सत्ताओं ने विदेशी बैंकों में विशेषकर कर आश्रयों और गोपनीयता की ठोस विधि की अन्य अधिकारिताओं में बेहिसाब धन की भारी मात्रा पड़ी हुई है । प्रकटत: ऐसी सूचनाएं भी हैं तथा स्वयं भारत सरकार द्वारा सृजित विश्लेषण भी हैं जो यह स्थिर करते हैं कि ऐसे बेहिसाब धन की मात्रा खगोलीय स्तर तक पहुंच गई है ।

19. हम किसी अनुमान पर विचार नहीं करना चाहते कि क्या ऐसा विश्लेषण, रिपोर्ट है बल्कि तथ्यत: राज्य की स्थिति की बाबत विवक्षा करते हैं । हमारे देश के नागरिक स्थिति का बुद्धिसंगत निर्धारण कर सकते हैं और उन्हें करते रहना चाहिए । हमारी यह घोर आशा है कि यह उत्तरदायी, तर्कपूर्ण और युक्तिसंगत विचार-विमर्श की ओर प्रेरित करता है जिसके द्वारा राज्य और उसके अभिकर्ताओं पर संवैधानिक अवसंरचना के भीतर संविधान में अनुष्ठापित अन्तर्निहित मूल्यवान सामाजिक लक्ष्यों और मूल्यों का बलिदान किए बिना आवश्यक परिवर्तन लाने के लिए समुचित लोकतांत्रिक दबाव डालने पर बल देता है । असफलताएं यद्यपि गेय हैं जब संवैधानिक लक्ष्य के विरुद्ध देखा जाता है तथा जैसा डा. अम्बेडकर ने पहले ही इस तथ्य के कारण सचेत किया है कि व्यक्ति चरित्रहीन होते हैं न कि सतत्

---

[1] दी फेलीयर एंड कोललापस आफ नेशन स्टेट - ब्रीकडाउन, प्रीवेंशन एंड रिपेयर इन "वेन स्टेटस फेल : काजज एंड कानसीक्वीन्सिज", रोटवर्ड रोबर्ट I, एड प्रिनसीटन यूनीवर्सिटी प्रेस (2004).

मानवीय अनुभव से एकत्रित प्रज्ञा के आधार पर संविधान में कोई खामी नहीं है । यदि राजनैतिक-नौकरशाही, सत्ता को संभालने वाले और कारबारी वर्ग लांछन के भारी भाग का वहन करते हैं तो कम से कम लांछन का कुछ भाग उन नागरिकों की सुरक्षा में भी विभाजन होना चाहिए जो सुज्ञात है और जिनसे सुज्ञात होने की प्रत्याशा है । उन नागरिकों में से अधिकांश ने स्वयं को राजनैतिक प्रक्रिया और भीड़ से स्वयं को अलग कर लिया है । गरीब और दलितों की अवमानना से सूचित विशिष्ट वर्गों जिन्हें उस नव उदारवादी नीतियों से सारत: अधिकांश फायदा हुआ है या अधिक फायदा होने की प्रत्याशा के झुण्ड को अलग कर देते हैं और उस बात को भी भूल जाते हैं कि संवैधानिक अधिदेश का पालन करने का उत्तरदायित्व उतना ही नागरिकों पर भी है और राजनैतिक दलों सहित सभी अंगों और राष्ट्रीय संस्थाओं को उनको सतत् चौकसी के माध्यम से ऐसा किया जा सकता है । प्रक्रिया में सम्मिलित न होना संवैधानिक अन्तर्वस्तु को असशक्त करना सुनिश्चित करता है । संवैधानिक अवसंरचना के ढांचे की प्रक्रिया और अविवेचना स्थिति का हल नहीं है । सड़क हमेशा लंबी होती है और नागरिकों को इस पर सतत् चलने की आवश्यकता है और कोई दूसरा रास्ता नहीं है । तत्काल हल की प्रत्याशा करने के लिए क्योंकि यह विधि और वह निकाय गठित किया गया है, प्रणालीवार और क्रमबद्ध समस्याओं का हल किए बिना जो उद्भूत हुए हैं, आधुनिक संवैधानिक गणतंत्रात्मक, लोकतंत्र और उत्तरदायी नागरिकों की मांगों को नहीं समझा जा सकता ।

20. हमारे समक्ष प्रस्तुत यह विषय कतिपय नामित व्यक्तियों और उनके अदृढ़ संग्रहों अभिकथित रूप से धारित बेहिसाब धन की भारी रकम के मुद्दे से संबंधित है, परिणामत: हमें संवैधानिक परिप्रेक्ष्य से अपनी गंभीर चिंता व्यक्त करनी है जैसाकि स्वयं भारत सरकार द्वारा अधिकथित है । बेहिसाब धन की मात्रा अति विशाल है । कारण बताओ नोटिसें काफी समय पहले जारी की गई हैं । नामित व्यक्ति भी देश में मौजूद थे फिर भी अन्वेषणों में अज्ञात और संभाव्यत: न जाने योग्य यद्यपि आसानी से अनुमेय हैं, के कारण मामलों की कार्यवाही में अवगुण्ठित गति से कार्यवाही आरंभ हुई । यहां तक कि नामित व्यक्तियों से भी किसी मात्रा की गंभीरता के साथ अभी तक प्रश्नगत नहीं किया गया है, यह गंभीर व्यतिक्रम है विशेषकर जब देश को आंतरिक और बाह्य दोनों दृष्टियों से सुरक्षा के व्यापक मुद्दे के परिप्रेक्ष्य से देखा जाता है ।

21. उपरोक्त के आलोक में हमने इस न्यायालय में फाइल वर्तमान रिट याचिकाओं में कुछ महत्वपूर्ण प्रक्रमों को सुना और इस प्रक्रम पर यह

आवश्यक है कि समुचित आदेश जारी किया जाए । यहां दो मुद्दे हैं जिन पर हम नीचे विचार कर रहे हैं : (i) विशेष अन्वेषण टीम की नियुक्ति; और (ii) भारत संघ द्वारा अपने उत्तर में अवलंबित कतिपय दस्तावेजों का याचियों को प्रकटन ।

II

22. यह रिट याचिका वर्ष 2009 में श्री राम जेठमलानी, श्री गोपाल शरमन, श्रीमती जलबाला वैद्य, श्री के. पी. एस. गिल, प्रोफेसर बी. बी. दत्ता और श्री सुभाष कश्यप सभी सुज्ञात व्यक्ति सामाजिक कार्यकर्ता भूतपूर्व नौकरशाह या ऐसे लोग हैं जो समाज में उत्तरदायित्वपूर्ण हैसियत रखते हैं, द्वारा फाइल की गई । उन लोगों ने श्री सिटीजन इंडिया नामक संगठन भी गठित किया जिसका यह उद्देश्य बताया कि सुशासन सभी सार्वजनिक संस्थाओं के कार्यकरण में परिवर्तन और गुणता में बेहतरी लाना कहा गया है ।

23. याची का यह कहना है कि मीडिया ने रिपोर्टों और पांडित्यपूर्ण प्रकाशनों में भी ऐसी घुमावदार रिपोर्टें हैं कि विभिन्न व्यक्ति अधिकांशत: नागरिक किंतु जिनमें गैर नागरिक भी सम्मिलित हो सकते हैं और भारत में उपस्थित अन्य अस्तित्वों ने भारत या भारत से संबंधित क्रियाकलापों के माध्यम से भारी मात्रा में धन पैदा किया और विभिन्न विदेशी बैंकों में विशेषकर कर आश्रयों और ऐसी अधिकारिताओं में जहां बैंक खातों की अन्तर्वस्तुओं की बाबत और ऐसे खातों को धारण करने वाले व्यक्तियों की पहचान छिपाने की बाबत कठोर गोपनीय विधियां हैं, में छिपाए । याची का यह अभिकथन है कि ऐसा अधिकांश धन बेहिसाब है और इस बात की पूरी संभावना है कि यह विधिविरुद्ध क्रियाकलापों के माध्यम से चाहे भारत में या भारत के बाहर किंतु भारत से जोड़कर सृजित किए गए हैं । इसके अतिरिक्त याचियों का यह अभिकथन है कि ऐसे धनों का वृहत्त भाग भारत के भीतर सृजित किया जाता है और विभिन्न विधियों को तोड़कर जिसका आर्थिक केवल करों की प्रवंचना तक ही सीमित नहीं है, भारत से बाहर ले जाया गया है ।

24. याचियों की यह दलील है कि : (i) ऐसे धनों की शुद्ध मात्रा राष्ट्र की शासन की घोर कमजोरी को इंगित करता है क्योंकि वह उन विधिविरुद्ध क्रियाकलापों जिनके माध्यम से ऐसे धन सृजित किए गए हैं, करों के प्रवंचन और निधियों के अंतरण विधिविरुद्ध साधनों के उपयोग पर नियंत्रण की महत्वपूर्ण कमी को उपदर्शित करते हैं ; (ii) इन निधियों का

तब धन शोधन किया जाता है और वैध और अवैध दोनों प्रकार के क्रियाकलापों में उपयोग किए जाने के लिए भारत में वापस लाया जाता है ; (iii) सीमा पार निधियों के अंतरण के विभिन्न विधिविरुद्ध तरीकों का उपयोग ऐसे विधिविरुद्ध अन्तरराष्ट्रीय वित्त नेटवर्क को समर्थन प्रदान करता है ; और (iv) चूंकि ऐसे विधिविरुद्ध नेटवर्क व्यक्तियों और राज्य के विरुद्ध जिसके अन्तर्गत ऐसे क्रियाकलाप सीमित नहीं हैं जिनका वर्गीकरण आतंकवादी, अतिवादी या विधिविरुद्ध मादक व्यापार के रूप में किया जा सके, के विरुद्ध किए जाने वाले विभिन्न अपराधों तथा व्याप्त स्थिति भी भारत की सुरक्षा और अखंडता के लिए बहुत गंभीर बात है, की सहायता में सीमा पार निधियों के अंतरण को प्रभावी बनाने के लिए व्यापक रूप से अभिस्वीकृति प्रदान की जाती है ।

25. याचियों ने आगे यह भी दलील दी कि ऐसे वृहत्त बेहिसाब धन के महत्वपूर्ण भाग में भारत के शक्तिशाली व्यक्तियों का धन जिसके अन्तर्गत कई राजनीतिक दलों के नेता भी हैं, सम्मिलित हैं । यह भी दलील दी गई कि भारत सरकार के विरुद्ध उसके अभिकरण और बेहिसाब धन सृजित करने के विभिन्न विधिविरुद्ध क्रियाकलाप परिणामस्वरूप का प्रवंचन पर अपनी नजर रखने में बहुत शिथिलता रखते हैं ; और ऐसी शिथिलता भारत से बाहर और भारत में ऐसे निधियों के भाव को कम करने के प्रयास को बढ़ाती है । इसके अतिरिक्त याचियों ने यह भी दलील दी कि व्यक्तियों और अन्य अस्तित्वों जिन्होंने विदेशी बैंकों में ऐसे धन छिपाए हैं, को अभियोजित करने का प्रयास कमजोर अस्तित्वहीन रहा है । दृढ़तापूर्वक यह तर्क किया गया है, विश्व की कई सीमा पार अधिकारिताओं में विभिन्न बैंक खातों में पड़े धन की पहचान करने का प्रयास, ऐसे धनों को वापस लाने का प्रयास और ऐसे धनों के बहिर्गमन को और रोकने के लिए शासन ढांचे को मजबूत करने के प्रयासों में अत्यधिक कमी रही है ।

26. याचियों ने कई विनिर्दिष्ट घटनाओं और कर्तव्य के अवहेलना के पैटर्न के अभिकथन किए हैं जहां भारत सरकार और इसके विभिन्न अभिकरणों को यद्यपि कतिपय बैंक खातों के धनों के बारे में विनिर्दिष्ट जानकारी के विरुद्ध यह अनुमान भी लगाया है कि ऐसे धनों की मात्रा कई हजार करोड़ों में भी है और उक्त व्यक्ति को कारण बताओ नोटिसें जारी करने पर भी यह आश्चर्यजनक है कि उपयुक्त अन्वेषण नहीं किया गया है और व्यक्तियों का अभियोजन करने की कार्यवाही आरंभ नहीं की गई । व्यक्ति को विनिर्दिष्ट रूप से हसन अली खान नामक व्यक्ति के रूप में बताया गया है । याचियों ने यह भी दलील दी कि कासीनाथ टपुरिया और

उसकी पत्नी चंद्रिका टपुरिया भी हसन अली खान के अवैध क्रियाकलापों के पक्षकार हैं ।

27. विनिर्दिष्ट रूप से यह अभिकथित किया गया कि हसन अली खान से 40,000.00 करोड़ रुपए (40 हजार करोड़ रुपए) आयकर की मांग की गई थी और टपुरिया से 20,580.00 करोड़ रुपए (बीस हजार पांच सौ अस्सी करोड़ रुपए) के आयकर मांग की नोटिस दी गई । वर्ष 2007 में प्रवर्तन निदेशालय ने यह उद्घाटित किया कि हसन अली खान ने 2001-2005 की अवधि में 1.6 विलियन यूएस डालर रकम का व्यवहार किया था । जनवरी, 2007 पुणे में हसन अली खान के निवास पर छापा मारने पर कतिपय दस्तावेजों और साक्षियों से जूरिच में यूबीएस बैंक के पास 8.04 विलियन डालर के निक्षेप की बाबत पता चला । याचियों की यह दलील है कि यद्यपि ऐसा साक्ष्य लगभग 3 या 4 वर्ष पहले प्राप्त किया गया । फिर भी (i) विदेश से सही तथ्य अभिप्राप्त करने के लिए उचित अन्वेषण का कार्य आरंभ नहीं किया गया ; (ii) संबद्ध व्यक्ति यद्यपि भारत में और उसकी अधिकारिता में मौजूद हैं और आसानी से उसकी कार्यवाही के लिए उपलब्ध हैं फिर भी समुचित रूप से पूछताछ नहीं की गई ; (iii) यह कि भारत संघ और इसके विभिन्न विभाग उन ब्यौरों और सूचनाओं को प्रकट करने से इनकार कर रहे हैं जो अन्वेषण की वास्तविक प्रास्थिति से प्रकट होता है चाहे वस्तुतः यह संचालित किया गया था या इसमें कोई गंभीरता थी ; क्या विशेषतया आयकर की मांग नोटिस में प्रश्नगत रकम की मात्रा को देखते हुए अन्वेषण की शिथिलता गंभीर गैर शासन और व्यवस्था की कमजोरी जिसके अन्तर्गत ऐसे धन वापस प्राप्त करने के लिए अन्वेषण, अभियोजन को बाधा पहुंचाने या समाप्त करने के लिए राजनैतिक क्षेत्रों से दबाव की बहुत समस्या उपदर्शित करता है ; और व्यापकतः इस स्वीकृत तथ्य पर कि राजनैतिक वर्ग के भीतर भ्रष्टाचार व्याप्त है, उस वर्ग में कई सदस्यों द्वारा गलत तरीके से कमाए गए धन को भारी मात्रा में इकट्ठा कर लिया है । यह संदेह करने का युक्तियुक्त कारण है या यहां तक यह निष्कर्ष है कि अन्वेषण में जानबूझकर अड़चन डाली जा रही है । हसन अली खान और टपुरिया ने ऐसे वर्ग के धनों का लगातार प्रबंध किया था और प्रबंध कर रहे थे । यह तथ्य कि आयकर विभाग और प्रवर्तन निदेशालय ने नैमित्तिक रूप से और तत्परता से धन शोधन या करों के प्रवंचन में लगे उन संभावित व्यक्तियों के अभिरक्षीय पूछताछ की काफी समय से शक्तियां चाहता है जो बहुत छोटी रकम की बाबत है जिससे यह युक्तियुक्त संदेह पैदा होना चाहिए कि हसन अली

खान और टपुरिया से संबंधित मामलों की बाबत निष्क्रियता घृणित कारणों से जानबूझकर रची गई थी ।

28. इसके अलावा याचियों ने यह भी कहा कि क्योंकि ऐसा बैंक जिसमें हसन अली खान द्वारा धन जमा किया गया था यूबीएस जुरिच में था अतः संदेह की सुई उच्च स्तर राजनैतिक हस्तक्षेप और अन्वेषणों में अड़चन दृढ़ रूप से घूमती है । यह निवेदन किया गया कि उक्त बैंक विश्व में सबसे बड़ा या सबसे बड़े धन प्रबंध कंपनियों में से है । याचियों ने ऐसे ढंग और तरीके भी बताए जिसके अनुसार यूनाइटेड स्टेट ने उक्त प्रबंध गुप्त रूप से रखे गए अमेरिकी नागरिकों के धनों की बाबत यूबीएस से निबटा गया था । यह भी अभिकथन किया गया था कि यूबीएस ने यू. एस. प्राधिकारियों से सहयोग नहीं किया था । सापेक्ष तत्परता और दृढ़ता की तुलना में जिसमें यूनाइटेड स्टेट गवर्नमेंट मामले की पैरवी की थी, याचियों की यह दलील है कि भारत संघ की निष्क्रियता दिल दहलाने वाला है ।

29. याचियों का आगे यह अभिकथन है कि वर्ष 2007 में भारतीय रिजर्व बैंक को यूबीएस की एक शाखा यूबीएस सिक्योरिटी इंडिया प्राइवेट लिमिटेड की कुछ संदिग्ध प्रकृति की जानकारी प्राप्त हुई थी और परिणामतः इस बैंक को भारत में अपना कारबार बढ़ाने से भारत में स्टैण्डर्ड चार्टर्ड म्युचल फंड कारबार के ग्रहण करने का अनुमोदन करने से इनकार कर रोक दिया । याचियों द्वारा यह भी दावा किया गया कि सेबी का यह अभिकथन था कि यूबीएस ने वर्ष 2004 में स्टाक मार्केट के धड़ाम से गिरने में भूमिका निभाई थी । उक्त यूबीएस बैंक ने भारत में खुदरा बैंकिंग अनुज्ञप्ति के लिए प्रकटतः आवेदन किया है कि जिसे भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा आरंभ में सिद्धांतत: अनुमोदित किया गया था । वर्ष 2008 में इस अनुज्ञप्ति को इस आधार पर विधारित किया गया कि हसन अली खान वाले मामले में इसकी घृणित भूमिका का अन्वेषण प्रवर्तन निदेशालय के पास लंबित था । तथापि, यह लगता है कि भारतीय रिजर्व बैंक ने वर्ष 2009 में अपना विनिश्चय उलट दिया और यह प्रतीत होता है कि 2008 के विनिश्चय को उलटने के लिए तत्समय कोई उचित कारण नहीं था ।

30. याचियों ने यह दलील दी कि विनिश्चय का इस प्रकार उलटा जाना उच्चस्तरीय हस्तक्षेप के माध्यम से ही संभव हो सकता है कि और यह कि राजनैतिक वर्ग के सदस्यों और संभवतः नौकरशाही के सदस्यों और ऐसे बैंकिंग संचालनों तथा हसन अली खान और टपुरिया के अवैध क्रियाकलापों के बीच संबंध होने का अतिरिक्त साक्ष्य है । इस प्रकार

याचियों ने यह तर्क किया कि इन परिस्थितियों में निश्चय ही यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि हसन अली खान और टपुरिया के क्रियाकलापों के अन्वेषण में घोर रूप से समझौता किया जाता है यदि न्यायालय सीधा विशेष अन्वेषण टीम नियुक्त कर अन्वेषण प्रक्रिया की जानकारी न्यायालय को देने के लिए हस्तक्षेप नहीं करता और मानीटर नहीं करता ।

31. याचियों के विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल ने यह ईप्सा की कि यह न्यायालय इन मामलों में भारत संघ और सभी या किसी सरकारी विभागों या अभिकरणों के कार्यों की उचित अन्वेषण करने का हस्तक्षेप करे या आदेश दे तथा निरंतर मानीटर करे । यह निवेदन किया गया कि अनुच्छेद 32 के अधीन इस रिट याचिका का उनके द्वारा फाइल किया जाना उचित है क्योंकि यथा पूर्वोक्त भारत संघ की निष्क्रियता उचित प्रशासन के मूल अधिकारों का अतिक्रमण करता है चूंकि अनुच्छेद 14 विधि के समक्ष क्षमता और विधि के समान संरक्षण का उपबंध करता है तथा अनुच्छेद 21 सभी नागरिकों के प्राण की गरिमा का वादा करता है ।

32. हमने याचियों के वरिष्ठ विद्वान् काउंसेल श्री अनिल बी. दीवान मध्यक्षेपी की ओर से विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री के. के. वेणुगोपाल और संबद्ध रिट याचिका में याचियों के विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री शांतिभूषण को सुना । हमने प्रत्यर्थियों की ओर से विद्वान् महासालिसिटर श्री गोपाल सुब्रह्मणियम को भी सुना ।

33. श्री दीवान ने विनिर्दिष्ट रूप से यह तर्क किया कि अन्वेषण की प्रकृति प्रत्यर्थियों की ओर से अब तक इतनी धीमी गति और गैर गंभीरता को ध्यान में रखते हुए इस न्यायालय के भूतपूर्व एक या दो न्यायाधीशों की अध्यक्षता द्वारा विशेष अन्वेषण टीम गठित करने की आवश्यकता है । तथापि, इस विशिष्ट अभिवाक् का महासालिसिटर द्वारा बलपूर्वक विरोध किया गया । समय-समय पर प्रस्तुत प्राथिति रिपोर्टों का अवलंब लेते हुए विद्वान् महासालिसिटर ने यह कहा कि विदेशी बैंकों में बड़े धनों को वापस लाने के लिए सभी संभव कदम उठाए जा रहे थे और रजिस्ट्रीकृत मामलों में अन्वेषण की कार्यवाही समुचित रूप से चल रही है । उन्होंने अन्वेषण का प्रलोभन न्यायालय द्वारा किए जाने की अपनी इच्छा जाहिर की । उन्होंने आगे यह निवेदन किया कि सिद्धांतत: प्रत्यर्थियों को याचियों के मुख्य निवेदनों के प्रति किसी प्रकार का कोई आक्षेप नहीं है ।

34. संविवाद का वास्तविक बिन्दु ऊपर बताया गया है कि क्या

अन्वेषण का पर्यवेक्षण करने के लिए इस न्यायालय के एक या दो न्यायाधीशों की अध्यक्षता में एसआईटी गठित किए जाने की आवश्यकता है ।

35. हमें भारत संघ के उत्तरों के बारे में अपने गंभीर विचार व्यक्त करने चाहिएं । पहली नजर में हमारे समक्ष सुनवाई के पहले चरण के दौरान प्रयास बिल्कुल प्रवंचनकारी, धर्मात्मक या मूलत: प्रत्याख्यान प्रकृति के थे । हमारे द्वारा बार-बार दबाव डालने पर ही भारत संघ ने यह स्वीकार करना आरंभ किया कि वस्तुतः अन्वेषण की कार्यवाही बहुत धीमी गति से चल रही थी । हमें यह भी स्पष्ट हो गया है कि वस्तुतः अन्वेषण पूर्णतः थम गया था क्योंकि हसन अली खान की अभिरक्षीय पूछताछ की अब तक ईप्सा भी नहीं की गई थी । यद्यपि वह भारत में ही रह रहा था । इसके अतिरिक्त अब यह भी प्रकट होता है कि यद्यपि उसका पासपोर्ट जब्त कर लिया गया था किंतु वह संभवतः किसी राजनीतिज्ञ की सहायता से पटना के क्षेत्रीय पासपोर्ट अधिकारी से दूसरा पासपोर्ट प्राप्त करने में सफल था ।

36. सुनवाई के दौरान भारत संघ ने बार-बार यह जोर दिया कि मामला पूरे विश्व की कई अधिकारिताओं से जुड़ा है और केन्द्रीय सरकार तथा विभिन्न राज्य सरकारें दोनों के भीतर भिन्न-भिन्न विधि प्रवर्तन अधिकरणों के संयुक्त प्रयासों के माध्यम से उचित अन्वेषण पूरा किया जा सकता है । तथापि, अन्वेषण की गति की मंदता और इस बात के किसी विश्वसनीय उत्तर की कमी कि क्यों प्रत्यर्थियों ने जो संभव थे और स्वयं प्रवर्तन निदेशालय जैसे अभिरक्षीय अन्वेषण की शक्तियों की परिधि के परे थे । किसी समाधानप्रद के अभाव में हमें यह निष्कर्ष निकालने को उद्धत करता है कि प्रत्यर्थियों के प्रयासों में गंभीरता की कमी विधियों की अपेक्षाओं और भारत संघ की संवैधानिक बाध्यताओं के प्रतिकूल है । इस न्यायालय के दबाव और हस्तक्षेप से ही प्रवर्तन निदेशालय ने हसन अली खान पर कार्यवाही आरंभ की और अभिरक्षीय पूछताछ आरंभ की । भारत संघ ने सुस्पष्टतः यह अभिस्वीकृति की है कि इस बात की जानकारी प्राप्त करनी है कि किस रीति में उन्होंने इस न्यायालय के हस्तक्षेप के पूर्व अन्वेषण की कार्यवाही आरंभ की थी । हाल ही की रिपोर्ट से यह प्रतीत होता है कि इस न्यायालय द्वारा अधिक गंभीरता के कारण भारत संघ ने गंभीरता से अन्वेषण करने के अपने हाल ही के प्रयासों के परिणामस्वरूप अतिरिक्त जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया है और जो आगे के अन्वेषण में सहायता पहुंचा सकता है । उदाहरणार्थ इस न्यायालय के इशारे

पर पहली बार हसन अली खान और टपुरियाज से की गई लगातार पूछताछ के दौरान कुछ कारपोरेट दिग्गज के नेताओं, राजनीतिक रूप से सशक्त लोगों और अन्तरराष्ट्रीय आयुध व्यवहारियों सहित कई महत्वपूर्ण व्यक्तियों के नाम उभरकर सामने आए । अब तक इसके अन्वेषण और सत्यापन के लिए कोई महत्वपूर्ण प्रयास नहीं किया गया है । यह इस न्यायालय के लिए और गंभीर चिंता का विषय है तथा इस न्यायालय द्वारा गठित एसआईटी द्वारा लगातार प्रभावी और दिन-ब-दिन और इस न्यायालय की ओर से, के इशारे पर और निदेश पर कार्य करने की आवश्यकता को इंगित करता है ।

37. इस तथ्य के आलोक में कि मुद्दे जटिल हैं, भिन्न-भिन्न विभागों की विशेषज्ञता और ज्ञान की अपेक्षा है तथा भिन्न-भिन्न अभिकरणों और विभागों के परस्पर प्रयासों और समन्वय की आवश्यकता है, हमारे समक्ष यह निवेदन किया गया कि भारत संघ ने वित्त मंत्रालय के राजस्व विभाग की अगुवाई में एक उच्चस्तरीय समिति का हाल ही में गठन किया है जो सभी आर्थिक अपराधों के लिए उत्तरदायी माडल अभिकरण है । उच्चस्तरीय समिति का गठन इस प्रकार से किया गया बताया गया है : (i) सचिव राजस्व विभाग, अध्यक्ष ; (ii) उप गवर्नर भारतीय रिजर्व बैंक ; (iii) निदेशक आसूचना ब्यूरो ; (iv) निदेशक प्रवर्तन ; (v) निदेशक केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो ; (vi) अध्यक्ष सी. बी. डी. टी. ; (vii) महानिदेशक स्वापक औषधि नियंत्रण ब्यूरो ; (viii) महानिदेशक राजस्व आसूचना ; (ix) निदेशक, वित्तीय आसूचना यूनिट ; और (x) संयुक्त सचिव (एफटी और टीआर-आई), सी. बी. डी. टी. । यह भी निवेदन किया गया कि उच्चस्तरीय समिति आवश्यकता अनुसार गृह सचिव, विदेश सचिव, रक्षा सचिव, कैबिनेट सचिवालय सचिव से संयुक्त सचिव की पंक्ति से अन्यून प्रतिनिधि सहयोजित कर सकती है । भारत संघ का यह दावा है कि ऐसी बहु अनुशासनिक समिति हसन अली खान और टपुरियाज के विरुद्ध अभिकथनों से संबंधित मामलों में दक्ष व्यवस्थित अन्वेषण संचालित करने में समर्थ होगी ; और इसके अतिरिक्त कि ऐसी समिति विदेशी बैंकों में पड़े धनों को वापस लाने के लिए समुचित कदम उठाने में भी सक्षम होगी जिन प्रयोजनों के लिए और मामले को दर्ज करने की आवश्यकता पड़ सकती है । भारत संघ का यह भी दावा है कि ऐसी समिति का गठन गंभीरता उपदर्शित करता है जिस तरह यह सम्पूर्ण मामले का अवलोकन करेगी ।

38. जबकि इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत प्रास्थिति रिपोर्टों से यह

प्रकट होता है कि प्रवर्तन निदेशालय ने कुछ छोटे उपाय किए थे किंतु वास्तविक तथ्य समुचित विस्तार के लिए नहीं है । वस्तुत: हम सहमत नहीं हैं कि स्थिति इस हद तक प्रवर्तित हो गई है कि जिससे यह स्वीकार किया जा सके कि अन्वेषण उस गंभीर मात्रा तक संचालित किया जाए जितनी अपेक्षित है । भारत संघ के अनुसार उच्चस्तरीय समिति का गठन अन्वेषण का प्रभार अपने हाथ में लेने और सम्पूर्ण अन्वेषण का निदेश देने और परिणामत: अभियोजन चलाने के लिए गठित किया गया था । इस बीच हसन अली खान के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किए गए हैं । हमारे द्वारा यह जांच करने पर कि क्या आरोप पत्र की विधीक्षा उच्चस्तरीय समिति द्वारा की गई थी और इसके निवेश अर्जित किए गए थे । भारत संघ के काउंसेल बगले झांकने लगे । बात यह थी कि आरोप पत्र यहां तक उच्चस्तरीय समिति को परिशीलन के लिए भी नहीं दिया गया था बल्कि अकेले इसका मार्गदर्शन निदेशालय द्वारा दिया गया था । हम आदेशों के आरक्षित किए जाने के पश्चात् शपथपत्र के माध्यम से प्रवर्तन निदेशालय द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण से संतुष्ट नहीं हैं । यह उल्लेख किया जाए कि कई वर्ष पूर्व **विनीत नारायण** वाले मामले में दिए गए इस न्यायालय के निदेशों के अनुसरण में एक नोडल अभिकरण गठित किया गया था । फिर भी उसे शामिल नहीं किया गया है और यह मामला हमारे समक्ष कभी नहीं रखा गया । क्यों ?

39. प्रास्थिति रिपोर्टों से यह स्पष्ट है कि समस्या काफी जटिल है और सम्पूर्ण देश में कई अभिकरण और विभाग तत्परता और शीघ्रता से प्रत्युत्तर नहीं दे रहे हैं जो एक संस्था वांछा करती है । फिर भी भारत संघ पिछली कार्यवाहियों और उनकी जटिलताओं जैसे कि अन्वेषण की मंदता, या यूबीएस द्वारा खुदरा बैंकिंग कारबार संचालित करने की अनुज्ञप्ति की मंजूरी के बारे में या इन आधारों पर कि उक्त बैंक की विश्वसनीयता संदेहास्पद है, के आधार पर ऐसी अनुज्ञप्ति को विधारित करने के पूर्व लिए गए विनिश्चय को उलटकर किए गए कार्य के बारे में किसी प्रश्न का उत्तर देने में असमर्थ रहा है । इस बाद वाले प्रश्न के संबंध में भारत संघ का यह कहना है कि यूबीएस के आने से भारत में विदेशी विनिधानों के भाव को सुकर बनाएगा । प्रश्न यह उठता है कि क्या भारत में विदेशी निधियों के लाने का कार्य सभी अन्य संवैधानिक सरोकारों और बाध्यताओं के अभिभावी हैं ।

40. इस न्यायालय के समक्ष भारत संघ के उत्तरों की महत्वपूर्ण विषयवस्तु यह है कि यह वह सब कार्य कर रही है जो वह विभिन्न विदेशी

बैंकों में पड़े बेहिसाब धनों को वापस लाने के लिए कर सकती है । इसके साथ यह विशेषण भी जोड़ा जाता है कि यह बहुत जटिल समस्या है जिसके लिए कई भिन्न अधिकारिताओं के सहयोग और अन्तरराष्ट्रीय रूप से समन्वित प्रयास की अपेक्षा है । वस्तुत: वे जटिल हैं । हम उस तर्क के ब्यौरों में नहीं जाना चाहते कि क्या भारत संघ ऐसे लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक बातें कर रहा है या नहीं । वह प्रस्तुत मामले के लिए आवश्यक नहीं है ।

41. महत्वपूर्ण यह है कि भारत संघ ने ऐसी जानकारी, दस्तावेज और सूचना अभिप्राप्त की थी जो हसन अली खान और उसके अभिकथित सह-षड्यंत्रकर्ताओं और ज्ञात अन्तरराष्ट्रीय सशस्त्र व्यवहारियों के बीच संभव संबंध दर्शित करता है । इसके अतिरिक्त भारत संघ के पास यह भी जानकारी थी जिससे यह इंगित होता है कि अन्तरराष्ट्रीय सशस्त्र लेनदेन नेटवर्क और इस कार्य में अति प्रभावशाली व्यवहारी होने के कारण ऐसी अधिकारिता में भी बैंक का खाता नहीं खोल सकता जिसे अपने बैंकों में जमा किए जाने वाले धन का स्रोत न पूछने पर अधिक बल दिए जाने की साधारणतया अभिस्वीकृति की जाती है । संभवतया हसन अली खान ने अन्य अधिकारिता में उसी बैंक की शाखा में खाता खोलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । स्वयं भारत संघ की मांग के अनुसार अभिकथित आयकर की मात्रा देश के पक्ष में जाती है और धन की मात्रा कुछ खातों में 8.04 विलियन यूएस डालर है और कुछ अन्य खातों में 70 हजार करोड़ रुपए से अधिक है जिसके लिए कहा गया है कि हसन अली खान और टपुरिया के विभिन्न बैंक खातों के माध्यम से किए गए हैं । इसके अतिरिक्त सभी खातों से यह पता चला है कि किसी भी नामित व्यक्तियों के पास धन की ऐसी भारी मात्रा का कोई ज्ञात और विधिसम्मत स्रोत नहीं है । व्यक्तिगत या संयुक्त रूप से इन सभी कारकों से विधि और क्रियाकलापों, राष्ट्रीय सुरक्षा और राज्य के विरुद्ध कार्य सहित अन्य अवैध क्रियाकलापों के लिए भारत में निधियों के अंतरण के स्रोत के बारे में तत्काल प्रश्न उद्भूत होना चाहिए । हमारे द्वारा बार-बार ही जोर देने पर ऐसे विषय यदि कर संग्रहण के मुद्दे से अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं फिर भी उसके समान हैं । विलम्बत: भारत संघ ने यह निष्कर्ष निकाला कि ऐसे पहलुओं का भी अन्वेषण गंभीरता से किया जाना चाहिए । तथापि, राष्ट्रीय सुरक्षा पर्यवेक्षक से इन अन्य मामलों में वस्तुत: गंभीर अन्वेषण का कोई साक्ष्य नहीं है ।

42. असलियत यह है कि भारत संघ ने हसन अली खान और टपुरिया के क्रियाकलापों में उचित अन्वेषण करने का घोर प्रयास किया ।

जहां हाल ही के अन्वेषण के माध्यम से भारत संघ को कुछ व्यक्तियों जिनके नामों की प्रतिकूल जानकारी प्राप्त हुई है, से भी पूछताछ की और कई लोगों से अभी पूछताछ की जानी है । यह उचित जटिल अन्वेषण वस्तुत: अभी आरंभ हुआ है । अब भी यह निष्कर्ष निकालना जल्दबाजी होगी कि भारत संघ वस्तुत: उचित अन्वेषण संचालित करने के लिए सभी आवश्यक मशीनरी लगा दी है । उच्चस्तरीय समिति का गठन एक आवश्यक कदम था और यहां तक इसे स्वागत योग्य कदम कहा जा सकता है । फिर भी यह अपर्याप्त कदम है ।

43. उपरोक्त के आलोक में हमने भारत संघ से यह प्रस्ताव किया था कि उसके द्वारा गठित इसी उच्चस्तरीय समिति को विशेष अन्वेषण टीम में संपरिवर्तित कर दिया जाए जिसकी अध्यक्षता भारत के उच्चतम न्यायालय के दो सेवानिवृत्त न्यायाधीश करें । भारत संघ ने इसका विरोध किया किंतु ऐसा कोई सिद्धांत नहीं बताया कि क्यों यह विशेषकर पिछले चार वर्षों से चल रहे इन मामलों में उसकी कार्यवाहियों में कई चूकों और कमी के आलोक में अवांछनीय है ।

44. हमारी यह दृढ़ राय है कि इन मामलों में देश और विदेश दोनों में कई अधिकारिताओं तथा कई विभागों और अभिकरणों में विशेषज्ञता और जानकारी तथा सरकार का प्रभाजन उचित अन्वेषण संचालित करने में एक गंभीर अड़चन है । हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि वस्तुत: एक ऐसे निकाय का सृजित किया जाना आवश्यक है जो समन्वय करे, निदेश दे और जहां आवश्यक हो राज्य के विभिन्न संस्थानों द्वारा समयबद्ध और अतिशीघ्र कार्यवाही का आवश्यक निदेश दे । हम यह भी अभिनिर्धारित करते हैं कि व्यापक निरीक्षण क्षमता में इन मामलों में इस न्यायालय का लगातार संबद्ध रहना विधि के नियम को कायम रखने और संवैधानिक मूल्यों की अभिप्राप्ति के लिए आवश्यक है । तथापि, इस न्यायालय द्वारा दैनन्दिन अन्वेषण से जुड़ा रहना या अन्वेषण के सभी पहलुओं पर सतत् मानीटर करना संभव नहीं होगा ।

45. इस न्यायालय के संसाधन अत्यंत अल्प हैं और यह प्रत्येक वर्ष एक लाख मामलों से अधिक में न्याय देने के कार्य से बोझिल है । फिर भी यह न्यायालय संविधान को कायम रखने के लिए आबद्ध है और अपने निजी भारों से जो पहले से ही काफी अधिक हैं, के आधार पर उस कार्य को न करने का बहाना नहीं कर सकता । ऐसे देश में जहां उसके अधिकांश लोग अशिक्षित और निरक्षर हैं, भुखमरी और गंदगी से ग्रस्त हैं

वहां इस न्यायालय द्वारा इन मामलों की मानीटरिंग करने से प्रत्याहरण करना घोर अनैतिक होगा ।

46. मुद्दा मात्र यह नहीं है कि क्या भारत संघ अभिकथित धनों के सभी या कुछ महत्वपूर्ण भाग को वापस लाने का आवश्यक प्रयास कर रही है । तथ्य यह है कि ऐसी कुछ सूचना जानकारी है कि ऐसी भारी रकम विदेशी बैंकों में पड़ी हो सकती है, यह निहित करता है कि राज्य की संविधान के अधीन ऐसे धनों के संसाधनों का पता लगाने, ऐसे दोषी को दंडित करने जहां ऐसे धनों को सृजित किया गया है और/या विधि विरुद्ध क्रियाकलापों के माध्यम से विदेश ले जाया गया है, का हर संभव प्रयास करने और देश के धन को वापस लाने का प्रयास करने का संविधान के अधीन मूल दायित्व है । सफलता की मात्रा को यदि हम धन की मात्रा वापस लाने के रूप में देखें तो यह उन पहलुओं सहित कई अन्य कारकों पर निर्भर है जो अन्तरराष्ट्रीय राजनीतिज्ञ अन्तरराष्ट्रीय संबंधों से संबंधित है हो सकता है जो हमारे नियंत्रण में हैं या नहीं । असलियत यह है कि उन कारकों की बाबत जो भारत संघ की शक्ति के भीतर हैं जैसे संभावित आपराधिक संबंध का अन्वेषण, राष्ट्रीय सुरक्षा के खतरे आदि की बाबत भी प्रयास नहीं किए गए हैं । संविधान की निष्ठा मात्र तात्विक सफलता का विषय नहीं है । किंतु राज्य के नैतिक प्राधिकार के परिप्रेक्ष्य से संभवतः और महत्वपूर्ण ऐसे सभी आयामों पर प्रयास की ईमानदारी का विषय जो ऐसी समस्या की सूचना देता है जो संवैधानिक परियोजनाओं को धमकी देता है । इसके अतिरिक्त ऐसी गंभीरता की मात्रा जिसके साथ उन विभिन्न आयामों की बाबत प्रयास किए जा रहे हैं, क्षमता निर्माण के निबंधनानुसार परिणाम निकलने की भी प्रत्याशा की जा सकती है और भविष्य में गंभीर रूप से धन का लेखा रखने या अनुपालन करने के विधि प्रवर्तन भाग के आवश्यक बरताव पर विकास करने की भी प्रत्याशा की जा सकती है ।

47. विधि प्रवर्तन के अन्वेषणों और प्रयासों की प्रबलता के गुणदोष का मार्ग केवल इस मापमान से नहीं किया जा सकता है जो हम इस बाबत प्रत्याशा करते हैं जैसा भूतकाल में हुआ है । ऐसे फायदों का मूल्यांकन किया जाना भी आवश्यक होगा जिसके भविष्य में ऐसे क्रियाकलापों को रोकने से देश में प्रोद्भूत होने की संभावना है । हमारे लोग गरीब हो सकते हैं और सभी तरह के प्रवंचन से ग्रस्त हो सकते हैं । तथापि, वह गरीब और ग्रस्त आम जनता नैतिक और मानवीय दृष्टिकोण से

अमीर है । ऐसे लोग जिनके पास शक्ति है कई दुर्बलताओं और सफलताओं की अपनी सहिष्णुता से गरीब और सशक्त से कम ख्याति वाले नहीं हैं जो स्वतः उनकी मानवता न्यास और सहिष्णुता के भारी गुणों का परिचायक है । उस महानता का मेल हमारी संवैधानिक परियोजना के उनके गरिमामय जीवन प्रदान करने के व्यापक लक्ष्य के प्रत्येक शक्ति और प्रत्येक संसाधन के प्रयोग द्वारा ही किया जा सकता है । ऐसे प्रयास जो यह न्यायालय इस बाबत करती है और इस बाबत करेगी तथा उन मामलों को यद्यपि आवश्यक नहीं है फिर भी छोटे और लघु भाग के रूप में समझा जा सकता है । अंततः संविधान का संरक्षण और इसकी दूरदृष्टि और मूल्यों का संवर्धन करना हमारे लोगों की सेवा का एक तात्विक तरीका है ।

48. हम यह उल्लेख करते हैं कि पहले कई दृष्टांतों में जब मुद्दे इस न्यायालय को निर्दिष्ट किए गए, बहुत जटिल प्रकृति के रहे हैं और फिर भी न्यायालय के हस्तक्षेप की अपेक्षा थी । उनकी संवैधानिक बाध्यताओं को पूरा करने के लिए न्यायालय और भारत संघ और/या राज्य के अनुयायियों को समर्थन बनाने के लिए विशेष अन्वेषण टीमों का आदेश दिया गया और उनका गठन किया गया । निम्नलिखित दृष्टांतों का उल्लेख किया जा सकता है : **विनीत नारायण** बनाम **भारत संघ**[1], **एनएचआरसी** बनाम **गुजरात राज्य**[2], **संजीव कुमार** बनाम **हरियाणा राज्य**[3] और **सेंटर फार पीआईएल** बनाम **भारत संघ**[4] वाले मामले ।

49. उपरोक्त के आलोक में हम यह आदेश देते हैं :–

(i) कि भारत संघ द्वारा उच्चस्तरीय समिति विशेष अन्वेषण टीम के रूप में तत्काल प्रभाव से गठित की जाए जो निम्निलिखित से लेकर बनेगी (i) सचिव, राजस्व विभाग ; (ii) उप राज्यपाल भारतीय रिजर्व बैंक ; (iii) निदेशक (आसूचना ब्यूरो) ; (iv) निदेशक, प्रवर्तन ; (v) निदेशक के लिए अन्वेषण ब्यूरो ; (vi) अध्यक्ष, सीबीडीटी ; (vii) महानिदेशक स्वापक औषधि नियंत्रण ब्यूरो ; (viii) महानिदेशक राजस्व आसूचना ; (ix) निदेशक वित्तीय आसूचना यूनिट ; और (x) संयुक्त सचिव (एफटी एंड टीआर-आई), सीबीडीटी ।

---

1 (1996) 2 एस. सी. सी. 199.
2 (2004) 8 एस. सी. सी. 610.
3 (2005) 5 एस. सी. सी. 517.
4 (2011) 1 एस. सी. सी. 560.

(ii) इस प्रकार गठित विशेष अन्वेषण टीम निदेशक, अनुसंधान विश्लेषण टीम को भी सम्मिलित किया जाए ;

(iii) इस प्रकार गठित उपरोक्त विश्लेषण टीम की अध्यक्षता इस न्यायालय के निम्नलिखित भूतपूर्व प्रख्यात न्यायाधीशों द्वारा की जाए और सम्मिलित किया जाए : (क) माननीय न्यायमूर्ति बी. पी. जीवन रेड्डी, अध्यक्ष ; और (ख) माननीय न्यायमूर्ति एम. बी. शाह उपाध्यक्ष ; और यह कि विशेष अन्वेषण टीम उनके मार्गदर्शन और निर्देशन के अधीन कार्य करेगी ;

(iv) यह कि इस प्रकार गठित विशेष अन्वेषण टीम को अन्वेषण का उत्तरदायित्व और कर्तव्य, कार्यवाहियों और अभियोजन का आरंभ का कार्यभार सौंपा जाएगा चाहे ये निम्नलिखित के संबंध में समुचित आपराधिक या सिविल कार्यवाहियों के संबंध में – (क) हसन अली खान और टपुरिया के बेहिसाब धन से संबंधित और उससे उद्‌भूत मामलों से संबंधित सभी मुद्‌दे ; (ख) भारतीयों या भारत में प्रचालन होने वाले अन्य अस्तित्वों द्वारा विदेशी बैंक खातों में बेहिसाब धनों के पड़े किसी अन्य ज्ञात दृष्टांतों की बाबत पहले से आरंभ और/या लंबित या आरंभ किए जाने के लिए प्रतीक्षारत सभी अन्य अन्वेषण ; और (ग) भारतीयों या भारत में प्रचालन किए जाने वाले अन्य अस्तित्वों में विदेशी बैंकों में पड़े बेहिसाब धनों की बाबत सभी अन्य मामले जो ऐसे अन्वेषणों और कार्यवाहियों के अनुक्रम में उद्‌भूत हों । यहां यह स्पष्ट किया जाता है कि उपरोक्त उत्तरदायित्वों की परिधि के भीतर यह सुनिश्चित करने का भी उत्तरदायित्व होगा कि ऐसे क्रियाकलापों की आपराधिक और/या विरुद्धता की बाबत मामलों का भी अन्वेषण किया जाए, कार्यवाहियां आरंभ की जाएं और अभियोजन संचालित किए जाएं जो ऐसे धनों का संसाधन रहे हैं तथा अपराधी और/या विधिविरुद्ध कार्य का यह अभिप्राय है कि जो ऐसे बेहिसाब धनों को देश से बाहर ले जाया करते हैं और/या ऐसे धनों को वापस लाते हैं तथा ऐसे धनों का उपयोग भारत या विदेश में करते हैं । विशेष अन्वेषण टीम को एक व्यापक कार्यवाही योजना जिसके अन्तर्गत आवश्यक संस्थागत ढांचे का सृजन है, तैयार करने का उत्तरदायित्व भी सौंपा जाएगा जो देश के बेहिसाब धन के सृजन के विरुद्ध लड़ाई लड़ने और विदेशी बैंकों में या विभिन्न रूपों में देश में उनके पड़े धनों के विरुद्ध लड़ाई लड़ने में समर्थ बना सके और उन्हें

बल प्रदान कर सके ।

(v) इस प्रकार गठित विशेष अन्वेषण टीम से न्यायालय को रिपोर्ट देगी और उत्तरदायी होगी तथा उसे सावधिक प्रास्थिति रिपोर्ट फाइल कर सभी मुख्य बातों की जानकारी इस न्यायालय को देने के कर्तव्य और उसे विशेष आदेश जो यह न्यायालय समय-समय पर जारी करे, का पालन करने का कर्तव्य भी सौंपा जाएगा ;

(vi) राज्य के सभी अंगों, अभिकरणों, विधानों और अभिकर्ताओं चाहे भारत संघ या राज्य सरकार के स्तर पर हों किंतु सभी कानूनी रूप से गठित व्यक्तिगत निकायों और संवैधानिक निकायों तक सीमित नहीं है । इस प्रकार गठित विशेष अन्वेषण टीम के लिए कार्य करने हेतु सभी प्रकार का आवश्यक सहयोग प्रदान करेंगे ;

(vii) भारत संघ और जहां आवश्यक है राज्य सरकारों को भी इस प्रकार गठित विशेष अन्वेषण टीम को अपने सम्पूर्ण साधनों द्वारा अन्वेषण का संचालन सुकर बनाने का निदेश दिया जाता है जो सभी आवश्यक वित्तीय, सामग्री, विधिक, कूटनीतिज्ञ और आसूचना संसाधन चाहे ऐसे अन्वेषण या ऐसे अन्वेषणों के भाग देश के बाहर या देश के भीतर या विदेश में हो ;

(viii) विशेष अन्वेषण टीम ऐसे अन्वेषण में भी जहां आरोप पत्र पहले फाइल किए जा चुके हैं, में और अन्वेषण करने की भी शक्ति प्रदान की जाती हैं ; और यह कि विशेष अन्वेषण टीम और मामले दर्ज कर सकेगी तथा विदेश के बैंक खातों में विधिविरुद्ध रूप से रखे गए बेहिसाब धनों को वापस लाने के प्रयोजन के लिए और मामले दर्ज कर सकेगी, समुचित अन्वेषण कर सकेगी और कार्यवाहियां आरंभ कर सकेगी ।

50. हम तदनुसार भारत संघ को समुचित अधिसूचना जारी करने और इसे तत्काल प्रकाशित करने का निदेश देते हैं । यह स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं है । विशेष अन्वेषण टीम का पर्यवेक्षण करने के लिए इस प्रकार नियुक्त इस न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के समान अपने पारिश्रमिक भत्ते, परिलब्धियां, सुविधाएं देने के हकदार हैं । भारत संघ का वित्त मंत्रालय तत्काल विशेष अन्वेषण टीम के उचित और प्रभावी कार्यकरण के लिए समुचित अवसंरचना और अन्य सुविधाएं सृजित करने का उत्तरदायी होगा ।

III

51. अब हम याचियों की ईप्सा के अनुसार भारत संघ को निर्दिष्ट विभिन्न दस्तावेजों के प्रकटन के मामले की ओर अपना ध्यान आकृष्ट करते हैं । ये दस्तावेज यूरोप के एक छोटे टापू संप्रभु राष्ट्र राज्य, प्रिंसीपिलिटी आफ लाइसेंसटियन ("लाइसेंसटियन") में भारतीय नागरिकों के विभिन्न बैंक खातों के संबंध में उनके नामों और बैंक विशिष्टियों के संबंध में है । साधारणतः यह माना जाता है कि लाइसेंसटियन एक कर आश्रय है ।

52. प्रकटत: याचियों के अभिकथन के अनुसार लाइसेंसटियन के किसी बैंक या बैंकों का भूतपूर्व कर्मचारी ऐसे खातों की विशिष्टियों के साथ 1400 बैंक खाता धारकों के नाम अर्जित किए और सूचना विभिन्न अस्तित्वों को प्रस्तावित किए । इसे फेडरल रिपब्लिक आफ जर्मनी ("जर्मनी") द्वारा प्राप्त किया गया जिसे तत्पश्चात् कुछ 600 व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाहियां आरंभ करने के अलावा ऐसे देशों के राष्ट्रों और अन्य देशों के नागरिकों से संबंधित सूचना भी प्रस्तावित की गई थी । याचियों की यह दलील है कि भारत संघ एक भूतपूर्व कर्मचारी द्वारा प्रकटत: नामों की सूची भारतीय नागरिकों के भारी संख्या में नामों के होने के बारे में सूचना दी गई थी । फिर भी भारत संघ ने ऐसी सूचना अर्जित करने और ऐसे व्यक्तियों के विरुद्ध अन्वेषण आरंभ करने का कोई गंभीर प्रयास नहीं किया । याचियों की यह दलील है कि ऐसे नामों में प्रमुख और सशक्त भारतीय की पहचान या ऐसे व्यक्तियों की पहचान जो भारतीय नागरिक हो सकते हैं या नहीं हो सकते । किंतु जो विदेश के बैंक खातों में बेहिसाब धनों को रखने विभिन्न सशक्त भारतीयों के बारे में जानकारी दे सकते हैं, सम्मिलित हैं । याचियों की यह भी दलील है यद्यपि उन्होंने सूचना का अधिकार नियम, 2005 के अधीन सूचना की मांग की थी किंतु प्रत्यर्थियों ने न तो नामों को प्रकट किया न ही सुसंगत दस्तावेजों के बारे में बताया । याचियों का यह तर्क है ऐसी अनिच्छा भारत संघ की ओर से ऐसे धनों को वापस प्रकट करने की उपयुक्त कदम न उठाने और नामित व्यक्तियों को दंडित न करने से तथा सूची में व्यक्तियों के नामों का प्रकटन न करने के कारण भी विभिन्न विधि और क्रियाकलाप अर्थात् विधिविरुद्ध बेहिसाब धनों का सृजन और विदेशी बैंकों में उनके पड़े धनों के बारे में लगे सशक्त व्यक्तियों का पता लगाने में सहायक होगा ।

53. याचियों द्वारा यह भी अभिकथित किया गया है कि वस्तुत: जर्मनी के देश को ऐसी सूचना का प्रस्ताव किया था जो इस अनुरोध को

करने और यह विनिर्दिष्ट नहीं किया कि ऐसे नामों से संबंधित नामों और अन्य जानकारियों का अनुरोध उसे दोहरे कराधान करारों के अनुसरण में ही किया जाना जिसका समझौता अन्य देशों के साथ है । याचियों का यह भी अभिकथन है कि भारत संघ ने इस अनुमान के आधार पर कार्यवाही आरंभ करने का चयन किया है कि वह जर्मनी के साथ दोहरे कराधान करार के अनुसरण में ही जानकारी का अनुरोध कर सकता है । याचियों ने यह दलील दी कि भारत सरकार ने प्रथमत: आम जनता की नजरों से जानकारी छिपाने के लिए ऐसा कदम उठाया ।

54. भारत संघ के उत्तर को संक्षेप में इस प्रकार किया जा सकता है – (i) यह कि उसने लाइसेंसटियन में बैंक खातों और ऐसे बैंक खातों से संबंधित अन्य ब्यौरे वित्तीय प्रवंचन के निवारण और दोहरे कराधान से बचने के लिए जर्मनी के साथ भारत के करार के अनुसरण में व्यक्तियों के नाम प्राप्त किए ; (ii) यह कि उक्त करार इस न्यायालय के समक्ष इन चल रही कार्यवाहियों के संदर्भ में भी याचियों को ऐसे बैंक खातों की बाबत जानकारी और अन्य दस्तावेज तथा ऐसे नामों को प्रकट करने से भारत संघ को अभिनिषिद्ध करता है ; (iii) यह कि जर्मनी से प्राप्त ऐसे नामों, अन्य दस्तावेजों और जानकारी का प्रकटन भारत के विदेशी राज्यों के संबंधों को जोखिम में डालेगा ; (iv) यह कि ऐसे नामों, अन्य दस्तावेजों और जानकारी का प्रकटन उन व्यक्तियों के एकांतता के अधिकार का अतिक्रमण होगा जो विधिपूर्ण ढंग से धनों को निक्षेपित किए हैं ; (v) यह कि नामों और अन्य दस्तावेजों और जानकारी का प्रकटन ऐसे व्यक्तियों की बाबत किया जा सकता है जिनके संबंध में अन्वेषण पूरे हो गए हैं और कार्यवाहियां आरंभ की गई हैं ; और (vi) याचियों के प्रख्यान के प्रतिकूल जर्मनी ने भारत संघ से दोहरे कराधान करार के अधीन जानकारी जानने के लिए कहा था और यह कि यह उक्त जानकारी के लिए भारत संघ द्वारा पूर्व अनुरोध के उत्तर में था ।

55. इस आदेश के प्रयोजनों के लिए यह मुद्दा कि क्या भारत संघ दोहरे कराधान करार का आश्रय लिए बिना नामों और अन्य दस्तावेज तथा जानकारी की मांग कर सकता था और प्राप्त कर सकता था, सुसंगत नहीं है । यह अवधारणा करना कि प्रयोजनों के लिए कि क्या भारत संघ ऐसी जानकारी को प्राप्त करने के लिए आबद्ध है जो उसने प्रिंसीपिलिटी आफ लाइसेंसटियन के बैंक में भारतीय नागरिकों के खातों की बाबत जर्मनी से अभिप्राप्त किए हैं, हमें केवल भारत संघ के दावों की परीक्षा करने की

आवश्यकता है कि क्या वह ऐसी जानकारी को प्रकट करने से जर्मनी से दोहरे कराधान करार के द्वारा अभिनिषिद्ध है । इसके अतिरिक्त और सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषय यह है कि हमें इस बात की परीक्षा करनी होगी कि क्या इस न्यायालय के समक्ष अनुच्छेद 32 के अधीन कार्यवाहियों के संबंध में जिसमें इस न्यायालय की अधिकारिता का प्रयोग किया है । भारत संघ याचियों को ऐसी जानकारी उपलब्ध करने से और ऐसे व्यक्तियों के एकांतता के अधिकार की बाबत मुद्दे की बाबत भी जिनके पास ऐसे खाते हैं और जिनकी बाबत अभी कोई अन्वेषण आरंभ नहीं हुआ है या केवल भागत: हुआ है, की बाबत छूट का दावा कर सकता है जिसे कि राज्य ने अब तक कारण बताओ नोटिस जारी नहीं किए हैं और कार्यवाहियां आरंभ नहीं की हैं ।

56. हमने जर्मनी के साथ हुए उक्त करार का परिशीलन किया । मुझे यह पक्का विश्वास है कि स्वयं उक्त करार लाइसेंसटियन में विभिन्न बैंक खाता धारकों के नामों सहित उनके सुसंगत दस्तावेजों और ब्यौरों के प्रकटन को अभिनिषिद्ध नहीं करता । प्रथमत: हम यह उल्लेख करते हैं कि व्यक्तियों के नाम लाइसेंसटियन में बैंक खातों की बाबत हैं जो यद्यपि अधिकत: जर्मनी बोलने वाले लोगों का है किंतु एक स्वतंत्र और संप्रभु राष्ट्र राज्य है । जर्मनी और भारत के बीच करार ऐसे विभिन्न मुद्दों की बाबत हैं जो जर्मनी को और/या भारत को करों के संदाय के लिए जर्मन और भारतीय नागरिकों के दायित्व भी उद्भूत होते हैं । यह दूर-दूर तक लाइसेंसटियन में भारतीय नागरिकों के बैंक खातों से संबंधित जानकारी के बारे में नहीं है जो जर्मनी अभिप्राप्त करता है और आदान-प्रदान करता है जिसका ऐसे मामले से कोई संबंध नहीं है जो दो देशों के बीच दोहरे कराधान करार के अन्तर्गत आते हैं । वस्तुत: "जानकारी" जो अनुच्छेद 26 में निर्दिष्ट है यह है कि "जो इस करार के प्रयोजनों के क्रियान्वयन के लिए आवश्यक" है अर्थात् इंडो-जर्मन डीटीएए । अत: ईप्सित जानकारी इस उपबंध की परिधि के भीतर नहीं आती । इन परिस्थितियों में भारत संघ के लिए बार-बार यह दावा करना कपटपूर्ण है कि वह इस आधार पर याचियों द्वारा यथा ईप्सित दस्तावेजों और नामों को प्रकट करने में असमर्थ है कि यह उक्त करार द्वारा अभिनिषिद्ध है । विषय यह नहीं है कि स्वयं जर्मनी भारत से आदान-प्रदान किए गए दोहरे कराधान करार की गोपनीयता और गुप्त खंड के अधीन मानने के लिए कहे । यह भारत संघ और समुचित कार्यवाहियों में न्यायालयों को अवधारित करना है कि क्या जानकारी दोहरे

कराधान के अन्तर्गत आने वाले विषय हैं या नहीं । किसी भी समय हम यह परीक्षा करने के लिए भी कि क्या वह इन कार्यवाहियों के संबंध में ऐसे नामों और दस्तावेजों तथा जानकारी के प्रकटन को अभिनिषिद्ध करते हैं, दोहरे कराधान करार के उपबंधों की भी परीक्षा आरंभ करते हैं ।

57. जर्मनी के साथ दोहरे कराधान करार के अनुच्छेद 26 का सुसंगत भाग जिसकी प्रति भारत संघ द्वारा प्रस्तुत की गई है इस प्रकार है :–

> "1. संविदा करने वाले राज्यों के सक्षम प्राधिकारी इस करार के प्रयोजन के क्रियान्वयन के लिए यथा आवश्यक ऐसी जानकारी का आदान-प्रदान करेंगे । संविदा करने वाले राज्य द्वारा प्राप्त किसी जानकारी को उस राज्य के घरेलू विधियों के अधीन अभिप्राप्त जानकारी की रीति के अनुसार गुप्त समझा जाएगा और इस करार के अधीन आने वाले करों के निर्धारण या संग्रहण की बाबत प्रवर्तन या अभियोजन से संबंधित अपीलों के अवधारण में अन्तर्वलित व्यक्तियों या प्राधिकारियों (जिसके अन्तर्गत न्यायालय और प्रशासनिक निकाय है) को ही प्रकट की जाएगी । वह लोक न्यायालयों कार्यवाहियों या न्यायिक कार्यवाहियों में जानकारी को प्रकट कर सकेंगे ।
>
> 2. किसी भी दशा में पैराग्राफ 1 के उपबंधों का अर्थान्वयन इस प्रकार नहीं किया जाएगा जो संविदा करने वाले राज्य पर बाध्यता अधिरोपित करता हो –
>
> (क) उस राज्य अन्य संविदा करने वाले की विधियों और प्रशासनिक पद्धति से भिन्न प्रशासनिक उपायों को क्रियान्वित करने के लिए ;
>
> (ख) ऐसी जानकारी प्रदान करने के लिए जो उस या अन्य संविदा करने वाले राज्य की विधियों या उसके प्रशासन के सामान्य अनुक्रम में अभिप्राप्त किए जाने योग्य नहीं हैं ।
>
> (ग) ऐसी जानकारी प्रदान करना जो किसी व्यापार, कारबार, औद्योगिक वाणिज्यिक या वृत्तिक गुप्त या व्यापार प्रक्रिया या जानकारी को प्रकट करता हो जिसका प्रकटन लोक नीति (लोक व्यवस्था) के प्रतिकूल हो ।"

58. जर्मनी के साथ सुसंगत करार का उक्त उपबंध यह उपदर्शित करता है कि भारत संघ के प्राख्यानों के प्रतिकूल गोपनीयता का कोई

आत्यंतिक वर्जन नहीं है । इसके बजाय करार विनिर्दिष्ट यह उपबंध करता है कि जानकारी को लोक न्यायालयों कार्यवाहियों में प्रकट किया जा सकता है जो वर्तमान कार्यवाही जैसी हों । इस न्यायालय के समक्ष इस मामले में कार्यवाहियां विदेशी बैंक खातों में जमा बेहिसाब धन की बाबत कर संग्रहण के मुद्दे और ऐसी रीति से संबंधित मुद्दे जिसमें ऐसे धन सृजित किए गए जिसमें ऐसी गतिविधियां भी सम्मिलित हैं जो आपराधिक प्रकृति की भी हैं, दोनों से संबंधित हैं । राज्यों का शिष्टाचार गोपनीयता के खंडों पर उद्धारित नहीं किया जा सकता जो इन मामलों या आपराधिक कार्यवाहियों जैसे सांविधानिक कार्यवाहियों में अड़चन डाल सकेगा ।

59. भारत संघ का यह दावा है कि दोहरे कराधान करार के अनुच्छेद 26(1) के अंतिम वाक्य में "लोक न्यायालय कार्यवाहियां" पद केवल कर मामलों से संबंधित कार्यवाहियों के संबंध में ही हैं । भारत संघ का यह दावा है कि ऐसी समझ-बूझ को कैसे अन्तरराष्ट्रीय रूप से समझा जाए । इस संबंध में भारत संघ ने कुछ संधियों को उद्धृत किया है । तथापि, भारत संघ ने ऐसा कोई साक्ष्य नहीं दिया है कि जर्मनी ने विनिर्दिष्ट रूप से इस न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों के संदर्भ में भी लाइसेंसटियन में खातों की बाबत ब्यौरे प्रकट न करने का अनुरोध किया था ।

60. वियना कन्वेंशन आफ दी ला आफ इंटरप्रिटेड, 1969 का अनुच्छेद 31 "निर्वचन का सामान्य नियम" यह उपबंध करता है कि "संधि का निर्वचन उसके संदर्भ में और उसके उद्देश्य और प्रयोजनों के आलोक में संधि के पदों में दिए गए उनके सामान्य अर्थ के अनुसार सद्भाव में किया जाएगा ।" जबकि भारत वियना कन्वेंशन का पक्षकार नहीं है फिर भी यह रूढ़िगत अन्तरराष्ट्रीय विधि के कई सिद्धांतों को अपनाता है और वियना कन्वेंशन के अनुच्छेद 31 के निर्वचन के सिद्धांत में व्यापक मार्गदर्शन दिया गया है कि भारतीय संदर्भ में भी संधि के निर्वचन करने का क्या समुचित तरीका हो सकेगा ।

61. इस न्यायालय ने **भारत संघ** बनाम **आजादी बचाओ आन्दोलन**[1] वाले मामले में सहमत होते हुए फ्रेंस बेनियन की मताभिव्यक्तियों का उल्लेख किया कि संधि अधिष्ठायी विधान के बजाय वस्तुत: एक अप्रत्यक्ष अधिनियमिति है और यह कि संधियों का प्रारूपण बेढंगा है जिसके द्वारा असुविधा होती है । इस संबंध में इस न्यायालय ने आगे मुख्य न्यायमूर्ति

---

[1] (2004) 10 एस. सी. सी. 1.

लार्ड विडगेरी की अभियुक्ति का उल्लेख किया कि शब्दों का अर्थ अधिवक्ता और सामान्य व्यक्ति के लिए एक जैसे उनके सामान्य आशय के अनुसार निकाला जाना चाहिए ..... अधिवक्ता के बजाय राजनयिक का अर्थ । संधियों और उनके उपबंधों की बाबत निर्वचन का व्यापक सिद्धांत उनमें दिए गए शब्दों के सामान्य अर्थ के अनुसार निकाला जाएगा जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो । तथापि, यह तथ्य कि ऐसी संधियों का प्रारूपण राजनयिकों द्वारा किया जाता है न कि अधिवक्ताओं द्वारा । इससे प्रारूपण में बेढंगापन होता है तथा इससे यह भी विवक्षित होता है कि किसी शब्द, पद या वाक्य को निरर्थक ठहराने के लिए विशेषकर जहां ऐसे शब्द, पद या वाक्य को निरर्थक ठहराने से विशेषकर सांविधानिक परिप्रेक्ष्य में बेढंगापन स्थिति पैदा होती है, सावधानी बरतनी चाहिए । सरकार भारत को ऐसी रीति में आबद्ध नहीं कर सकती जो सांविधानिक उपबंधों, मूल्यों और आदेशों को निराकृत करती है ।

62. जर्मनी के साथ दोहरे कराधान करार के अनुच्छेद 26(1) का अंतिम वाक्य "लोक न्यायालय कार्यवाहियों या न्यायिक विनिश्चयों में इस जानकारी का प्रकटन कर सकेंगे" इसे स्पष्ट करता है । यह उक्त अनुच्छेद के पूर्ववर्ती भाग का एक अपवाद और अतिरिक्त पहलू या उपबंध पहलू के रूप में स्पष्ट दिखाई देता है । यह इस विनिर्देश के पश्चात् स्थित है कि संविदा करने वाले पक्षकारों के बीच हुई जानकारी इस करार के अन्तर्गत आने वाले करों के संबंध में निर्धारण या संग्रहण में या इसकी बाबत प्रवर्तन या अभियोजन या अपीलों के अवधारण में अंतर्वलित व्यक्तियों या प्राधिकारियों (जिसके अन्तर्गत न्यायालय और प्रशासनिक निकाय है) को ही प्रकट की जा सकेगी । परिणामत: यह समझा जाना चाहिए कि जर्मनी के साथ दोहरे कराधान करार के अनुच्छेद 26(1) के अंतिम वाक्य में विनिर्दिष्ट "लोक न्यायालय कार्यवाही" पद कर मामलों की बाबत कर निर्धारण, प्रवर्तन अभियोजन आदि के संबंध से भिन्न न्यायालय कार्यवाहियों को निर्दिष्ट करता है । यदि यह इसके विपरीत था जैसा भारत संघ द्वारा तर्क किया गया है तो दोहरे कराधान करार के अनुच्छेद 26(1) के अंतिम वाक्य में कतई इस प्रकार उल्लेख किए जाने की आवश्यकता नहीं होती । अंतिम वाक्य तब निरर्थक हो जाएगा यदि भारत संघ द्वारा दिए गए निर्वचन को स्वीकार किया जाए । इस प्रकार कर मामलों में कार्यवाहियों को निर्दिष्ट करने के रूप में ही अंतिम वाक्य का निर्वचन करने के अभिकथित कन्वेंशन के होते हुए भी, कामन ला न्यायशास्त्र की लालिमा और इसके सिद्धांतों की निष्ठा अटल रूप से निष्कर्ष की ओर प्रेरित करती है कि इस विनिर्दिष्ट

संधि की भाषा और इन परिस्थितियों के अधीन भारत संघ द्वारा ईप्सित रीति में निर्वचन नहीं किया जा सकता ।

63. जब हम इस बात पर सहमत हैं कि फ्रैंक वेनियन के चरित्र-चित्रण के उपयोग के लिए भाषा दृढ़ होनी चाहिए और तब इसे बेढंगा भी कहा जा सकता है किंतु ऐसी संधियों की बातचीत विभिन्न अधिकारिताओं में प्रयुक्त निर्वचन के सामान्य सिद्धांतों की जानकारी के साथ सरकार के बहुत उच्च स्तरों पर संचालित की जाती है । कम से कम कामन ला, अधिकारिताओं में मुख्यत: यह ज्ञात है कि विधिक लिखतों और कानूनों का निर्वचन ऐसी रीति में किया जाता है जिसके द्वारा पदों और अभिव्यक्तियों की बहुलता से बचा जा सके । जर्मनी को इस बात की अच्छी तरह जानकारी होगी ।

64. यदि भारत संघ की स्थिति को स्वीकार किया जाए तो ऐसी बहुलता जो जर्मनी के साथ दोहरे कराधान करार के अनुच्छेद 26(1) के उक्त अंतिम वाक्य से माना जा रहा है, भारतीय संविधान के संदर्भ में प्रकट बेतुकापन प्रदर्शित करता है । ऐसी बहुलता का यह अभिप्राय होगा कि स्वयं संवैधानिक आदेशों को अपास्त किया जाए । विशेषकर आधारभूत अवसंरचना के सिद्धांतों के निबंधनानुसार आधुनिक संविधानवाद जिसका जर्मनी मुख्य अभिदाता है यह विनिर्देश करता है कि राज्य के किसी अंग में निहित शक्तियों का प्रयोग संविधान की चारदीवारी के भीतर किया जाना चाहिए और इसके अतिरिक्त यह कि संविधान द्वारा सृजित अंग स्वयं संविधान की पहचान को परिवर्तित नहीं कर सकते ।

65. संविधान के मूलभूत ढांचे का संशोधन विधायिका की संशोधन करने वाली शक्ति द्वारा भी नहीं किया जा सकता । हमारा संविधान अनुच्छेद 32 के खंड (1) के अनुसरण में इस आधार पर इस न्यायालय के समक्ष अर्जी देने के अधिकार की गारंटी देता है कि संविधान के भाग III के अधीन गारंटीकृत अधिकारों का अतिक्रमण हुआ है । यह उपबंध संविधान के आधारभूत ढांचे का भाग है । अनुच्छेद 32 का खंड (2) इस न्यायालय को भाग 3 द्वारा प्रदत्त किन्हीं आधारों के प्रवर्तन के लिए निदेश या आदेश या रिट जिसके अन्तर्गत बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, अधिकारपृच्छा और उत्प्रेषण रिट हैं जो भी समुचित हो निकालने की शक्ति होगी । यह संविधान के आधारभूत ढांचे का एक भाग भी है ।

66. इसलिए कि अनुच्छेद 32(1) के खंड द्वारा गारंटीकृत अधिकार सार्थक होगा और विशेषकर क्योंकि ऐसी याचिकाएं मूल अधिकारों के

संरक्षण की मांग करती हैं यह आवश्यक है कि ऐसी कार्यवाहियों में याचियों को मामले की उचित सुस्पष्टता के लिए उनके लिए आवश्यक जानकारी से वंचित नहीं किया जाता है और उसकी सुनवाई की जाए विशेषकर जहां ऐसी जानकारी राज्य के कब्जे में है । किसी संवैधानिक सिद्धांत या संवैधानिक प्रतिषेध के उपवर्णित आधारों का उल्लेख किए बिना ऐसी जानकारी की पहुंच से इनकार करना अनुच्छेद 32 के खंड (1) द्वारा प्रदत्त अधिकार को विफल कर देगा ।

67. इसके अतिरिक्त चूंकि कामन ला इतिहास और परंपरा द्वारा न्यायिक कार्यवाहियां सारत: यद्यपि पूरी तरह से आवश्यक नहीं विरोधी होती हैं किन्तु दोनों पक्षकार यथासंभव पूरी तरह से न्यायालय के समक्ष सभी सुसंगत जानकारी, विश्लेषण और तथ्य रखने के उत्तरदायित्व का वहन करते हैं । अधिकांश स्थितियों में राज्य के पास अधिक व्यापक जानकारी होती है । प्रस्तुत मामले जैसे ऐसी कार्यवाहियों में सुसंगत है । राज्य के कुछ अभिकर्ता यह समझते हैं कि ये कार्यवाहियां विरोधी प्रकृति की हैं अतः सभी आवश्यक जानकारी प्रस्तुत करने का कर्तव्य और भार याचियों पर है अतः राज्य ऐसी जानकारी पूरी तरह से देने के बाध्यताधीन नहीं है । राज्य के कुछ अभिकर्ता कार्यवाहियों के तत्काल संदर्भ में सरकार की अनुकूल घटनाओं और तथ्यों को गढ़ने की भी ईप्सा कर सकते हैं । यद्यपि ऐसी कार्यवाही मूल अधिकारों के संरक्षण के कार्य में पूरा न्याय देने में उद्धत नहीं होगी । उस हद तक याची और यह न्यायालय दोनों अनुच्छेद 32 के खंड (1) के अधीन कार्यवाहियों में बाधित हो जाएगा ।

68. मामले के लिए यह उल्लेख करना आवश्यक है कि न्यायिक कार्यवाहियों के दावे में सुसंगत साक्ष्य द्वारा प्राख्यान करने और साबित करने का भार साधारणतः ऐसा दावा करने के प्रस्ताव पर होता है ; तथापि, मूल अधिकारों के संरक्षण का भार प्राथमिकत: राज्य का कर्तव्य है । परिणामत: जब तक संवैधानिक आधार विद्यमान न हो राज्य ऐसी रीति में कार्य नहीं कर सकता जो इस न्यायालय को ऐसी कार्यवाहियों में सम्पूर्ण न्याय देने में अड़चन डालते हों । याचियों से जानकारी विधारित करना या कार्यवाहियों के संदर्भ में राज्य के अनुकूल सुसंगत घटनाओं और तथ्यों को बनाने की मांग करना यद्यपि अंततः मूल अधिकारों के संरक्षण करने के आवश्यक कार्य के लिए घातक है फिर भी अनुच्छेद 32(1) के खंड (1) में गारंटी के लिए विध्वंसक होगा और सारतः अनुच्छेद 32 के खंड (2) में अन्तर्विष्ट इस न्यायालय की शक्तियों का प्रयोग करने की क्षमता को दुर्बल कर देता है

जो भाग III में अनुष्ठापित मूल अधिकारों को कायम रखने तथा संविधान के उपबंधों और संविधानवाद के व्यापक न्यायशास्त्र के लिए अनुमार्गणीय है । मूल अधिकारों को कायम रखने के कार्य में राज्य विरोधी नहीं हो सकता । साधारणत: राज्य न्यायालय को अपने कब्जे के सभी तथ्यों और जानकारी को प्रकट करने तथा यह याचियों को प्रदान करने के कर्तव्याधीन है । ऐसा इसलिए है क्योंकि याची ऐसे तथ्यों और विधि को प्रकाश में लाने में समर्थ होगा जो न्यायालय के अपने विनिश्चय के लिए सुसंगत हो सकते हैं । अनुच्छेद 32 के अधीन इन ऐसी कार्यवाहियों में याची और राज्य दोनों आवश्यकत: न्यायालय के आंख और कान होते हैं । याची को अंधा बना देना सारत: अनुच्छेद 32 की कार्यवाहियों में न्यायिक विनिश्चय करने की प्रक्रिया की निष्ठा की गरिमा से विशेषकर जहां मुद्दा मूल अधिकारों को कायम करने का है, अपकर्षित करेगा ।

69. इसके अतिरिक्त हम यह विधारित करते हैं कि अनुच्छेद 32 के खंड (1) और अनुच्छेद 19 के खंड (क) के उपखंड (I) के बीच विशेष संबंध है जो नागरिकों को वाक और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान करता है । ऐसी स्वतंत्रता का मूल आधार और नियामक वांछनीयता सम्पूर्ण मानवता के ऐतिहासिक अनुभवों पर निर्भर करता है ; जब तक जवाबदेह न हो राज्य निरंकुश हो जाएगा । अनुच्छेद 32 के खंड (1) के अधीन कार्यवाहियों और अनुच्छेद 32 के खंड (2) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का आह्वान जवाबदेही को सुनिश्चित करने का प्रारंभिक संवैधानिक लक्षण है । किसी संवैधानिक लोकतंत्र को बाधा और अस्तित्व सारत: ऐसी कार्यवाहियों पर निर्भर करता है ।

70. राज्य द्वारा याचियों से जानकारी विधारित करना और उसके द्वारा इस न्यायालय के समक्ष वाक और अभिव्यक्ति की उनकी स्वतंत्रता को अवरुद्ध कर जो अनुच्छेद 32 के खंड (2) में वर्णित और अपवादों पर आधारित है जैसे भारत की प्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों, लोक व्यवस्था, शिष्टाचार या सदाचार के हितों में अथवा न्यायालय अवमान, मानहानि या अपराध उद्दीपन के संबंध में या ऐसी विधि द्वारा जो ऐसे अपवादों को रेखांकन करते हैं बशर्ते कि ऐसी विधि अनुच्छेद 32 के खंड (2) में उपवर्णित आधारों या संविधान में कई अन्यत्र उपबंधित हो, के अनुकूल होगा ।

71. अब यह सुज्ञात सुमान्यता प्रतिपादना है कि हम वैश्विक घटनाओं

के नेटवर्क और सामाजिक कार्यों से उलझते जा रहे हैं । इस प्रक्रिया में पर्याप्त सावधानी का प्रयोग किए जाने की आवश्यकता है विशेषकर जहां सरकारें संविदायी दस्तावेज के कारण संधियां कर रही हैं । सरकारों के कार्य तभी विधिपूर्ण हो सकते हैं जब संवैधानिक अनुज्ञा की चारदीवारी के भीतर किया जाए । कोई संधि ऐसे नहीं की जा सकती या उसका निर्वचन इस प्रकार नहीं किया जा सकता है जो संवैधानिक निष्ठा को कम करती हो । जर्मनी के साथ दोहरे कराधान करार के अनुच्छेद 26(1) के अंतिम वाक्य की बाबत ऐसी बहुलता जिस पर भारत संघ दबाव डाल रहा है । आवश्यकतः हमारे संविधान द्वारा बिना सीमाओं को पार करता है । इस प्रकार की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती ।

72. हमने जर्मनी के साथ दोहरे कराधान करार की बाबत प्रकटन की अड़चन के रूप में प्रश्नगत दस्तावेजों का परिशीलन किया और भारत संघ के तर्कों को सुना । हम जर्मनी के साथ दोहरे कराधान करार के उपबंधों से उद्‌भूत उसके तर्कों में कोई सार नहीं पाते । तथापि, एक मुख्य संवैधानिक मुद्‌दा और चिंता अभी तक बनी हुई है । यह इस बाबत है कि क्या व्यक्तियों के नाम और उनके बैंक खातों के ब्यौरे जिसकी बाबत कोई सम्पूर्ण अन्वेषण नहीं किया गया है जो सदोषपूर्ण कार्य और आरंभ की गई कार्यवाहियों को प्रकट करता हो तथा याचियों के पास कोई अन्य विश्वसनीय जानकारी और इस समय उपलब्ध साक्ष्य नहीं है कि कोई सदोषपूर्ण कार्य किया गया है जो याचियों को प्रकट किया जाए ।

73. एकांतता का अधिकार जीवन के अधिकार का एक अभिन्न भाग है । यह संवैधानिक मूल्य है और महत्वपूर्ण है कि मानवों को ऐसी स्वतंत्रता के परिक्षेत्र की अनुज्ञा दी जाए जो सार्वजनिक संवीक्षा से मुक्त हो बशर्ते वे विधिपूर्ण ढंग से कार्य कर रहे हैं । हम इस तथ्य को समझते हैं और प्रशंसा करते हैं कि बेहिसाब धनों की बाबत स्थिति बहुत गंभीर है । फिर भी संवैधानिक न्याय निर्णायक के रूप में हमें संवैधानिक मूल्यों की पवित्रता का संरक्षण करने और ऐसे अविचारित कदम जो मूल अधिकारों को घटाते हैं चाहे सरकार या प्राइवेट नागरिकों द्वारा किए गए हों और चाहे उनका कितना भी अच्छा अभिप्राय हो, बहुत सावधानीपूर्वक संवीक्षा किए जाने की आवश्यकता पर हमेशा हमें ध्यान देना चाहिए । संवैधानिक मूल्यों के एक क्षेत्र के उत्सादन की समस्या का हल संवैधानिक मूल्यों के उत्सादन के एक अन्य क्षेत्र का सृजन करना नहीं हो सकता । अनुच्छेद 32 के खंड (1) के अधीन मूल अधिकारों के प्रभावी रूप से संरक्षण करने के नागरिकों के

अधिकार के अनुच्छेद 21 के अधीन नागरिकों और व्यक्तियों के अधिकारों के विरुद्ध संतुलित करना होगा । बेहिसाब धन जैसी क्रमिक समस्याओं का तत्कालीन समाधान निकालने के लिए आवेशपूर्ण इच्छा पर बाद वाले की बलि नहीं चढ़ाई जा सकती क्योंकि यह खतरनाक परिस्थितियां पैदा करेगा जिसमें चौकस अन्वेषण, परीक्षण और अन्य नागरिकों के समूह द्वारा भीड़ भड़काने की घटना आम बात हो सकती है । मूल अधिकारों को कायम रखने के लिए इस न्यायालय के समक्ष अर्जी देने के नागरिकों को इसलिए मंजूर किया जाता है कि नागरिक अन्य बातों के साथ-साथ संवैधानिक परियोजना के संरक्षण के लिए राज्य के कार्यकरण के बारे में हमेशा चौकस रहे । उस अधिकार को अन्य नागरिकों की जिज्ञासाओं तक विस्तारित नहीं किया जा सकता । ऐसा कौतूहलक आदेश जहां नागरिकों के एकांतता के अधिकार का अन्य नागरिकों द्वारा भंग किया जाता है वहां सामाजिक व्यवस्था के लिए विध्वंसकारी है । जीवन के अधिकार के भाग के रूप में एकांतता के अधिकार जैसे मूल अधिकारों की धारणा मात्र इस प्रकार नहीं है कि राज्य को उसे अपकीर्ति करने का व्यादेश देता हो । यह अन्य व्यक्तियों द्वारा मूल अधिकारों के प्रयोग के संदर्भ में भी समाज के अन्य लोगों की कार्यवाहियों के विरुद्ध भी उन्हें कायम रखने का राज्य का उत्तरदायित्व सम्मिलित है ।

74. एक यह तर्क किया जा सकता है । यह न्यायालय इस मामले की विशिष्ट परिस्थितियों के अधीन अपवाद बना सकता है जहां राज्य ने यह स्वीकार किया है कि उसने कतिपय व्यक्तियों के संदिग्ध बेहिसाब धन की प्रचूर मात्रा के मामले में अपेक्षित गति और ऊर्जा से कार्य नहीं किया है । मूल सिद्धांतों और अधिकारों का अपवाद बनाने का अन्तर्निहित खतरा समाप्त हो जाता है । वह अपवाद थोड़ा-थोड़ा करके स्वयं मुख्य अधिकार की अंतर्वस्तु को तब निश्तेज कर देगा । विधायिका या कार्यपालिका द्वारा मूल अधिकारों को कायम रखने के अवांछनीय व्यतिक्रम को इस न्यायालय द्वारा संवैधानिक सिद्धांतों के प्राख्यान द्वारा सुधारा जा सकता है । तथापि, इस न्यायालय द्वारा यह विनिश्चय कि कोई अपवाद बनाया जा सकता है, हमेशा स्थायी रूप से न्यायिक शक्ति का भाग रहता है और स्वयं निर्वचन का भाग हो जाता है । इसका उपयोग भविष्य में ऐसी रीति और रूप में किया जा सकता है जिसका दूरगामी प्रभाव हो सकता है जैसा यह न्यायालय चाहता है या संवैधानिक पाठ और मूल्य वहन कर सकते हैं । हम यह प्रस्तावित नहीं कर रहे हैं कि संविधानों का निर्वचन

ऐसी रीति में नहीं किया जा सकता है जो राष्ट्र राज्य को उनके द्वारा झेली जाने वाली समस्याओं से निपटने की अनुज्ञा देते हैं । सिद्धांत यह है कि अपवादों को जबरदस्ती और पहले सोचे-समझे बिना कि उससे क्या खतरा हो सकता है, वर्णित कर सकते हैं ।

75. उन सिद्धांतों जो युगों तक मानवीय अनुभवों के अपवाद बनाने का एक मुख्य खतरा जो संविधान विधि का भाग हो गया है, यह है कि तर्क और अपवाद बनाने की सहजता संवैधानिक आदेश के भाग के रूप में संचालित हो जाएगा । ऐसा तर्क समीचीनता और दावों के आधारों पर सभी मूल अधिकारों के संरक्षणात्मक आवरणों से ऐसे अपवाद बनाने की ईप्सा करेगा कि उन समस्याओं का कोई समाधान नहीं है जो समाज मूल अधिकारों के निश्तेज हुए बिना झेलना पड़ रहा है । यह कि कुछ तर्क व्यापक पैमाने पर नागरिकों के मानव अधिकारों का अतिक्रमण करते हुए अन्य मूल अधिकारों का घुमाव कर राज्य द्वारा कतिपय अपवाद की मांग करने के रूप में उपयोग किया जा सकता है ।

76. वस्तुतः यह सही है कि लाइसेंसटियन कतिपय बैंक खातों के संबंध में जर्मनी द्वारा दी गई जानकारी ऐसे व्यक्तियों के नाम हैं जो भारतीय प्रतीत होते हैं । याचियों ने यह भी दावा किया है कि सभी व्यक्तियों के नामों को मीडिया के कतिपय वर्ग द्वारा सार्वजनिक किया गया है । तथापि, कुछ खातों और उन खातों के धारक व्यक्तियों का अन्वेषण किए जाने का दावा किया गया है और अन्य लोगों का नहीं । इस प्रकार कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि क्या जिन व्यक्तियों के बारे में अन्वेषण नहीं किया गया है या केवल भागत: अन्वेषण किया गया है और कार्यवाही आरंभ नहीं की गई है, ने कोई दोषपूर्ण कार्य किया है । ऐसी कोई उपधारणा नहीं है कि लाइसेंसटियन के बैंकों के प्रत्येक खाता धारक ने विधिविरुद्ध ढंग से कार्य किया है । इन परिस्थितियों में इस न्यायालय के अनुच्छेद 32 के खंड (1) के अधीन कार्यवाहियों के संदर्भ में भी ऐसे नामों के प्रकटन को आदेश देना अनुचित होगा ।

77. व्यक्तियों के बैंक खातों के ब्यौरों के प्रकटन से उनके दोषपूर्ण कार्य के लिए अभियोजित करने के प्रथमदृष्ट्या आधारों की स्थापना के बिना उनके एकांतता के अधिकारों का अतिक्रमण हुआ । बैंक खातों के ब्यौरों का उपयोग उन लोगों द्वारा किया जा सकता है जो तंग करना चाहते हैं या व्यक्तियों को अन्यथा नुकसान पहुंचाना चाहते हैं । हम ऐसी संभाव्यताओं के प्रति अपनी आंख मूंदे नहीं रह सकते और वस्तुत: अनुभव

से यह प्रकट होता है कि अनधिकृत व्यक्तियों को बैंककारी ब्यौरों का सार्वजनिक उपचार या उपलब्धता से दुरुपयोग होता है । मात्र यह तथ्य कि किसी नागरिक के पास विशिष्ट अधिकारिता में स्थित किसी बैंक में बैंक खाता है, उसके खाते के ब्यौरों को प्रकट करने का आधार नहीं हो सकता कि राज्य ने अर्जित कर लिया है । निर्दोष नागरिक जिसके अन्तर्गत समाज या राष्ट्र की बेहतरी के लिए सक्रिय रूप से कार्य कर रहे हैं । उन लोगों के षड्यंत्र का शिकार हो सकते हैं जो समाज के सहज कार्यकरण के पहलू को नुकसान पहुंचाना चाहते हैं । क्या स्वयं राज्य नागरिकों के बैंक खातों के ब्यौरों तक पहुंच सकता है, एक पृथक् मामला है । तथापि, राज्य नागरिकों को सार्वजनिक रूप से अपने बैंक खातों के ब्यौरे प्रकट करने के लिए मजबूर नहीं कर सकता या स्वयं प्रकट नहीं कर सकता । राज्य से फायदा प्राप्त करने या अन्वेषण को सुकर बनाने और ऐसे व्यक्तियों को अभियोजित करने के लिए स्वयं राज्य संवैधानिक अनुज्ञेयता की चारदीवारी के भीतर उचित रूप से अन्वेषण न किया हो, व्यक्तियों को सदोष कार्य के लिए अभियोजित करने के प्रथमदृष्ट्या आधारों को स्थापित करने में समर्थ रहा है । राज्य तात्विक साक्ष्य के आधार पर सदोष कार्य को प्रथमदृष्ट्या निष्कर्ष पर पहुंचने में समर्थ होने के पश्चात् ही उसे अन्य लोगों को जानकारी प्रदान करने का अधिकार होगा, यह बात पटल पर आती है । नागरिकों अन्य व्यक्तियों और अस्तित्वों द्वारा इस बात की विश्वसनीय जानकारी होने की दशा में सदोष कार्य बैंक खातों से जुड़ा हो सकता है, यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि उन्हें राज्य को सूचित करने का अधिकार है और वस्तुत: नैतिक कर्तव्य है और परिणामत: राज्य संवैधानिक अनुज्ञेयता की सीमाओं के भीतर इसका अन्वेषण करने के लिए आबद्धकर है । यदि राज्य ऐसा करने में असफल रहता है तो समुचित न्यायालय हमेशा हस्तक्षेप कर सकते हैं ।

78. हमारे समक्ष मामलों में मुख्य समस्या राज्य की निष्क्रियता है । यह इस प्रकार हसन अली खान और टपुरिया के विनिर्दिष्ट दृष्टांतों की बाबत और समानान्तर अर्थव्यवस्था, काले धन का सृजन आदि से संबंधित मुद्दों की बाबत भी है । असफलता संवैधानिक मूल्यों या राज्य को उपलब्ध शक्तियों की ही नहीं है ; असफलता मानव अभिकरण की भी है । प्रतिक्रिया चौकन्नापन का संवर्धन और तद्द्वारा और अन्य संवैधानिक मूल्यों का अतिक्रमण नहीं हो सकता । प्रतिक्रिया राज्य की असफलताओं के कारण अंतर्वस्तु के निश्तेज होने से मूल अधिकारों का संरक्षण करने के लिए अनुच्छेद 32 के खंड (1) के अधीन व्यक्तियों की एकांतता के

अधिकार का संरक्षण करने के रूप में और इस न्यायालय में व्यक्तियों के अर्जी देने के अधिकार के संरक्षण दोनों के उन मूल्यों को अधिक प्रभावी प्राख्यान निश्चय ही होना चाहिए । संतुलन से केवल एक निष्कर्ष निकलता है ; अन्वेषण के तंत्र को मजबूत बनाने और व्यापक नागरिकों द्वारा यह सुनिश्चित करने की चौकसी राज्य के अभिकर्ता ऐसे तंत्र को कमजोर न करे ।

79. उपरोक्त के आलोक में हम यह आदेश देते हैं :–

"(i) भारत संघ तत्काल सभी उन दस्तावेजों और यात्रियों को प्रकट करेगा जो उन लोगों ने उपरोक्त विमर्शित मामलों के संबंध में (ii) विनिर्दिष्ट शर्तों के अधीन जर्मनी से प्राप्त किया है ;

(ii) भारत संघ को उन व्यक्तियों के नामों को प्रकट करने से छूट दी जाती है जिनका खाता लीचटेंसटीन के बैंकों में है और जर्मनी द्वारा उसे प्रकट किए गए हैं जिनकी बाबत अन्वेषण/पूछताछ अभी प्रगति पर है और सदोष कार्य करने की कोई जानकारी यह साक्ष्य अभी तक उपलब्ध नहीं है ;

(iii) जर्मनी द्वारा प्रकट किए गए लीचटेंसटीन के बैंक खातों में उन व्यक्तियों के नाम जिनकी बाबत अन्वेषण भागत: या पूर्णत: समाप्त हो गया है और कारण बताओ नोटिसें जारी की गई हैं तथा कार्यवाहियां आरंभ की गई हैं, को प्रकट किया जाए ; और

(iv) इस न्यायालय द्वारा आज के आदेशों के अनुसरण में गठित विशेष अन्वेषण टीम ऐसे व्यक्तियों के अन्वेषण का मामला ग्रहण कर लेगा जिनके नामों को लीचटेंसटीन के बैंकों के खातों के होने के बारे में जर्मनी द्वारा प्रकट किया गया है और यथाशीघ्र अन्वेषण का कार्य संचालित करेगा । विशेष अन्वेषण टीम यह निर्धारण करने के लिए इस बाबत भी समाप्त किए गए मामलों का पुनर्विलोकन करेगा कि क्या अन्वेषण पूरी तरह से और उचित ढंग से संचालित किया गया है या नहीं और इस निष्कर्ष पर पहुंचने पर कि और अतिरिक्त अन्वेषण किए जाने की आवश्यकता है, मामले में आगे कार्यवाही आरंभ करेगी । विशेष अन्वेषण टीम द्वारा ऐसे अन्वेषणों के निष्कर्ष के पश्चात् प्रत्यर्थी उन लोगों के नामों को प्रकट कर सकेंगे जिन्हें कारण बताओ नोटिस जारी की गई है और कार्यवाहियां आरंभ की गई हैं ।"

80. इस न्यायालय द्वारा आज जारी सभी आदेशों की बाबत प्रत्यर्थियों द्वारा अनुपालन रिपोर्ट फाइल किया जाएगा । निदेश के लिए मामले को स्वतंत्रता दिवस 15 अगस्त, 2011 के अगले सप्ताह में सूचीबद्ध करें ।

तदनुसार आदेश दिया गया ।

पा.

[2012] 2 उम. नि. प. 158

सचिव, ए. पी. डी. जैन पाठशाला और अन्य

बनाम

शिवाजी भागवत मोरे और अन्य

4 जुलाई, 2011

न्यायमूर्ति आर. वी. रवीन्द्रन और न्यायमूर्ति ए. के. पटनायक

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 162, 226, 233, 234, 247, 323क और 323ख [सपठित महाराष्ट्र एम्पलाइज़ ऑफ प्राइवेट स्कूल्स (कंडीशन्स ऑफ सर्विस) रेग्यूलेशन ऐक्ट, 1977 की धारा 9 तथा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 9] – सिविल न्यायालय की अधिकारिता – महाराष्ट्र राज्य में शिक्षण सेवक स्कीम, 2000 – शिक्षण सेवकों की शिकायतों पर विचार करने के लिए, शिकायत निवारण समिति – चूंकि शिकायत निवारण समिति न तो न्यायिककल्प पीठ हो सकती है और न ही उसके विनिश्चय शिक्षण सेवकों से संबंधित विवादों के पक्षकारों के लिए अंतिम और आबद्धकर हो सकते हैं और शिकायत निवारण समिति राज्य सरकार को अग्रिम कार्रवाई करने के लिए केवल सिफारिश कर सकती है इसलिए उच्च न्यायालय का यह निदेश त्रुटिपूर्ण है कि शिकायत निवारण समिति द्वारा किसी सेवा-समाप्ति को दूषित ठहराए जाने पर वह शिक्षण सेवक संबंधित प्रबंधतंत्र की सेवा में बना हुआ समझा जाएगा ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 162, 226, 233, 234, 247, 323क और 323ख [सपठित महाराष्ट्र एम्पलाइज़ ऑफ प्राइवेट स्कूल्स (कंडीशन्स ऑफ सर्विस) रेग्यूलेशन ऐक्ट, 1977 की धारा 9 तथा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 9] – महाराष्ट्र में शिक्षण सेवक स्कीम, 2000 के लिए शिकायत निवारण समिति का गठन – उच्च न्यायालय द्वारा यह

निदेश देना कि शिकायत निवारण समिति में सेवानिवृत्त जिला न्यायाधीश को अध्यक्ष बनाया जाए और शिक्षण सेवकों की शिकायतों के लिए यही एकमात्र न्यायनिर्णयन प्राधिकारी होगा और कोई भी सिविल न्यायालय ऐसे विवादों की बाबत, जिन पर समिति द्वारा कार्यवाही की जानी अपेक्षित है, कोई वाद या आवेदन ग्रहण नहीं करेगा – न तो संविधान और न ही कोई अन्य कानून उच्च न्यायालय को विवादों का न्यायनिर्णयन करने के लिए न्यायिककल्प अधिकरणों का सृजन या गठन करने की शक्ति देता है और उच्च न्यायालय न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग करते हुए यह निदेश जारी नहीं कर सकता कि सिविल न्यायालय किसी विशिष्ट प्रकार के विवादों के संबंध में कोई वाद या आवेदन ग्रहण नहीं करेंगे ।

महाराष्ट्र सरकार ने तारीख 27 अप्रैल, 2000 के संकल्प द्वारा राज्य के मान्यताप्राप्त प्राइवेट माध्यमिक/उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों/कनिष्ठ महाविद्यालयों/बी.एड. महाविद्यालयों के लिए शिक्षण सेवक स्कीम मंजूर की । उस स्कीम में शिक्षण सेवकों की शिकायतों पर विचार करने के लिए शिक्षा विभाग के अधिकारियों से मिलकर बनी एक तीन-सदस्यीय शिकायत निवारण समिति के गठन के लिए उपबंध था । उच्च न्यायालय ने उक्त स्कीम को चुनौती देने वाली रिट याचिकाओं में तारीख 16 अगस्त, 2000 के अपने आदेश द्वारा राज्य सरकार को शिकायत निवारण समिति का पुनर्गठन करने का निदेश दिया जिसमें एक सेवानिवृत्त जिला न्यायाधीश को समिति का अध्यक्ष बनाया जाए । इसके अलावा, उच्च न्यायालय ने यह निदेश भी दिया कि वह समिति पक्षकारों को अपने-अपने उत्तर फाइल करने का अवसर प्रदान करेगी और यह कि कोई भी सिविल न्यायालय ऐसे विवादों की बाबत जिन पर समिति द्वारा विचार किया जाना अपेक्षित है, कोई वाद या आवेदन ग्रहण नहीं करेगा । इसके पश्चात् तारीख 27 जुलाई, 2001 के सरकारी संकल्प द्वारा यह उपबंध किया गया था कि शिकायतों पर ऐसा एकल सदस्यीय समिति द्वारा विचार किया जाएगा जिसमें सिविल न्यायाधीश, ज्येष्ठ खंड के रैंक का सेवानिवृत्त न्यायाधीश होगा । प्रस्तुत मामले में प्रत्यर्थी सं. 1 को अपीलार्थी सं. 1 द्वारा तारीख 1 अगस्त, 2000 से 31 जुलाई, 2003 तक शिक्षण सेवक के रूप में नियुक्त किया गया था किन्तु उसके अनुसार उसकी सेवा तारीख 11 जुलाई, 2001 को समाप्त कर दी गई थीं । चूंकि समिति ने प्रत्यर्थी द्वारा उठाए गए विवाद्यकों पर विचार नहीं किया था इसलिए उसने रिट याचिका फाइल की जिसके द्वारा शिकायत समिति को यह निदेश देने की ईप्सा की गई कि वह प्रारंभिक विवाद्यकों को विनिश्चित करे । समिति ने तारीख 28 जुलाई, 2006 के

आदेश द्वारा अपील मंजूर कर ली और प्रत्यर्थी सं. 1 की सेवा-समाप्ति को अभिखंडित कर दिया और नियोजकों को अपने किसी भी विद्यालय में उसे सेवा की निरन्तरता के साथ किन्तु पिछली मजदूरी के बिना बहाल करने का निदेश दिया । उसने शिक्षा अधिकारी को भी प्रत्यर्थी सं. 1 की नियमित अध्यापक के रूप में नियुक्ति का अनुमोदन करने का भी निदेश दिया । नियोजकों ने उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका फाइल की जो कि एकल न्यायाधीश द्वारा ग्रहण कर ली गई । चूंकि शिकायत समिति के आदेश पर रोक लगाने से इनकार कर दिया गया था इसलिए नियोजकों ने उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । प्रत्यर्थी सं. 1 ने एक अन्य रिट याचिका फाइल की जिसमें अपीलार्थी को यह निदेश देने की ईप्सा की गई कि शिकायत समिति द्वारा पारित तारीख 28 जुलाई, 2006 के आदेश को कार्यान्वित किया जाए । उच्च न्यायालय ने तारीख 31 मार्च, 2008 को सूचना जारी करते समय शिक्षा अधिकारी को यह सुनिश्चित करने का निदेश दिया कि अपीलार्थी शिकायत समिति द्वारा पारित तारीख 28 जुलाई, 2006 के आदेश का अनुपालन करें । अपीलार्थियों द्वारा तारीख 31 मार्च, 2008 के अंतरिम आदेश को बातिल करने की ईप्सा करने वाला आवेदन उच्च न्यायालय द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिनिर्धारित करते हुए खारिज कर दिया गया था कि जब शिकायत समिति इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि सेवा-समाप्ति का आदेश दूषित या अविधिमान्य है तब वह शिक्षण सेवक जिसकी सेवाएं समाप्त कर दी जाती हैं, विद्यालय की सेवा में बना रहेगा । इससे व्यथित होकर नियोजकों ने उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । इन अपीलों से उच्चतम न्यायालय के समक्ष ये प्रश्न विचारार्थ उद्भूत हुए – (i) क्या उच्च न्यायालय राज्य सरकार को किसी न्यायिककल्प पीठ का सृजन करने के लिए निदेश दे सकता है; और क्या ऐसे किसी निदेश के अनुसरण में राज्य सरकार द्वारा किसी कार्यपालक आदेश द्वारा ऐसी पीठ का सृजन करना विधिमान्य है ? (ii) क्या उच्च न्यायालय किसी न्यायिक आदेश द्वारा शिक्षण सेवकों द्वारा उठाए जाने वाले विवादों की बाबत कोई वाद या आवेदन ग्रहण करने संबंधी सिविल न्यायालयों की अधिकारिता को अपवर्जित कर सकता है ? (iii) क्या उच्च न्यायालय को यह अभिनिर्धारित करना न्यायोचित था कि जब शिकायत समिति यह अभिनिर्धारित करती है कि सेवा-समाप्ति का आदेश दूषित या अवैध है तब वह बहाली का आदेश करने की कोटि में नहीं आता है बल्कि इसके परिणामस्वरूप शिक्षण सेवक नियोजक के नियोजन में बना रहेगा ? (iv) क्या उच्च न्यायालय के तारीख 2 मई, 2008 और 5 अगस्त, 2008

के आदेशों में हस्तक्षेप करना अपेक्षित है ? उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – लोकतंत्र में किसी न्यायिक प्राधिकार का सृजन, उसकी निरन्तरता या विद्यमानता कार्यपालिका के विवेकाधिकार पर निर्भर नहीं होनी चाहिए बल्कि वह विधानमंडल द्वारा अधिनियमित समुचित विधि द्वारा शासित और विनियमित होनी चाहिए । निस्संदेह, यह भी सुस्थापित है कि जब तक राज्य सरकार संविधान या किसी अन्य विधि के उपबंधों के विरुद्ध कार्य नहीं करती तब तक अनुच्छेद 162 के अधीन उसकी कार्यपालिका शक्ति के आयाम और विस्तार को सीमित नहीं किया जा सकता है और यदि ऐसी कोई अधिनियमिति नहीं है जिसके अंतर्गत कोई विशिष्ट पहलू आता हो तो सरकार तब तक प्रशासनिक निदेश या अनुदेश जारी करके प्रशासन चला सकेगी जब तक विधानमंडल उस निमित्त कोई विधि नहीं बना देता है । अधीनस्थ न्यायालयों का गठन करने के लिए संविधान के उपबंध, अर्थात्, अनुच्छेद 233, 234 और 247 और विधानमंडल द्वारा बनाई गई विधि द्वारा अधिकरणों का गठन करने के लिए अनुच्छेद 323क और 323ख में यह स्पष्ट किया गया है कि न्यायिक अधिकरणों का सृजन संविधान द्वारा प्रदत्त प्राधिकार के अधीन विरचित कानूनों या नियमों द्वारा ही किया जाएगा । यदि कार्यपालक आदेशों द्वारा न्यायिक अधिकरणों का गठन और सृजन करने की शक्ति को मान लिया जाता है तो अधिकरणों के गठन, कृत्यों, शक्तियों, अपीलों, पुनरीक्षणों और उनके आदेशों की प्रवर्तनीयता के संबंध में समुचित उपबंधों के बिना उनका सृजन किए जाने की पूरी संभावना बनी रहती है जिसके परिणामस्वरूप अव्यवस्था और भ्रम पैदा हो सकता है । न्यायिक कृत्यों का प्रयोग करने वाले ऐसे तदर्थ प्राधिकारियों द्वारा, जो कि विवादों का न्यायनिर्णयन करने और बाध्यकारी विनिश्चय करने के लिए स्वतंत्र या सक्षम नहीं हैं, नागरिकों के अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने का वास्तविक खतरा भी बना रहता है । अतः, राज्य की कार्यपालक शक्ति का विस्तार न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करने और न्यायिक विनिश्चय करने वाले न्यायिक अधिकरणों या प्राधिकरणों का सृजन करने तक नहीं किया जा सकता है । (पैरा 15 और 16)

न तो संविधान और न ही किसी कानून द्वारा किसी उच्च न्यायालय को विवादों का न्यायनिर्णयन करने के लिए न्यायिककल्प अधिकरण सृजित या गठित करने की शक्ति प्रदान की गई है । न ही वह राज्य सरकार की कार्यपालक शाखा को विधायी कानूनों के सिवाय अन्यथा न्यायिककल्प

अधिकरण सृजित या गठित करने का निदेश दे सकता है । अतः, उच्च न्यायालय के लिए राज्य सरकार को कार्यपालक आदेशों द्वारा न्यायिक प्राधिकरणों या अधिकरणों का गठन करने का निदेश देना अनुज्ञेय नहीं है और न ही राज्य के लिए कार्यपालक आदेश या संकल्प द्वारा पक्षकारों के अधिकारों के न्यायनिर्णयन के लिए उनका सृजन अनुज्ञेय है । (पैरा 17)

सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 9 में यह उपबंध है कि न्यायालयों को संहिता के उपबंधों के अधीन रहते हुए उन वादों के सिवाय, जिनका उनके द्वारा संज्ञान अभिव्यक्त या विवक्षित रूप से वर्जित है, सिविल प्रकृति के सभी वादों के विचारण की अधिकारिता होगी । अभिव्यक्त या विवक्षित वर्जन आवश्यक रूप से स्वयं संहिता द्वारा या किसी विधानमंडल द्वारा बनाए गए किसी कानून द्वारा सृजित वर्जन के प्रति निर्देश करता है । अतः, उच्च न्यायालय न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग करते हुए ऐसा कोई निदेश जारी नहीं कर सकता है कि सिविल न्यायालय किसी विशेष प्रकार के विवादों के संबंध में (इस मामले में शिक्षण सेवकों से संबंधित विवाद) कोई वाद या आवेदन ग्रहण नहीं करेंगे और न ही शिकायत समिति जैसी किसी न्यायिककल्प पीठ में ऐसी अनन्य अधिकारिता का सृजन करेंगे कि वह उन पर कार्यवाही करने की हकदार होगी । उच्च न्यायालय किसी न्यायिक आदेश द्वारा किसी अधिनियमिति के अभिव्यक्त उपबंधों को अकृत, अतिष्ठित या निष्प्रभावी नहीं बना सकता । (पैरा 18)

अतः, सरकार के किसी कार्यपालक आदेश द्वारा लोक न्यायनिर्णयनकारी पीठ के रूप में किसी ऐसी शिकायत समिति का गठन, जिसके विनिश्चय विवाद के पक्षकारों पर बाध्यकारी हैं, अननुज्ञेय है । उच्च न्यायालय के निदेश पर या अन्यथा किसी कार्यपालक आदेश द्वारा सृजित ऐसी कोई शिकायत समिति केवल तथ्यान्वेषी निकाय या सिफारिश करने वाला निकाय हो सकता है जो कि शिकायतों की जांच कर सकता है और आवश्यक कार्रवाई करने के लिए सरकार या उसके प्राधिकारियों को समुचित सिफारिशें कर सकता है या न्यायिक अधिकरणों को विनिश्चय करने में समर्थ बनाने के लिए समुचित रिपोर्टें दे सकता है । शिकायत समिति लोक न्यायिककल्प पीठ नहीं हो सकती है और न ही उसके विनिश्चयों को अंतिम और शिक्षण सेवकों से संबंधित विवादों में के पक्षकारों पर बाध्यकारी बनाया जा सकता है । इसलिए, किसी शिक्षण सेवक द्वारा प्रस्तुत किसी परिवाद या शिकायत के संबंध में शिकायत समिति का कोई आदेश या उसकी राय राज्य सरकार (शिक्षा विभाग) को अग्रिम कार्रवाई

करने के लिए की गई केवल सिफारिशें थीं और इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं था । अतः, उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 5 अगस्त, 2008 के आदेश में दिया गया यह निदेश गलत है और अपास्त किए जाने योग्य है कि जब शिकायत समिति यह अभिनिर्धारित करती है कि सेवा-समाप्ति दूषित है तो शिक्षण सेवक के बारे में यह समझा जाता है कि वह प्रबंधतंत्र की सेवा में बना हुआ है । (पैरा 19 और 20)

तथापि, शिकायत समिति की ऐसी किसी राय का प्रभाव, कि किसी शिक्षण सेवक की सेवा-समाप्ति अवैध है, या तो कर्मचारी को सेवा में बहाल करना या ऐसी घोषणा करना नहीं समझा जा सकता कि वह शिक्षण सेवक विद्यालय का कर्मचारी बना हुआ है । भले ही किसी शिक्षण सेवक को गलत तौर पर हटाया जाता है, तो भी विभाग केवल उसे सेवा में वापस लेने का निदेश दे सकेगा और यदि वह उसका अनुपालन नहीं करता है तो अपने निदेशों की अवहेलना करने के लिए विधि में अनुज्ञेय कार्रवाई कर सकेगा । शिकायत समिति के आदेश को ऐसी सिफारिश माना जाता है जो कि शिक्षा विभाग के फायदे के लिए जारी की गई है जो कि उक्त राय के आधार पर विधि के अनुसार समुचित कार्रवाई कर सकता है । यदि शिक्षण सेवक अपनी सेवा-समाप्ति से व्यथित है तो वह विधि के अनुसार समुचित उपचार की ईप्सा करने के लिए भी स्वतंत्र है । (पैरा 21 और 23)

अवलंबित निर्णय

पैरा

[1976] [1976] 4 उम. नि. प. 520 =
[1976] 2 एस. सी. आर. 1006 :
कार्यकारिणी समिति, वैश्य डिग्री कालेज, शामली बनाम **लक्ष्मी नारायण** ; 20

[1958] ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 1050 :
एस. बी. दत्त बनाम **दिल्ली विश्वविद्यालय** । 20

निर्दिष्ट निर्णय

[2010] (2010) 11 एस. सी. सी. 1 :
भारत संघ बनाम **मद्रास बार एसोसिएशन** ; 14

[2003] (2003) 2 एस. सी. सी. 412 :
कर्नाटक राज्य बनाम **विश्वभारती हाउस बिल्डिंग को-आपरेटिव सोसाइटी** ; 13

[1992] (1992) सप्ली. 2 एस. सी. सी. 651 :
किहोतो होल्लोहन बनाम **ज़ेचिल्लहु** ; 14

[1982] (1982) 1 एस. सी. सी. 39 :
बिशम्भर दयाल चन्द्र मोहन बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ; 16

[1976] 1976 की अपील सं. 7360 जिसका विनिश्चय 12 अक्तूबर, 1978 को किया गया :
ज़ैंड बनाम **आस्ट्रिया** ; 15

[1965] [1965] 2 एस. सी. आर. 366 :
एसोसिएटेड सीमेंट कंपनीज़ लिमिटेड बनाम **पी. एन. शर्मा** ; 14

[1955] [1955] 2 एस. सी. आर. 225 :
राम ज्वाया कपूर बनाम **पंजाब राज्य** ; 16

[1955] [1955] 1 एस. सी. आर. 267 :
दुर्गा शंकर मेहता बनाम **ठाकुर रघुराज सिंह** । 14

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2011 की सिविल अपील सं. 4988 और 4989.

2007 की रिट याचिका सं. 7362 में मुम्बई उच्च न्यायालय की औरंगाबाद न्यायपीठ के तारीख 5 अगस्त, 2008 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री उदय एस. मट्टे, एन. आर. कटनेश्वरकर और सुनील कुमार वर्मा

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री दिलीप अन्नासाहेब टौर, अनिल कुमार, शंकर चिल्लार्ज और (सुश्री) आशा गोपालन नायर

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति आर. वी. रवीन्द्रन ने दिया ।

न्या. रवीन्द्रन – दोनों याचिकाओं में इजाजत दी जाती है ।

2. महाराष्ट्र सरकार ने तारीख 27 अप्रैल, 2000 के सरकारी संकल्प द्वारा राज्य में सभी मान्यताप्राप्त प्राइवेट माध्यमिक/उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों/कनिष्ठ महाविद्यालयों/बी.एड. महाविद्यालयों में शिक्षण सेवक स्कीम कार्यान्वित करने के लिए मंजूरी प्रदान की थी । उक्त स्कीम में

सारतः (i) नियत मानदेय का संदाय करके एक वर्ष की अवधि के लिए शिक्षण सेवकों की नियुक्ति करने, (ii) यदि कार्य संतोषप्रद पाया जाता है तो ऐसी नियुक्ति का प्रतिवर्ष नवीकरण करने, (iii) ऐसे शिक्षण सेवकों का सेवा के विनिर्दिष्ट वर्ष पूरा करने पर अध्यापकों के रूप में सेवा में आमेलन करने के लिए उपबंध था । इसमें चयन, नियुक्ति, पुनर्नियुक्ति या नियुक्ति के वर्ष के बीच में रद्दकरण से संबंधित शिकायतों पर विचार करने और उनका विनिश्चय करने के लिए तीन सदस्यीय शिकायत निवारण समिति (जिसमें संबंधित प्रभागीय शिक्षा उप-निदेशक, सहायक निदेशक और शिक्षा अधिकारी शामिल हैं) का गठन करने के लिए उपबंध था । उस स्कीम में निम्न प्रकार उपबंध था :–

> "शिक्षण सेवक स्कीम के अधीन प्राप्त सभी शिकायतें पूर्वोक्त तीन सदस्यीय समिति को निर्देशित की जानी हैं । यह समिति प्रति मास बैठकें आयोजित करेगी और शिकायतों पर अपना विनिश्चय करेगी और उसे संबंधित व्यक्ति को सूचित करेगी । शिकायतकर्ता को मामला प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाएगा ।" (जोर देने के लिए रेखांकित)

3. मुम्बई उच्च न्यायालय ने तारीख 16 अगस्त, 2000 के आदेश द्वारा राज्य सराकर की ओर से दी गई इस दलील को लेखबद्ध करते हुए उक्त स्कीम को चुनौती देने वाली अनेक रिट याचिकाओं का निपटारा कर दिया कि वह न्यायालय द्वारा सुझाए गए अनेक उपांतरणों को शामिल करते हुए स्कीम में संशोधन करेगी । उच्च न्यायालय ने ऐसा करते समय राज्य सरकार को यह निदेश भी दिया कि शिकायत निवारण समिति का पुनर्गठन किया जाए जिसमें एक सेवानिवृत्त जिला न्यायाधीश अध्यक्ष हो और संबंधित क्षेत्र का उप-निदेशक और शिक्षा अधिकारी (माध्यमिक) उसके सदस्य हों । उच्च न्यायालय ने इसके अलावा निम्न प्रकार निदेश किया :–

> "असंतोषप्रद कार्य या अवचार इत्यादि से संबंधित सभी शिकायतें समिति को अग्रेषित की जाएंगी जो कि संबंधित पक्षकारों को अपने-अपने उत्तर फाइल करने का अवसर देने के पश्चात् जिससे कि मौखिक सुनवाई की लंबी प्रक्रिया से बचा जा सके, अभिलेख की प्राप्ति की तारीख से 30 दिन के भीतर विनिश्चय करेगी ।
>
> नियुक्ति, सेवा-समाप्ति इत्यादि की बाबत सभी शिकायतों पर केवल ऊपर गठित समिति द्वारा न कि किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा विचार किया जाएगा । चूंकि स्कीम को अंतरिम आधार पर लागू किया

जा रहा है इसलिए हम यह निदेश देते हैं कि कोई भी सिविल न्यायालय उन विवादों की बाबत, जिन पर समिति द्वारा विचार किया जाना अपेक्षित है, कोई वाद या आवेदन ग्रहण नहीं करेगा ।" (जोर देने के लिए रेखांकित)

4. राज्य सरकार ने, तारीख 16 अगस्त, 2000 के उक्त विनिश्चय का अनुपालन करते हुए, तारीख 13 अक्तूबर, 2000 के सरकारी संकल्प द्वारा स्कीम में उपांतरण किया । उपांतरित स्कीम के खंड (17) द्वारा उच्च न्यायालय की तीन-सदस्यीय समिति के पुनर्गठन के संबंध में दिए गए निदेश को लागू किया गया और उसमें यह उपबंध किया गया है समिति मुम्बई, औरंगाबाद और नागपुर में कार्य करेगी और समिति का अधिकारिता-क्षेत्र उच्च न्यायालय की मुम्बई, औरंगाबाद और नागपुर न्यायपीठों की अधिकारिता के तद्नुरूप होगा ।

5. उच्च न्यायालय ने पश्चात्वर्ती रिट याचिकाओं में तारीख 21 जून, 2001 के आदेश द्वारा राज्य सरकार के निम्नलिखित निवेदनों को लेखबद्ध किया :–

"विद्वान् महाधिवक्ता ने यह कथन किया है कि राज्य सरकार नौ सदस्यीय शिकायत समिति नियुक्त करेगी और शिक्षण सेवकों की लंबित शिकायतें उक्त शिकायत समिति को निर्देशित की जाएंगी । इस समिति की अध्यक्षता एक सेवानिवृत्त सिविल न्यायाधीश, ज्येष्ठ खंड द्वारा की जाएगी, जिसकी नियुक्ति इस न्यायालय के रजिस्ट्रार के परामर्श से की जाएगी । विद्वान् महाधिवक्ता ने न्यायालय को यह आश्वासन दिया कि समिति की नियुक्ति की अधिसूचना आज से छह सप्ताह की अवधि के भीतर जारी कर दी जाएगी । उसने यह भी कथन किया कि शिकायत समिति के सदस्य को वही वेतन और उपलब्धियां दी जाएंगी जो कि विद्यालय अधिकरण के सदस्य को संदत्त की जातीं हैं और आवश्यक आधारभूत सुविधाएं भी प्रदान की जाएंगी । उसने यह कथन किया कि समिति संबंधित क्षेत्रों के शिक्षण सेवकों की शिकायतों पर विचार करने के लिए मुम्बई, औरंगाबाद और नागपुर में कार्यवाहियां आयोजित करेगी ।"

इसके पश्चात्, तारीख 27 जुलाई, 2001 का सरकारी संकल्प जारी किया गया था, जिसके द्वारा यह निदेश दिया गया था कि शिकायतों पर सेवानिवृत्त सिविल न्यायाधीश (उच्चतर स्तर) वाली एकल सदस्यीय समिति द्वारा सर्किट न्यायपीठ के रूप में मुम्बई, औरंगाबाद और नागपुर में विचार किया जाएगा

और शिक्षण सेवकों की शिकायतों का निपटारा किया जाएगा ।

मामले के तथ्य

6. अपीलार्थियों ने प्रथम प्रत्यर्थी को तारीख 29 जुलाई, 2000 को 1 अगस्त, 2000 से 31 जुलाई, 2003 की अवधि के लिए शिक्षण सेवक के रूप में नियुक्त किया था । प्रथम प्रत्यर्थी ने यह अभिकथन किया है कि उसकी सेवाओं का तारीख 11 जून, 2001 को मौखिक रूप से पर्यवसान कर दिया गया था । दूसरी ओर, अपीलार्थियों का अभिकथन यह है कि प्रथम प्रत्यर्थी की सेवाएं मार्च-अप्रैल, 2001 में समाप्त हो गई थीं (क्योंकि विहित अर्हताओं की कमी के कारण उसकी नियुक्ति का अनुमोदन नहीं किया गया था) और प्रथम प्रत्यर्थी ने जुलाई, 2001 में एक अन्य विद्यालय में सहायक अध्यापक के रूप में पदभार ग्रहण कर लिया । प्रथम प्रत्यर्थी ने विद्यालय अधिकरण के समक्ष अपील फाइल करके अपनी सेवा-समाप्ति को चुनौती दी । इसके पश्चात्, उसने तारीख 18 अक्तूबर, 2003 को उक्त अपील वापस ले ली और वर्ष 2004 में शिकायत समिति के समक्ष एक अपील फाइल की । अपीलार्थियों ने उस शिकायत की संधार्यता के बारे में विभिन्न प्रारंभिक आक्षेप उठाए । चूंकि शिकायत समिति ने उन पर विचार नहीं किया इसलिए अपीलार्थियों ने 2005 की रिट याचिका सं. 7597 फाइल की जिसके द्वारा शिकायत समिति को प्रारंभिक विवाद्यकों को विनिश्चित करने का निदेश देने की ईप्सा की गई । उच्च न्यायालय ने उक्त रिट याचिका ग्रहण कर ली थी किन्तु शिकायत समिति के समक्ष चल रही कार्यवाहियों को नहीं रोका । इसलिए, समिति ने मामले की सुनवाई आरंभ की और तारीख 28 जुलाई, 2006 के आदेश द्वारा अपील मंजूर कर ली । उसने तारीख 11 जून, 2001 की सेवा-समाप्ति को अभिखंडित कर दिया और अपीलार्थियों को यह निदेश दिया कि प्रथम प्रत्यर्थी को अपने किसी भी उच्च विद्यालय में पिछली मजदूरी के बिना किन्तु सेवा की निरन्तरता बनाए रखते हुए तुरंत बहाल किया जाए और इसके अलावा शिक्षा अधिकारी को यह निदेश दिया गया कि वह प्रथम प्रत्यर्थी की नियमित अध्यापक/सहायक अध्यापक के रूप में नियुक्ति का अनुमोदन करे । अपीलार्थियों ने तारीख 28 जुलाई, 2006 के आदेश को चुनौती देते हुए 2006 की रिट याचिका सं. 6196 फाइल की । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने उक्त रिट याचिका तारीख 2 मई, 2008 को ग्रहण कर ली किन्तु शिकायत समिति के आदेश पर रोक लगाने से इनकार कर दिया । तारीख 2 मई, 2008 वाले उक्त आदेश को, जिसके द्वारा अंतरिम अनुतोष से इनकार किया गया था, इन दो अपीलों में से दूसरी अपील में चुनौती दी गई है ।

7. प्रथम प्रत्यर्थी ने सितम्बर, 2007 में एक रिट याचिका (2007 की रिट याचिका सं. 7362) फाइल की जिसके द्वारा अपीलार्थियों को शिकायत समिति द्वारा पारित तारीख 28 जुलाई, 2006 के आदेश को लागू करने का निदेश देने की ईप्सा की गई थी । उक्त रिट याचिका में, उच्च न्यायालय ने तारीख 31 मार्च, 2008 को सूचना जारी करते समय शिक्षा अधिकारी को यह सुनिश्चित करने का निदेश दिया कि शिकायत समिति द्वारा पारित तारीख 28 जुलाई, 2006 के आदेश का अपीलार्थियों द्वारा तुरंत अनुपालन किया जाए जब तक कि उक्त आदेश को चुनौती न दी गई हो और रोकादेश अभिप्राप्त न किया गया हो । अपीलार्थियों ने तारीख 31 मार्च, 2008 के उक्त अंतरिम आदेश को बातिल करने की ईप्सा करते हुए एक आवेदन फाइल किया जो कि उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 5 अगस्त, 2008 को निम्न प्रकार अभिनिर्धारित करते हुए खारिज कर दिया गया :–

(i) शिकायत समिति को सेवा-समाप्ति की वैधता को विनिश्चित करने की शक्ति प्राप्त थी ।

(ii) जब शिकायत समिति इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि सेवा-समाप्ति का आदेश दूषित या अवैध है तो वह शिक्षण सेवक, जिसकी सेवाएं समाप्त की जाती हैं, विद्यालय की सेवा में बना रहेगा ।

(iii) जबकि प्रबंधतंत्र शिक्षण सेवक के संबंध में सहायता अनुदान प्राप्त करता है इसलिए अपीलार्थी शिकायत समिति द्वारा जारी निदेश का अनुपालन करने के लिए बाध्य थे ।

उक्त आदेश को इन दो अपीलों में से प्रथम अपील में चुनौती दी गई है । इस न्यायालय ने तारीख 15 सितम्बर, 2008 को सूचना जारी करते समय तारीख 31 मार्च, 2008 और 5 अगस्त, 2008 के अंतरिम रोकादेश मंजूर किए थे ।

विवाद्यक

8. राज्य सरकार द्वारा तारीख 27 अप्रैल, 2000 के सरकारी संकल्प द्वारा मूल रूप से तैयार की गई शिक्षण सेवक स्कीम के अधीन शिकायत निवारण समिति शिक्षण सेवकों की शिकायतों को सुनने और शिक्षा विभाग को अपनी सिफारिश देने के लिए मात्र एक प्रक्रिया है जिससे कि विभाग समुचित कार्रवाई कर सके । शिकायत समिति न्यायिककल्प पीठ के रूप में आशयित नहीं थी जैसा कि निम्नलिखित बातों से स्पष्ट था : (क) समिति का गठन शिक्षण सेवकों को अपनी शिकायतें प्रस्तुत करने का अवसर देकर

उनकी शिकायतों पर विचार करने के लिए किया गया था, (ख) इस स्कीम में न तो नियोजक को सूचना जारी करना, न ही दोनों पक्षकारों की सुनवाई करना और न ही कोई न्यायनिर्णयनकारी विनिश्चय करना अनुध्यात था, (ग) यह समिति एक विभागीय समिति थी जिसमें केवल संबंधित अधिकारी सदस्य थे ।

9. उच्च न्यायालय ने उक्त स्कीम में विभिन्न उपांतरणों की सिफारिश करते समय तारीख 16 अगस्त, 2000 के अपने आदेश में समिति के गठन और कार्यकरण में महत्वपूर्ण परिवर्तनों के संबंध में विनिर्दिष्ट निदेश जारी किए थे । प्रथमतः, उसने समिति के गठन में परिवर्तन करने का निदेश दिया जिसके द्वारा यह अपेक्षा की गई कि समिति की अध्यक्षता एक सेवानिवृत्त जिला न्यायाधीश द्वारा की जाए । द्वितीयतः, उसने यह निदेश दिया कि विवाद का न्यायनिर्णयन करने से पूर्व 'पक्षकारों', अर्थात्, शिकायतकर्ता (शिक्षण सेवक) और उस व्यक्ति को, जिसके विरुद्ध शिकायत की गई थी (नियोजक) अपने-अपने कथन/उत्तर फाइल करने का अवसर दिया जाना चाहिए । तृतीयतः, उसने यह निदेश दिया कि समिति एकमात्र न्यायनिर्णयनकारी प्राधिकारी होना चाहिए और उसने शिक्षण सेवकों के चयन, नियुक्ति, पुनर्नियुक्ति या नियुक्ति के रद्दकरण से संबंधित विवादों के बारे में कोई वाद या आवेदन ग्रहण करने के लिए सिविल न्यायालयों (और किसी अन्य प्राधिकारी) की अधिकारिता को अपवर्जित किया । उच्च न्यायालय द्वारा किए गए पूर्वोक्त तीन परिवर्तनों से यह समिति एक न्यायिककल्प न्यायनिर्णयनकारी अधिकरण में संपरिवर्तित हो गई जिसकी प्रकल्पना राज्य सरकार द्वारा मूल रूप से प्रशासनिक शिकायत निवारण प्रक्रिया के रूप में की गई थी । उच्च न्यायालय के एक पश्चात्वर्ती आदेश द्वारा इस बात को दोहराया गया और समिति को एक-सदस्यीय अधिकरण में संपरिवर्तित कर दिया गया जिसमें एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश (सिविल न्यायाधीश, ज्येष्ठ खंड के रेंक का) शामिल हो ।

10. अपीलार्थियों ने यह दलील दी कि राज्य सरकार को न्यायिक आज्ञा देकर ऐसे न्यायिककल्प अधिकरण का गठन करना विधि के प्राधिकार के बिना और अविधिमान्य है और परिणामस्वरूप ऐसी किसी पीठ के विनिश्चय शून्य और अप्रवर्तनीय हैं । जो दलीलें दी गई हैं, उनके आधार पर निम्नलिखित प्रश्न हमारे विचारार्थ उद्भूत होते हैं :–

(i) क्या उच्च न्यायालय राज्य सरकार को किसी न्यायिककल्प पीठ का सृजन करने के लिए निदेश दे सकता है; और क्या ऐसे

किसी निदेश के अनुसरण में राज्य सरकार द्वारा किसी कार्यपालक आदेश द्वारा ऐसी पीठ का सृजन करना विधिमान्य है ?

(ii) क्या उच्च न्यायालय किसी न्यायिक आदेश द्वारा शिक्षण सेवकों द्वारा उठाए जाने वाले विवादों की बाबत कोई वाद या आवेदन ग्रहण करने संबंधी सिविल न्यायालयों की अधिकारिता को अपवर्जित कर सकता है ?

(iii) क्या उच्च न्यायालय का यह अभिनिर्धारित करना न्यायोचित था कि जब शिकायत समिति यह अभिनिर्धारित करती है कि सेवा-समाप्ति का आदेश दूषित या अवैध है तब वह बहाली का आदेश करने की कोटि में नहीं आता है बल्कि इसके परिणामस्वरूप शिक्षण सेवक नियोजक के नियोजन में बना रहेगा ?

(iv) क्या उच्च न्यायालय के तारीख 2 मई, 2008 और 5 अगस्त, 2008 के आदेशों में हस्तक्षेप करना अपेक्षित है ?

11. महाराष्ट्र राज्य में प्राइवेट विद्यालयों के कर्मचारियों की सेवा-शर्तें महाराष्ट्र प्राइवेट विद्यालय कर्मचारी (सेवा-शर्त) विनियमन अधिनियम, [महाराष्ट्र एम्पलाइज़ ऑफ प्राइवेट स्कूल्स (कंडीशन्स ऑफ सर्विस) रेग्युलेशन ऐक्ट] 1977 (जिसे संक्षेप में 'अधिनियम' कहा गया है) द्वारा शासित होती हैं । उक्त अधिनियम प्राथमिक विद्यालयों, माध्यमिक विद्यालयों, उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों, कनिष्ठ शिक्षा महाविद्यालयों या किन्हीं अन्य संस्थाओं के, चाहे वे किसी भी नाम से जाने जाते हैं, जिनमें तकनीकी, व्यवसायिक या कला संस्थाएं भी हैं, कर्मचारियों को लागू होता है । 'कर्मचारी' पद की परिभाषा आरंभ में किसी मान्यताप्राप्त विद्यालय के अध्यापन और गैर-अध्यापन स्टाफ के किसी सदस्य के रूप में की गई थी । धारा 8 में विद्यालय अधिकरणों के गठन के लिए उपबंध किया गया था जिसमें एक ही सदस्य होता था जो कि सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड) के रेंक का एक अधिकारी होता था । धारा 9 में प्राइवेट विद्यालयों के कर्मचारियों को अधिकरण में अपील करने का अधिकार दिया गया था । अधिकरण को समुचित अनुतोष देने और प्रबंधमंडल को निदेश देने की शक्ति दी गई थी जिसमें बहाली, कम दंडादेश देना, रेंक का प्रत्यावर्तन, उपलब्धियों इत्यादि के बकाया का संदाय करने का निदेश देना भी है और शास्ति उद्गृहीत करने की भी शक्ति दी गई थी । जब वर्ष 2000 में शिक्षण सेवक स्कीम आरंभ की गई थी तब यह मान लिया गया था कि शिक्षण सेवक प्राइवेट विद्यालयों के 'कर्मचारी' नहीं थे और

इसलिए वे अनुतोष के लिए विद्यालय अधिकरणों में आवेदन करने के हकदार नहीं होंगे । इसलिए उस स्कीम में शिकायत निवारण प्रक्रिया का उपबंध किया गया था । जब स्कीम की विधिमान्यता को चुनौती दी गई थी तो उच्च न्यायालय का भी यह मत था कि अधिनियम शिक्षण सेवकों को लागू नहीं होगा क्योंकि वे अधिनियम के अधीन यथा-परिभाषित 'कर्मचारी' नहीं थे । तथापि, उच्च न्यायालय का मत यह था कि शिक्षण सेवकों को प्राइवेट विद्यालयों के नियमित कर्मचारियों के समरूप उपचारों का आश्रय मिलना चाहिए और इसलिए उसने विद्यालय अधिकरण की तरह शिकायत समितियों का पुनर्गठन करने का निदेश दिया । अधिनियम में 2007 के संशोधन अधिनियम सं. 14 द्वारा संशोधन किया गया था जिसके द्वारा 'कर्मचारी' की परिभाषा को विस्तारित किया गया था जिससे कि उसके अंतर्गत शिक्षण सेवक भी आ जाएं । जबसे अधिनियम में 2007 के अधिनियम सं. 14 द्वारा किए गए संशोधन प्रवर्तन में आए, शिक्षण सेवकों के पास अपनी शिकायतों के निवारण के लिए अधिनियम के अधीन गठित कानूनी विद्यालय अधिकरणों में समावेदन करने का उपचार प्राप्त है और शिकायत समितियां व्यर्थ हो गई हैं । अतः, इस मामले में वह स्थिति विचारार्थ रह जाती है जो अधिनियम के 2007 वाले संशोधन से पूर्व विद्यमान थी ।

प्रश्न सं. (i) के संबंध में

12. भारत के संविधान का अध्याय 6 अधीनस्थ न्यायालयों के संबंध में है । भारत के संविधान का अनुच्छेद 233 जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति से संबंधित है । अनुच्छेद 234 का संबंध न्यायिक सेवा में जिला न्यायाधीशों से भिन्न व्यक्तियों की भर्ती से है और उसमें यह उपबंध है कि किसी राज्य की न्यायिक सेवा में (जिला न्यायाधीशों से भिन्न) व्यक्तियों की नियुक्ति उस राज्य के राज्यपाल द्वारा राज्य लोक सेवा आयोग से और ऐसे राज्य के संबंध में अधिकारिता का प्रयोग करने वाले उच्च न्यायालय से परामर्श करने के पश्चात् राज्यपाल द्वारा इस निमित्त बनाए गए नियमों के अनुसार की जाएगी । अनुच्छेद 247 में यह उपबंध है कि संविधान के भाग 9 के अध्याय 1 में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, संसद् अपने द्वारा बनाई गई विधियों के या किसी विद्यमान विधि के, जो संघ सूची में प्रगणित विषय के संबंध में है, अधिक अच्छे प्रशासन के लिए अतिरिक्त न्यायालयों की स्थापना का विधि द्वारा उपबंध कर सकेगी ।

13. भारत के संविधान का भाग 14क अधिकरणों के संबंध में है । अनुच्छेद 323क में प्रशासनिक अधिकरणों के सृजन के लिए उपबंध है ।

अनुच्छेद 323ख में यह उपबंध है कि समुचित विधानमंडल, विधि द्वारा ऐसे विवादों, परिवादों या अपराधों के अधिकरणों द्वारा न्यायनिर्णयन या विचारण के लिए उपबंध कर सकेगा जो खंड (2) में विनिर्दिष्ट उन सभी या किन्हीं विषयों से संबंधित है जिनके संबंध में ऐसे विधानमंडल को विधि बनाने की शक्ति है । अनुच्छेद 323ख के खंड (2) में प्रगणित विषयों में शैक्षिक संस्थाओं के कर्मचारियों से संबंधित विवाद नहीं आते हैं । इस न्यायालय ने **कर्नाटक राज्य** बनाम **विश्वभारती हाउस बिल्डिंग को-आपरेटिव सोसाइटी**[1] वाले मामले में यह स्पष्ट कर दिया है कि अधिकरणों की स्थापना को समर्थ बनाने वाले अनुच्छेद 323क और 323ख का निर्वचन तब तक इस रूप में नहीं किया जाना है कि उनमें विधानमंडल को उक्त अनुच्छेदों के अंतर्गत न आने वाले अधिकरणों की स्थापना करने से प्रतिषिद्ध किया गया है जब तक कि सातवीं अनुसूची में की किसी समुचित प्रविष्टि के अधीन उसे विधायी सक्षमता है ।

14. न्यायालयों और अधिकरणों का गठन राज्य द्वारा उन न्यायिक कृत्यों को प्रदान करने के लिए किया जाता है जो कि पूर्णतः प्रशासनिक या कार्यपालक कृत्यों से प्रभेदनीय हैं (**दुर्गा शंकर मेहता** बनाम **ठाकुर रघुराज सिंह**[2] वाला मामला देखिए) । 'न्यायालय', न्यायालयों के उस उत्क्रम के प्रति निर्देश करता है जिसमें सांविधानिक आज्ञा के अनुसरण में न्याय करने के लिए स्थापित राज्य की अंतर्निहित न्यायिक शक्ति निहित होती है । अधिकरणों की स्थापना विशेष कानूनों के अधीन उन विशेष विधियों के अधीन उद्‌भूत होने वाले संविवादों को विनिश्चित करने के लिए की जाती है । **एसोसिएटेड सीमेंट कंपनीज़ लिमिटेड** बनाम **पी. एन. शर्मा**[3] वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्न प्रकार मत व्यक्त किया :–

> ".....न्यायिक कृत्य और न्यायिक शक्तियां किसी प्रभुतासंपन्न राज्य के आवश्यक गुण हैं और राज्य अपने न्यायिक कृत्यों और शक्तियों को नीति को विचार में रखते हुए मुख्य रूप से संविधान द्वारा स्थापित न्यायालयों को अंतरित करता है किन्तु इससे अधिकरणों को पक्षकारों के बीच विशेष मामलों और विवादों का न्यायनिर्णयन करने का कार्य सौंपकर उन्हें समुचित अध्युपायों द्वारा

---

1 (2003) 2 एस. सी. सी. 412.

2 [1955] 1 एस. सी. आर. 267.

3 [1965] 2 एस. सी. आर. 366.

अपनी न्यायिक शक्तियों और कृत्यों का एक भाग अंतरित करने संबंधी राज्य की सक्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है ।" (जोर देने के लिए रेखांकित)

किहोतो होल्लोहन बनाम **ज़ेचिल्लहु**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

"जहां कहीं कोई मुकदमेबाजी होती है - एक पक्षकार द्वारा पुष्टि और दूसरे पक्षकार द्वारा उससे इनकार - और विवाद में उसके पक्षकारों के अधिकारों और उनकी बाध्यताओं के बारे में विनिश्चय करना अनिवार्य रूप से अंतर्वलित होता है और प्राधिकारी से उसका विनिश्चय करने की अपेक्षा की जाती है वहां न्यायिक शक्ति का प्रयोग होता है । वह प्राधिकारी एक अधिकरण कहलाता है, यदि उसके पास किसी न्यायालय की सभी सुविधाएं नहीं होती है ।"

भारत संघ बनाम **मद्रास बार एसोसिएशन**[2] वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

"'न्यायालय' शब्द उन स्थानों के प्रति निर्देश करता है जहां न्याय किया जाता है या उन न्यायाधीशों के प्रति निर्देश करता है जो न्यायिक कृत्यों का प्रयोग करते हैं । न्यायालय राज्य द्वारा न्याय करने के लिए, अर्थात् अधिकारों को बनाए रखने और उन्हें कायम रखने के लिए राज्य की न्यायिक शक्ति का प्रयोग करने के लिए, अपराधों के लिए दंडित करने और विवादों का न्यायनिर्णयन करने के लिए स्थापित किए जाते हैं । दूसरी ओर, अधिकरण ऐसे विशेष अनुकल्पी संस्थागत तंत्र हैं जो प्रायः किसी कानून के अधीन ऐसे विवादों को विनिश्चित करने के लिए, जो उस विशिष्ट कानून के प्रति निर्देश से उद्भूत होते हैं, या किसी प्रशासनिक विधि से उद्भूत होने वाले संविवादों का अवधारण करने के लिए अस्तित्व में लाए जाते हैं । न्यायालय, सिविल न्यायालयों, दांडिक न्यायालयों और उच्च न्यायालयों के प्रति निर्देश करते हैं । अधिकरण या तो प्राइवेट अधिकरण (माध्यस्थम् अधिकरण) या संविधान के अधीन गठित अधिकरण [सभापति या अध्यक्ष द्वारा दसवीं अनुसूची के पैरा 6(1) के

---

[1] (1992) सप्ली. 2 एस. सी. सी. 651.

[2] (2010) 11 एस. सी. सी. 1.

अधीन कार्य करते हुए] या संविधान द्वारा प्राधिकृत अधिकरण (अनुच्छेद 323क के अधीन प्रशासनिक अधिकरण और अनुच्छेद 323ख के अधीन अन्य विषयों के लिए अधिकरण) या कानूनी अधिकरण जो किसी कानून के अधीन सृजित किए जाते हैं (मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, ऋण वसूली अधिकरण और उपभोक्ता पीठें) ।" (जोर देने के लिए रेखांकित)

15. सांविधानिक उपबंधों के अलावा, न्यायनिर्णयनकारी शक्तियों वाले अधिकरण केवल कानूनों द्वारा सृजित किए जा सकते हैं । ऐसे अधिकरणों में सामान्य रूप से साक्षियों को बुलाने, शपथ दिलाने और साक्षियों को उपस्थित होने के लिए बाध्य करने और शपथ और साक्ष्य पेश करने पर उनकी परीक्षा करने की शक्ति निहित होती है । उनकी शक्तियां उस कानून से व्युत्पन्न होती हैं जिसके द्वारा उनका सृजन किया गया था और उन्हें ऐसे कानून द्वारा अधिरोपित सीमाओं के भीतर कृत्य करना होता है । न्यायिक प्राधिकार से सहबद्ध स्वतंत्रता प्राप्त करना केवल तभी संभव होता है यदि उसका सृजन संविधान या विधानमंडल द्वारा बनाई गई किसी विधि के अनुसार किया जाता है । लोकतंत्र में किसी न्यायिक प्राधिकार का सृजन, उसकी निरन्तरता या विद्यमानता कार्यपालिका के विवेकाधिकार पर निर्भर नहीं होनी चाहिए बल्कि वह विधानमंडल द्वारा अधिनियमित समुचित विधि द्वारा शासित और विनियमित होनी चाहिए । इस संदर्भ में, **ज़ैंड** बनाम **आस्ट्रिया**[1] वाले मामले में यूरोपियन कमीशन ऑफ ह्यूमैन राइट्स की निम्नलिखित मताभिव्यक्तियों के प्रति निर्देश करना उपयोगी है : "किसी लोकतंत्रात्मक समाज में न्यायिक संगठन को कार्यपालिका के विवेकाधिकार पर निर्भर नहीं रहना चाहिए बल्कि उसे संसद् द्वारा बनाई गई विधि द्वारा विनियमित होना चाहिए ।"

16. निस्संदेह, संविधान के अनुच्छेद 162 में यह उपबंध है कि संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए, किसी राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार उन विषयों पर होगा जिन पर राज्य के विधानमंडल को विधि बनाने की शक्ति है और वह उन विषयों तक सीमित नहीं है जिन पर विधान पहले ही पारित किया जा चुका है । यह भी सुस्थापित है कि जब तक राज्य सरकार संविधान या किसी अन्य विधि के उपबंधों के विरुद्ध कार्य नहीं करती तब तक अनुच्छेद 162 के अधीन उसकी कार्यपालिका

---

[1] 1976 की अपील सं. 7360 जिसका विनिश्चय 12 अक्तूबर, 1978 को किया गया ।

शक्ति के आयाम और विस्तार को सीमित नहीं किया जा सकता है और यदि ऐसी कोई अधिनियमिति नहीं है जिसके अंतर्गत कोई विशिष्ट पहलू आता हो तो सरकार तब तक प्रशासनिक निदेश या अनुदेश जारी करके प्रशासन चला सकेगी जब तक विधानमंडल उस निमित्त कोई विधि नहीं बना देता है (**राम ज्वाया कपूर** बनाम **पंजाब राज्य**[1] और **बिशम्भर दयाल चन्द्र मोहन** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[2] वाले मामले देखिए) । किन्तु विधानमंडल की विधायी शक्तियों के समान कार्यपालिका शक्तियों का प्रयोग करने की राज्य की शक्तियां संविधान के उपबंधों के अधीन हैं । अधीनस्थ न्यायालयों का गठन करने के लिए संविधान के उपबंध, अर्थात्, अनुच्छेद 233, 234 और 247 और विधानमंडल द्वारा बनाई गई विधि द्वारा अधिकरणों का गठन करने के लिए अनुच्छेद 323क और 323ख में यह स्पष्ट किया गया है कि न्यायिक अधिकरणों का सृजन संविधान द्वारा प्रदत्त प्राधिकार के अधीन विरचित कानूनों या नियमों द्वारा ही किया जाएगा । यदि कार्यपालक आदेशों द्वारा न्यायिक अधिकरणों का गठन और सृजन करने की शक्ति को मान लिया जाता है तो अधिकरणों के गठन, कृत्यों, शक्तियों, अपीलों, पुनरीक्षणों और उनके आदेशों की प्रवर्तनीयता के संबंध में समुचित उपबंधों के बिना उनका सृजन किए जाने की पूरी संभावना बनी रहती है जिसके परिणामस्वरूप अव्यवस्था और भ्रम पैदा हो सकता है । न्यायिक कृत्यों का प्रयोग करने वाले ऐसे तदर्थ प्राधिकारियों द्वारा, जो कि विवादों का न्यायनिर्णयन करने और बाध्यकारी विनिश्चय करने के लिए स्वतंत्र या सक्षम नहीं हैं, नागरिकों के अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने का वास्तविक खतरा भी बना रहता है । अतः, राज्य की कार्यपालक शक्ति का विस्तार न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करने और न्यायिक विनिश्चय करने वाले न्यायिक अधिकरणों या प्राधिकरणों का सृजन करने तक नहीं किया जा सकता है ।

17. न तो संविधान और न ही किसी कानून द्वारा किसी उच्च न्यायालय को विवादों का न्यायनिर्णयन करने के लिए न्यायिककल्प अधिकरण सृजित या गठित करने की शक्ति प्रदान की गई है । न ही वह राज्य सरकार की कार्यपालक शाखा को विधायी कानूनों के सिवाय अन्यथा न्यायिककल्प अधिकरण सृजित या गठिन करने का निदेश दे सकता है । अतः, उच्च न्यायालय के लिए राज्य सरकार को कार्यपालक आदेशों द्वारा न्यायिक

---

[1] [1955] 2 एस. सी. आर. 225.

[2] (1982) 1 एस. सी. सी. 39.

प्राधिकरणों या अधिकरणों का गठन करने का निदेश देना अनुज्ञेय नहीं है और न ही राज्य के लिए कार्यपालक आदेश या संकल्प द्वारा पक्षकारों के अधिकारों के न्यायनिर्णयन के लिए उनका सृजन करना अनुज्ञेय है ।

प्रश्न सं. (ii) के संबंध में

18. सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 9 में यह उपबंध है कि न्यायालयों को संहिता के उपबंधों के अधीन रहते हुए उन वादों के सिवाय, जिनका उनके द्वारा संज्ञान अभिव्यक्त या विवक्षित रूप से वर्जित है, सिविल प्रकृति के सभी वादों के विचारण की अधिकारिता होगी । अभिव्यक्त या विवक्षित वर्जन आवश्यक रूप से स्वयं संहिता द्वारा या किसी विधानमंडल द्वारा बनाए गए किसी कानून द्वारा सृजित वर्जन के प्रति निर्देश करता है । अतः, उच्च न्यायालय न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति का प्रयोग करते हुए ऐसा कोई निदेश जारी नहीं कर सकता है कि सिविल न्यायालय किसी विशेष प्रकार के विवादों के संबंध में (इस मामले में शिक्षण सेवकों से संबंधित विवाद) कोई वाद या आवेदन ग्रहण नहीं करेंगे और न ही शिकायत समिति जैसी किसी न्यायिककल्प पीठ में ऐसी अनन्य अधिकारिता का सृजन करेंगे कि वह उन पर कार्यवाही करने की हकदार होगी । उच्च न्यायालय किसी न्यायिक आदेश द्वारा किसी अधिनियमिति के अभिव्यक्त उपबंधों को अकृत, अतिष्ठित या निष्प्रभावी नहीं बना सकता ।

19. अतः, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि सरकार के किसी कार्यपालक आदेश द्वारा लोक न्यायनिर्णयनकारी पीठ के रूप में किसी ऐसी शिकायत समिति का गठन, जिसके विनिश्चय विवाद के पक्षकारों पर बाध्यकारी हैं, अननुज्ञेय है । द्वितीयतः, उच्च न्यायालय न्यायिक शक्ति का प्रयोग करते हुए सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन विहित सिविल न्यायालयों की अधिकारिता में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है । उच्च न्यायालय के निदेश पर या अन्यथा किसी कार्यपालक आदेश द्वारा सृजित ऐसी कोई शिकायत समिति केवल तथ्यान्वेषी निकाय या सिफारिश करने वाला निकाय हो सकता है जो कि शिकायतों की जांच कर सकता है और आवश्यक कार्रवाई करने के लिए सरकार या उसके प्राधिकारियों को समुचित सिफारिशें कर सकता है या न्यायिक अधिकरणों को विनिश्चय करने में समर्थ बनाने के लिए समुचित रिपोर्टें दे सकता है । शिकायत समिति लोक न्यायिककल्प पीठ नहीं हो सकती है और न ही उसके विनिश्चयों को अंतिम और शिक्षण सेवकों से संबंधित विवादों में के पक्षकारों पर बाध्यकारी बनाया जा सकता है । इसलिए, यह अभिनिर्धारित करना

होगा कि किसी शिक्षण सेवक द्वारा प्रस्तुत किसी परिवाद या शिकायत के संबंध में शिकायत समिति का कोई आदेश या उसकी राय राज्य सरकार (शिक्षा विभाग) को अग्रिम कार्रवाई करने के लिए की गई केवल सिफारिशें थीं और इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं था ।

प्रश्न सं. (iii) और (iv) के संबंध में

20. यह मान लेने पर भी कि शिक्षण सेवक स्कीम के अधीन गठित समितियां न्यायिककल्प अधिकरण थीं, वे बहाल करने का निदेश नहीं दे सकती हैं और न ही सेवा-समाप्ति को दूषित घोषित करके यह निदेश दे सकती हैं कि कर्मचारी सेवा में बने हुए समझे जाएंगे । यह सुस्थापित है कि न्यायालय सेवा की बहाली का निदेश नहीं देंगे और न ही यह घोषणा करेंगे कि कार्मिक सेवा की कोई संविदा अस्तित्व में है और यह कि कर्मचारी हटाए जाने के पश्चात् भी सेवा में समझा जाता है (**एस. बी. दत्त** बनाम **दिल्ली विश्वविद्यालय**[1] वाला मामला देखिए) । उक्त नियम के तीन मान्यताप्राप्त अपवाद ये हैं : (i) जहां किसी ऐसे लोक सेवक को, जिसे संविधान के अनुच्छेद 311 का संरक्षण प्राप्त है, इस उपबंध के उल्लंघन में पदच्युत कर दिया जाता है; (ii) जहां कोई पदच्युत कर्मकार औद्योगिक विधि के अधीन औद्योगिक अधिकरणों/श्रम न्यायालयों के समक्ष बहाली की ईप्सा करता है; और (iii) जहां कोई कानूनी निकाय कानून द्वारा अधिरोपित आज्ञापक बाध्यता का भंग या अतिक्रमण करते हुए कार्य करता है (**कार्यकारिणी समिति, वैश्य डिग्री कालेज, शामली** बनाम **लक्ष्मी नारायण**[2] वाला मामला देखिए) । अतः, उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 5 अगस्त, 2008 के आदेश में दिया गया यह निदेश गलत है और अपास्त किए जाने योग्य है कि जब शिकायत समिति यह अभिनिर्धारित करती है कि सेवा-समाप्ति दूषित है तो शिक्षण सेवक के बारे में यह समझा जाता है कि वह प्रबंधतंत्र की सेवा में बना हुआ है ।

21. यदि कोई शिकायत समिति यह राय व्यक्त करती है कि किसी शिक्षण सेवक की नियुक्ति का पर्यवसान या रद्दकरण दूषित था तो राज्य सरकार ऐसी राय/सिफारिश पर विचार कर सकती है और यदि वह उसे स्वीकार करने का विनिश्चय करती है तो वह विद्यालय को शिक्षण सेवक को पुनः बहाल करने का निदेश देकर समुचित कार्रवाई कर सकती है और

---

[1] ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 1050.

[2] [1976] 4 उम. नि. प. 520 = [1976] 2 एस. सी. आर. 1006.

यदि विद्यालय उसका अनुपालन करने में असफल रहता है तो ऐसी कार्रवाई कर सकेगी जो कि अनुज्ञेय है जिसमें, अनुदान बन्द करना भी है । तथापि, शिकायत समिति की ऐसी किसी राय का प्रभाव, कि किसी शिक्षण सेवक की सेवा-समाप्ति अवैध है, या तो कर्मचारी को सेवा में बहाल करना या ऐसी घोषणा करना नहीं समझा जा सकता कि वह शिक्षण सेवक विद्यालय का कर्मचारी बना हुआ है । भले ही किसी शिक्षण सेवक को गलत तौर पर हटाया जाता है, तो भी विभाग केवल उसे सेवा में वापस लेने का निदेश दे सकेगा और यदि वह उसका अनुपालन नहीं करता है तो अपने निदेशों की अवहेलना करने के लिए विधि में अनुज्ञेय कार्रवाई कर सकेगा ।

22. अतः, समिति का तारीख 28 जुलाई, 2006 का विनिश्चय एक प्रवर्तनीय या निष्पाद्य आदेश नहीं है बल्कि वह एक ऐसी सिफारिश है जिसे शिक्षा विभाग द्वारा समुचित निदेश जारी करने के लिए आधार बनाया जा सकता है । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि राज्य सरकार के ऐसे निदेशों से व्यथित व्यक्ति ऐसे निदेशों को सिविल न्यायालय या किसी रिट कार्यवाही में चुनौती देने के हकदार होंगे ।

23. उपरोक्त कारणों से, अपीलें मंजूर की जाती हैं और तारीख 2 मई, 2008 और 5 अगस्त, 2008 के आदेश अपास्त किए जाते हैं । शिकायत समिति के आदेश को ऐसी सिफारिश माना जाता है जो कि शिक्षा विभाग के फायदे के लिए जारी की गई है जो कि उक्त राय के आधार पर विधि के अनुसार समुचित कार्रवाई कर सकता है । यदि शिक्षण सेवक अपनी सेवा-समाप्ति से व्यथित है तो वह विधि के अनुसार समुचित उपचार की ईप्सा करने के लिए भी स्वतंत्र है ।

अपीलें मंजूर की गईं ।

ग्रो.

[2012] 2 उम. नि. प. 179

गणेशी (मृतक) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से और अन्य

बनाम

अशोक और एक अन्य

4 अक्तूबर, 2011

न्यायमूर्ति मार्कण्डेय काटजू और न्यायमूर्ति (सुश्री) ज्ञान सुधा मिश्रा

संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (1882 का 4) – धारा 5 – पारिवारिक समझौता – पारिवारिक समझौता संपत्ति अंतरण नहीं होता – उच्च न्यायालय द्वितीय अपील में प्रथम अपील न्यायालय द्वारा निकाले गए तथ्य संबंधी निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता – प्रथम अपीली न्यायालय द्वारा सुसंगत साक्ष्य के आधार पर निकाले गए तथ्य संबंधी निष्कर्ष मान्य ठहराते हुए उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त किया गया ।

प्रस्तुत मामले में यह अपील 1984 की नियमित द्वितीय अपील सं. 476 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ के तारीख 29 मार्च, 2005 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय ने प्रथम अपील न्यायालय के निर्णय को अपास्त किया है और विचारण न्यायालय के निर्णय को प्रत्यावर्तित किया है । हमारी राय में, उच्च न्यायालय के निर्णय को कायम नहीं रखा जा सकता है । यह सुस्थापित है कि उच्च न्यायालय द्वितीय अपील में प्रथम अपील न्यायालय द्वारा तथ्य संबंधी निकाले गए निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है । पारिवारिक समझौता संपत्ति अंतरण नहीं है, जैसा कि प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है । प्रथम अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि परिवारों में विवाद से बचने के लिए पारिवारिक समझौता किया जाना सद्भावपूर्ण है । 1978 के सिविल वाद सं. 476 में की डिक्री मात्र पारिवारिक समझौते के अनुसरण में की गई है और इस प्रकार इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है । न्यायालय ने प्रथम अपील न्यायालय जो तथ्यों का अंतिम न्यायालय है के निर्णय का सावधानी से परिशीलन किया है और न्यायालय का यह मत है कि इस न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष सुसंगत साक्ष्य पर आधारित

हैं । इसलिए उच्च न्यायालय ने उन तथ्यों में हस्तक्षेप करके न्यायोचित नहीं किया है । (पैरा 13,14 और 15)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[1976] ए. आई. आर. 1976 एस. सी. 807 :
काले और अन्य बनाम **उप निदेशक समेकन** । 11

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2005 की सिविल अपील सं. 5514.

1984 की नियमित द्वितीय अपील सं. 476 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ के तारीख 29 मार्च, 2005 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री अजय मजितिया, आर. एस. आहुजा, राजेश कुमार, डा. कैलाश चंद

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री शिवाजी एम. जाधव

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति मार्कण्डेय काटजू ने दिया ।

न्या. काटजू – यह अपील 1984 की नियमित द्वितीय अपील सं. 476 में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ के तारीख 29 मार्च, 2005 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है ।

2. पक्षकारों के विद्वान काउंसेलों को सुना गया है और अभिलेख का परिशीलन किया गया है ।

3. प्रत्यर्थियों ने इस प्रार्थना के साथ 1980 का सिविल वाद सं. 58 फाइल किया है कि 1978 के सिविल वाद सं. 1976 अर्थात् जगबीर और अन्य बनाम गणेशी और अन्य जो तारीख 27 अक्तूबर, 1978 को वाद भूमि के संबंध में फाइल किया गया था, में पारित किए गए निर्णय और डिक्री को अकृत और शून्य घोषित किया जाए और यह उद्घोषणा की जाए कि प्रतिवादी सं. 1 की मृत्यु के पश्चात् वादी को वादभूमि को विरासत में लेने का अधिकार है और इस उद्घोषणा के अनुकल्प में कि तारीख 27 अक्तूबर, 1978 के उपर्युक्त निर्णय अर डिक्री द्वारा प्रतिवादी सं. 2 से 5 के पक्ष में प्रतिवादी सं. 1 द्वारा किया गया वादभूमि का अन्यसंक्रमण अकृत और शून्य है क्योंकि यह रूढ़ि के विरुद्ध है और यह वादी और प्रतिवादी सं. 1 की मृत्यु के पश्चात् उसके वारिसों के उत्तराधिकार के अधिकार के

विरुद्ध कार्यान्वित नहीं होगा । वादी सं. 1 और 2 वाद फाइल किए जाने के समय पर अवयस्क थे और उनकी ओर से वह वाद उनकी माता श्रीमती पदम देवी जो कि वादियों में से एक वादी थीं, द्वारा फाइल किया गया था ।

4. वादी सं. 1 और 2 का यह पक्षकथन है कि वे रामगोपाल और पदम देवी के पुत्र हैं और पदम देवी रामगोपाल की विधवा है । यह अभिकथन किया गया है कि वादी तथा अन्य प्रतिवादी प्रतिवादी सं. 1 के वंशज हैं जैसा कि वाद के पैरा में दी गई सारणी से स्पष्ट है । वादी सं. 1 और 2 अवयस्क हैं और उन्होंने अपनी माता पदम देवी के माध्यम से वर्तमान वाद फाइल किया है । यह अभिकथन किया गया है कि प्रतिवादी सं. 1 हिंदू जाट है और उसका मामला कृषि रीति-रिवाज द्वारा शासित होगा जिसके अनुसार पैतृक अचल संपत्ति विधिक आवश्यकता और प्रतिदाय के सिवाय अन्य किसी कार्य के लिए अन्यसंक्रमित नहीं की जा सकती है ।

5. यह अभिकथन किया गया है कि गणेशी (प्रतिवादी सं. 1) के तीन पुत्र अर्थात् रामगोपाल, धर्मबीर और जुगल थे । वादियों के पिता रामगोपाल की कुछ वर्षों पहले मृत्यु हो गई थी । यह भी अभिकथन किया गया है कि प्रतिवादी सं. 1 अपने पुत्रों अर्थात् धर्मबीर और युगल किशोर **उर्फ** जुगल सिंह से प्रभावित था । प्रतिवादी सं. 2 धर्मबीर का पुत्र है और प्रतिवादी सं. 3 धर्मबीर की पत्नी है । प्रतिवादी सं. 4 युगल किशोर **उर्फ** जुगल सिंह का पुत्र है और प्रतिवादी सं. 5 उसकी पत्नी है ।

6. यह अभिकथन किया गया है कि वाद फाइल करने के एक मास पूर्व प्रतिवादी को यह पता चला कि प्रतिवादी सं. 1 की मृत्यु के पश्चात् वाद भूमि में विरासत के अधिकार से वंचित करने के लिए, प्रतिवादी सं. 2 से 5 ने प्रतिवादी सं. 1 के विरुद्ध 1978 का वाद सं. 476 संयुक्त वाद के रूप में सब-जज, द्वितीय श्रेणी, पलवल के न्यायालय में इस घोषणा के लिए फाइल किया कि वे वाद भूमि के स्वामी हैं । प्रतिवादी सं. 1 उसके विरुद्ध उसकी स्वीकृति के आधार पर तारीख 27 अक्तूबर, 1978 को की गई डिक्री से व्यथित था । यह अभिकथन किया गया है कि उक्त डिक्री से वाद भूमि से संबंधित वादियों के स्वामित्व का अधिकार समाप्त नहीं होता है और यह डिक्री शून्य है और यह प्रतिवादी सं. 1 की मृत्यु के पश्चात् वादियों के उत्तराधिकार के विरुद्ध प्रयोग में नहीं लाई जा सकती । यह भी अभिकथन किया गया है कि वादी सं. 1 और 2 रामगोपाल के पुत्र हैं और भूमि पैतृक संपत्ति है । कृषि रीति-रिवाज के अनुसार, प्रत्यर्थी सं. 1 प्रतिवादी सं. 2 से 5 जो वादियों के प्रतिनिधि के रूप में अपवर्जित नहीं

किए गए थे, के पक्ष में वाद भूमि का अंतरण नहीं कर सकता । यह भी अभिकथन किया गया है कि अनुकल्पतः उक्त डिक्री अन्यसंक्रमण की कोटि में आती है और इसे प्राप्त करने की कोई विधिक आवश्यकता नहीं है । यह अभिकथन किया गया है कि प्रतिवादी सं. 6 और 7 ने प्रतिवादी सं. 1 और 5 का विरोध किया है ।

7. प्रतिवादियों ने वाद का विरोध किया है । लिखित कथन में यह अभिकथन किया गया है कि प्रतिवादी सं. 1 ने उत्तर देने वाले प्रतिवादियों के पक्ष में वादगत भूमि का अंतरण और अन्यसंक्रमण नहीं किया है । किंतु वादभूमि को लेकर प्रतिवादियों के बीच पारिवारिक समझौता कर लिया गया है । कुछ कृषि भूमि पहले से ही प्रतिवादी सं. 1 द्वारा वादी सं. 1 और 2 के पक्ष में दान की जा चुकी थी । इसका यही कारण है कि पारिवारिक विवाद से बचने के लिए पारिवारिक समझौता किया गया ।

8. यह अभिकथन किया गया है कि चूंकि प्रतिवादी सं. 1 ने वादी सं. 1 और 2 के पक्ष में अपनी कुछ भूमि दान में दी थी इसलिए परिवार में खलबली मच गई और इसीलिए प्रतिवादी सं. 1 ने परिवार के सभी सदस्यों को पारिवारिक समझौते के आधार पर संतुष्ट किया । इस बात से इनकार किया गया है कि यह भूमि पैतृक थी । इस बात से भी इनकार किया गया है कि प्रतिवादी सं. 1 अपने पुत्रों के प्रभाव में था ।

9. विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए वाद में डिक्री की है कि तारीख 27 अक्तूबर, 1978 का निर्णय और डिक्री अन्यसंक्रमण की कोटि में आते हैं जिस पर कोई विचार नहीं किया गया है और ऐसा करने की कोई विधिक आवश्यकता भी नहीं है । यह अभिनिर्धारित किया गया है कि इस डिक्री के अंतर्गत प्रतिवादी सं. 2 से 5 के नए अधिकार उद्भूत होते हैं और यह नहीं कहा जा सकता है कि ये अधिकार पारिवारिक समझौते पर आधारित हैं । अचल संपत्ति का कोई भी अन्य संक्रमण जिसका मूल्य 100/- रुपए हो, रजिस्ट्रीकृत किया जाना चाहिए और वर्तमान मामले में अन्यसंक्रमण रजिस्ट्रीकृत दस्तावेज नहीं है ।

10. विचारण न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि वाद भूमि गणेशी जो की वादी है, की पैतृक संपत्ति है । यह निष्कर्ष गणेशी की इस स्वीकृति पर आधारित है कि उसने अपने पिता प्राणसुख से यह संपत्ति विरासत में ली है । विचारण न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि प्रतिवादी सं. 1 पर अन्यसंक्रमण के मामले को लेकर रीति-रिवाज लागू

होंगे, और उन रीति-रिवाजों के अधीन सामान्यतया पैतृक अचल संपत्ति का अन्यसंक्रमण नहीं किया जाता है सिवाय विधिक आवश्यकता पड़ने या पुरुष वंशजों की सहमति से ।

11. प्रतिवादियों ने अपील फाइल की जो प्रथम अपील न्यायालय द्वारा, जिला न्यायाधीश, फरीदाबाद के तारीख 2 नवंबर, 1983 के निर्णय के अनुसार मंजूर की गई । प्रथम अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि वादी सं. 1 और 2 (प्रथम अपील में के प्रत्यर्थी) को वर्ष 1969 में गणेशी द्वारा उपहार के रूप में भूमि दी गई थी और इसी कारण परिवार में तनावपूर्ण वातावरण हो गया और पारिवारिक समझौता कराया गया । प्रथम अपील न्यायालय ने **काले और अन्य** बनाम **उप निदेशक समेकन**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया जिसमें यह अभिनिर्धारित किया कि पारिवारिक समझौता करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि पक्षकारों के पूर्ववृत्त हक का साक्ष्य होना चाहिए ।

12. प्रथम अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि यह भूमि गणेशी की पैतृक संपत्ति नहीं है क्योंकि इसका कोई सबूत नहीं है कि यह भूमि गणेशी के पिता से विरासत में ली गई है । यह अभिनिर्धारित किया गया है कि भीम कौर की मृत्यु के पश्चात् किसी भी प्रकार से कुछ भागीदारों सहित प्रश्नगत भूमि गणेशी ने अर्जित की थी ।

13. द्वितीय अपील में उच्च न्यायालय ने प्रथम अपील न्यायालय के निर्णय को अपास्त किया है और विचारण न्यायालय के निर्णय को प्रत्यावर्तित किया है । हमारी राय में, उच्च न्यायालय के निर्णय को कायम नहीं रखा जा सकता है । यह सुस्थापित है कि उच्च न्यायालय द्वितीय अपील में प्रथम अपील न्यायालय द्वारा तथ्य संबंधी निकाले गए निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है ।

14. पारिवारिक समझौता संपत्ति अंतरण नहीं है, जैसा कि प्रथम अपील न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है । प्रथम अपील न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि परिवारों में विवाद से बचने के लिए पारिवारिक समझौता किया जाना सद्भावपूर्ण है । 1978 के सिविल वाद सं. 476 में की डिक्री मात्र पारिवारिक समझौते के अनुसरण में की गई है, और इस प्रकार इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है ।

---

[1] ए. आई. आर. 1976 एस. सी. 807.

15. हमने प्रथम अपील न्यायालय जो तथ्यों का अंतिम न्यायालय है के निर्णय का सावधानी से परिशीलन किया है और हमारा यह मत है कि इस न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष सुसंगत साक्ष्य पर आधारित हैं । इसलिए उच्च न्यायालय ने उन तथ्यों में हस्तक्षेप करके न्यायोचित नहीं किया है ।

16. पूर्वगामी कारणों के आधार पर अपील मंजूर की जाती है । उच्च न्यायालय का आक्षेपित निर्णय और आदेश अपास्त किया जाता है और प्रथम अपील न्यायालय का निर्णय और आदेश प्रत्यावर्तित किया जाता है । खर्चों के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

अस.

गतांक से आगे.....

अध्याय 5

प्रकीर्ण

46. किशोर या बालक के माता-पिता या संरक्षक की हाजिरी – कोई सक्षम प्राधिकारी जिसके समक्ष किशोर या बालक इस अधिनियम के किसी उपबंध के अधीन लाया जाता है, जब भी वह ऐसा करना ठीक समझे, किशोर या बालक का वास्तविक भारसाधन या उस पर नियंत्रण रखने वाले माता-पिता या संरक्षक से अपेक्षा कर सकेगा कि वह किशोर या बालक के बारे में किसी कार्यवाही में उपस्थित हो ।

47. किशोर या बालक को हाजिरी से अभिमुक्ति प्रदान करना – यदि जांच के अनुक्रम में किसी प्रक्रम पर सक्षम प्राधिकारी का समाधान हो जाता है कि किशोर या बालक की हाजिरी जांच के प्रयोजनार्थ आवश्यक नहीं है तो सक्षम प्राधिकारी उसको हाजिरी से अभिमुक्ति प्रदान कर सकेगा और किशोर या बालक की अनुपस्थिति में जांच में अग्रसर हो सकेगा ।

48. खतरनाक रोग से पीड़ित किशोर या बालक को अनुमोदित स्थान पर सुपुर्द करना तथा उसकी भावी व्यवस्था करना – (1) जब किसी ऐसे किशोर या बालक के बारे में जो इस अधिनियम के अधीन सक्षम प्राधिकारी के समक्ष लाया गया है, यह पाया जाता है कि वह ऐसे रोग से पीड़ित है जिसके लिए लंबे समय तक चिकित्सीय उपचार की अपेक्षा होगी या उसे कोई शारीरिक या मानसिक व्याधि है जो उपचार से ठीक हो जाएगी, तब सक्षम प्राधिकारी किशोर या बालक को, ऐसे समय के लिए जिसे वह अपेक्षित उपचार के लिए आवश्यक समझता है किसी ऐसे स्थान को भेज सकेगा जो इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों के अनुसार अनुमोदित स्थान के रूप में मान्यता प्राप्त स्थान है ।

(2) जहां किशोर या बालक कुष्ठ, यौन संसर्ग जनित रोग, हेपेटाइटिस बी, टुबरक्लोसिस के स्पष्ट मामले और ऐसे अन्य रोगों से पीड़ित या विकृत चित्त पाया जाता है, वहां उसके विषय में विभिन्न विशिष्ट संदर्भात्मक सेवाओं के माध्यम से या इसके संगत विधियों के अधीन पृथक् रूप से कार्यवाही की जाएगी ।

49. आयु के विषय में उपधारणा और उसका अवधारण – (1) जहां सक्षम प्राधिकारी को यह प्रतीत होता है कि इस अधिनियम के उपबंधों में से किसी के अधीन उसके समक्ष (साक्ष्य देने के प्रयोजनार्थ से अन्यथा) लाया गया व्यक्ति किशोर या बालक है वहां सक्षम प्राधिकारी, उस व्यक्ति की आयु के बारे में सम्यक् जांच करेगा और उस प्रयोजन के लिए ऐसा

साक्ष्य लेगा (किन्तु शपथपत्र नहीं) जो आवश्यक हो और उस व्यक्ति की आयु यथाशक्य निकटतम रूप से कथित करते हुए यह निष्कर्ष अभिलिखित करेगा कि वह व्यक्ति किशोर या बालक है या नहीं ।

(2) सक्षम प्राधिकारी का कोई आदेश केवल इस कारण अविधिमान्य नहीं समझा जाएगा कि तत्पश्चात् यह साबित हुआ है कि वह व्यक्ति, जिसके बारे में उसके द्वारा आदेश किया गया है, किशोर या बालक नहीं है और इस प्रकार उसके समक्ष लाए गए व्यक्ति की आयु के रूप में सक्षम प्राधिकारी द्वारा अभिलिखित आयु इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए उस व्यक्ति की सही आयु समझी जाएगी ।

50. किशोर या बालक को अधिकारिता के बाहर भेजना – ऐसे किशोर या बालक की दशा में जिसका मामूली तौर पर निवास का स्थान उस सक्षम प्राधिकारी की, जिसके समक्ष वह लाया गया है, अधिकारिता के बाहर है वहां सक्षम प्राधिकारी, यदि सम्यक् जांच के पश्चात् उसका यह समाधान हो जाता है कि ऐसा करना समीचीन है, उस किशोर या बालक को उस नातेदार या अन्य योग्य व्यक्ति के पास जो अपने मामूली तौर पर निवास स्थान पर उसे रखने के लिए और उसकी उचित देखरेख और उस पर नियंत्रण रखने के लिए रजामंद है, वापस भेज सकेगा, यद्यपि वह निवास स्थान सक्षम प्राधिकारी की अधिकारिता के बाहर है ; और वह सक्षम प्राधिकारी, जो इस स्थान पर अधिकारिता का प्रयोग करता है जहां किशोर या बालक भेजा गया है, तत्पश्चात् उद्भूत होने वाली किसी बात के बारे में उस किशोर या बालक के संबंध में ऐसी शक्तियां रखेगा मानो मूल आदेश उसके द्वारा किया गया हो ।

51. रिपोर्टों का गोपनीय माना जाना – परिवीक्षा अधिकारी या सामाजिक कार्यकर्ता की रिपोर्ट जिस पर सक्षम प्राधिकारी द्वारा विचार किया गया है, गोपनीय मानी जाएगी :

परन्तु सक्षम प्राधिकारी यदि वह ऐसा करना ठीक समझता है तो, उसका सार, किशोर या बालक को या उसके माता-पिता या संरक्षक को संसूचित कर सकेगा और ऐसे किशोर या बालक के माता-पिता या संरक्षक को इस बात का अवसर दे सकेगा कि वह रिपोर्ट में कथित बात से सुसंगत कोई साक्ष्य पेश करे ।

52. अपीलें – (1) इस धारा के उपबंधों के अधीन रहते हुए इस अधिनियम के अधीन सक्षम प्राधिकारी द्वारा किए गए आदेश से व्यथित कोई

व्यक्ति, उस आदेश की तारीख से तीस दिन के भीतर, सेशन न्यायालय को अपील कर सकेगा :

परन्तु सेशन न्यायालय उस अपील को उक्त तीस दिन की अवधि की समाप्ति के पश्चात् तब ग्रहण कर सकेगा जब उसका यह समाधान हो जाता है कि अपीलार्थी समय के अन्दर अपील फाइल करने में पर्याप्त हेतुक से निवारित हुआ था ।

(2)(क) ऐसे किशोर के बारे में जिसके बारे में यह अभिकथित है कि उसने अपराध किया है, बोर्ड द्वारा किए गए दोषमुक्ति के किसी आदेश ; या

(ख) इस निष्कर्ष के बारे में कि वह उपेक्षित किशोर नहीं है, समिति द्वारा किए गए किसी आदेश से अपील नहीं होगी ।

(3) इस धारा के अधीन की गई किसी अपील में सेशन न्यायालय द्वारा किए गए किसी आदेश के संबंध में द्वितीय अपील नहीं होगी ।

53. पुनरीक्षण – उच्च न्यायालय या तो स्वप्रेरणा से या इस निमित्त प्राप्त किसी आवेदन पर, किसी भी समय, किसी ऐसी कार्यवाही के अभिलेख को, जिसमें किसी सक्षम प्राधिकारी या सेशन न्यायालय ने कोई आदेश पारित किया हो, आदेश की वैधता या औचित्य के संबंध में अपना समाधान करने के प्रयोजनार्थ मंगा सकेगा और उसके संबंध में ऐसा आदेश पारित कर सकेगा जो वह ठीक समझे :

परन्तु उच्च न्यायालय इस धारा के अधीन किसी व्यक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला कोई आदेश उसे सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर प्रदान किए बिना, पारित नहीं करेगा ।

54. जांच, अपील और पुनरीक्षण कार्यवाहियों में प्रक्रिया – (1) इस अधिनियम में जैसा अभिव्यक्ततः उपबंधित है उसके सिवाय, सक्षम प्राधिकारी, इस अधिनियम के उपबंधों में से किसी के अधीन जांच करते समय ऐसी प्रक्रिया का अनुसरण करेगा जो विहित की जाए और उसके अधीन रहते हुए दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में समन मामलों में विचारण के लिए अधिकथित प्रक्रिया का यावत्शक्य अनुसरण करेगा ।

(2) इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन स्पष्टतः जैसा उपबंधित है, उसके सिवाय, इस अधिनियम के अधीन अपीलों या पुनरीक्षण कार्यवाहियों में अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया, यावत्साध्य, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के उपबंधों के अनुसार होगी ।

55. आदेशों को संशोधित करने की शक्ति – (1) इस अधिनियम के

अधीन अपील और पुनरीक्षण के लिए उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना कोई सक्षम प्राधिकारी, इस निमित्त प्राप्त किसी आवेदन पर किसी आदेश को, जो उस संस्था के बारे में हो जिसमें किसी किशोर या बालक को भेजा जाना है या उस व्यक्ति के बारे में हो जिसकी देखरेख या पर्यवेक्षण में किसी किशोर या बालक को इस अधिनियम के अधीन रखा जाना है, संशोधित कर सकेगा :

परन्तु अपने किसी आदेश के संबंध में संशोधन पारित करने के लिए सुनवाई के दौरान कम से कम दो सदस्य और पक्षकार या बचावपक्ष उपस्थित होंगे ।

(2) सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित आदेशों में की लिपिकीय भूलों या उनमें किसी आकस्मिक चूक या लोप से उनमें होने वाली गलतियां किसी समय सक्षम प्राधिकारी द्वारा या तो स्वप्रेरणा से या इस निमित्त प्राप्त किसी आवेदन पर सुधारी जा सकेंगी ।

56. बालक या किशोर को उन्मोचित और अंतरित करने की सक्षम प्राधिकारी की शक्ति – सक्षम प्राधिकारी या स्थानीय प्राधिकारी, इस अधिनियम में किसी बात के होते हुए भी, किसी समय यह आदेश कर सकेगा कि देखरेख और संरक्षण के लिए जरूरतमंद बालक या विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर को, यथास्थिति, एक बालगृह या विशेषगृह से, बालक या किशोर के सर्वोत्तम हित को ध्यान में रखते हुए या तो आत्यन्तिक रूप से या ऐसी शर्तों पर जिन्हें अधिरोपित करना ठीक समझे, उन्मोचित किया जाए या किसी अन्य बालगृह या विशेषगृह को और उसके रहने के नैसर्गिक स्थान को अंतरित किया जाए :

परन्तु बालगृह में या विशेषगृह में या योग्य संस्था में या एक योग्य व्यक्ति के अधीन किशोर या बालक के ठहरने की कुल अवधि ऐसे अंतरण द्वारा नहीं बढ़ाई जाएगी ।

57. अधिनियम के अधीन बालगृहों और भारत के विभिन्न भागों में उसी प्रकृति के किशोरगृहों के मध्य अंतरण – राज्य सरकार या स्थानीय प्राधिकारी, यह निदेश दे सकेगा कि कोई बालक या किशोर, किसी बालगृह या विशेषगृह से राज्य से बाहर किसी अन्य बालगृह, विशेषगृह या ऐसी ही प्रकृति की संस्था को, यथास्थिति, स्थानीय समिति या बोर्ड की पूर्व सूचना से अंतरित किया जाए और ऐसा आदेश, उस क्षेत्र के सक्षम प्राधिकारी के लिए प्रवर्तन में माना जाएगा जहां बालक या किशोर को भेजा जाता है ।

58. विकृत चित्त के या कुष्ठ से पीड़ित या मादक द्रव्य के व्यसनी

किशोर या बालक का अंतरण – जहां सक्षम प्राधिकारी को यह प्रतीत होता है कि इस अधिनियम के अनुसरण में किसी विशेषगृह या बालगृह या आश्रयगृह या संस्था में रखा गया कोई किशोर या बालक, कुष्ठ से पीड़ित है या विकृत चित्त है या किसी स्वापक ओषधि या मनःप्रभावी पदार्थ का व्यसनी है वहां सक्षम प्राधिकारी, उसके कुष्ठाश्रम या मानसिक अस्पताल या मादक द्रव्य व्यसनी व्यक्तियों के लिए उपचार केन्द्र या सुरक्षित अभिरक्षा के अन्य स्थान को हटाए जाने का आदेश दे सकेगा कि उस अवधि से अनधिक अवधि पर्यन्त, जिसके दौरान यह सक्षम प्राधिकारी के आदेश के अधीन रखे जाने के लिए अपेक्षित हो, या ऐसी अतिरिक्त कालावधि पर्यन्त जो किशोर या बालक के समुचित उपचार के लिए चिकित्सक अधिकारी द्वारा आवश्यक प्रमाणित की जाए, रखा जाए ।

59. किशोर या बालक की निर्मुक्ति और बाहर रखे जाने पर अनुपस्थिति – (1) जब किशोर या बालक, बालगृह या विशेषगृह में रखा जाता है और यथास्थिति, परिवीक्षा अधिकारी या सामाजिक कार्यकर्ता की या सरकार या स्वैच्छिक संगठन की रिपोर्ट पर सक्षम प्राधिकारी ऐसे किशोर या बालक को उसके माता-पिता या संरक्षक के साथ या आदेश में प्राधिकृत ऐसे नामित व्यक्ति के पर्यवेक्षण के अधीन रहने के लिए अनुज्ञात करते हुए निर्मुक्ति पर विचार कर सकेगा जो किशोर या बालक को शिक्षित करने और उसके किसी उपयोगी व्यापार या आजीविका के लिए प्रशिक्षित करने या पुनर्वास के लिए उसकी देखरेख करने के लिए उसे लेने और उसका भार ग्रहण करने का इच्छुक है ।

(2) सक्षम प्राधिकारी, किसी किशोर या बालक को विशेष अवसरों पर जैसे परीक्षा, नातेदारों के विवाह, परिचितों और निकट संबंधियों की मृत्यु या माता-पिता की दुर्घटना या गंभीर बीमारी या इसी प्रकृति के किसी आपात पर पर्यवेक्षण के अधीन, यात्रा में लिए गए समय को छोड़कर अधिकतम सात दिन के लिए अवकाश पर जाने के लिए अनुपस्थिति की अनुज्ञा भी प्रदान कर सकेगा ।

(3) जहां अनुज्ञा प्रतिसंहृत या समपहृत हो जाए और किशोर या बालक संबंध गृह को जिसमें वापस जाने के लिए उसे निदेश दिया गया हो, वापस आने से इनकार कर देता है या असफल रहता है तो बोर्ड, यदि आवश्यक हो, तो उसको भारसाधन में दिलवाएगा और उसे संबद्ध गृह में वापस भिजवाएगा ।

(4) वह समय, जिसके दौरान किशोर या बालक इस धारा के अधीन

अनुदत्त अनुज्ञा के अनुसरण में संबद्ध गृह से अनुपस्थित रहता है, उस समय का हिस्सा समझा जाएगा जिसके दौरान वह विशेषगृह में रखे जाने का दायी हो :

परन्तु यदि किशोर अनुज्ञा के प्रतिसंहृत या समपहृत हो जाने पर जब विशेषगृह को वापस जाने में असफल रहता है तो वह समय जो ऐसे वापस जाने में उसकी असफलता के पश्चात् व्यतीत हो उस समय की संगणना में, जिसमें वह संस्था में रखे जाने का दायी हो, अपवर्जित किया जाएगा ।

60. माता-पिता द्वारा अभिदाय – (1) वह सक्षम प्राधिकारी, जो किशोर या बालक को बालगृह में या विशेषगृह में भेजने या योग्य व्यक्ति या योग्य संस्था की देखरेख में रखने के लिए आदेश करता है, माता-पिता या किशोर या बालक के भरण पोषण के दायी अन्य व्यक्ति को आय के अनुसार, यदि वह ऐसा करने में समर्थ है, उसके भरण पोषण के लिए विहित रीति से अभिदाय करने के लिए आदेश कर सकेगा ।

(2) सक्षम प्राधिकारी, यदि आवश्यक हो, गरीब माता-पिता या संरक्षक को, गृह के अधीक्षक या परियोजना प्रबन्धक द्वारा किशोर या माता-पिता या संरक्षक या दोनों के गृह से साधारण निवास के स्थान तक की यात्रा में किए खर्चों को, जो विहित किए जाएं, किशोर को भेजे जाने के समय संदाय करने के लिए निदेश दे सकता है ।

61. निधि – (1) राज्य सरकार या स्थानीय प्राधिकारी, इस अधिनियम के अधीन वर्णित किशोर या बालक के कल्याण और पुनर्वास के लिए, ऐसे नाम से जो वह ठीक समझे, एक निधि का सृजन कर सकेगा ।

(2) निधि में ऐसे स्वैच्छिक संदान, अभिदान या अभिदान जमा किए जाएंगे जो किसी व्यष्टि या संगठन द्वारा किए जाएं ।

(3) उपधारा (1) के अधीन सृजित निधि का प्रशासन राज्य सलाहकार बोर्ड द्वारा ऐसी रीति से और ऐसे प्रयोजनों के लिए जो विहित किए जाएं, किया जाएगा ।

62. केन्द्रीय, राज्य, जिला और नगर सलाहकार बोर्ड – (1) केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार, उस सरकार को, गृहों की स्थापना और अनुरक्षण, साधनों को जुटाने, देखरेख और संरक्षण के लिए जरूरतमंद बालक और विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर की शिक्षा, प्रशिक्षण और पुनर्वास की सुविधाओं की व्यवस्था करने और संबंधित विभिन्न शासकीय और अशासकीय अभिकरणों में समन्वयन से संबंधित विषयों पर सलाह देने के लिए, यथास्थिति, केन्द्रीय या राज्य सलाहकार बोर्ड का गठन कर सकेगी ।

(2) केन्द्रीय या राज्य सलाहकार बोर्ड, ऐसे व्यक्तियों से जिन्हें, यथास्थिति, केन्द्रीय या राज्य सरकार ठीक समझे, मिलकर बनेगा और उसमें प्रख्यात सामाजिक कार्यकर्ता, बाल कल्याण के क्षेत्र में स्वैच्छिक संगठन और निगमित सेक्टर के प्रतिनिधि, शिक्षाविद्, चिकित्सा वृत्तिकों तथा राज्य सरकार के संबद्ध विभाग के प्रतिनिधि होंगे ।

(3) इस अधिनियम की धारा 35 के अधीन गठित जिला या नगर स्तरीय निरीक्षण समिति भी जिला या नगर सलाहकार बोर्डों के रूप में कार्य करेंगी ।

63. विशेष किशोर पुलिस एकक – (1) ऐसे पुलिस अधिकरियों को जो इस अधिनियम के अधीन बहुधा या आत्यन्तिक रूप से किशोर या प्राथमिक रूप से किशोर अपराध के निवारण या किशोरों या बालकों से निपटने में लगे हुए हैं, अपने कृत्यों को अधिक प्रभावकारी रूप से करने के लिए समर्थ बनाने की दृष्टि से उन्हें विशेषतया अनुदेश और प्रशिक्षण दिया जाएगा ।

(2) प्रत्येक पुलिस थाने में कम से कम ऐसे एक अधिकारी को जो अभिरुचि और समुचित प्रशिक्षण और स्थितिज्ञान रखता हो 'किशोर या बाल कल्याण अधिकारी' के रूप में पदाभिहित किया जाएगा जो पुलिस के समन्वय से किशोर या बालक को संभालेगा ।

(3) विशेष किशोर पुलिस एकक जिसके किशोर या बालकों के संबंध में कार्यवाही करने के लिए ऊपर उल्लिखित सभी पदाभिहित पुलिस अधिकारी सदस्य होंगे, प्रत्येक जिले या नगर में किशोर और बालकों के साथ पुलिस व्यवहार समन्वित करने और उत्कृष्ट करने के लिए सृजित किए जा सकेंगे ।

64. इस अधिनियम के प्रारंभ के समय दंडादेश भोग रहा विधि का उल्लंघन करने वाला किशोर – किसी भी क्षेत्र में जहां यह अधिनियम प्रवृत्त किया जाता है, राज्य सरकार या स्थानीय निकाय यह निदेश दे सकेगा कि कोई विधि का उल्लंघन करने वाला किशोर जो इस अधिनियम के प्रारंभ पर कारावास का दंडादेश भोग रहा है, ऐसा दंडादेश भोगने की बजाय उस दंडादेश की अवशिष्ट कालावधि के लिए विशेष गृह को भेज दिया जाएगा या ऐसी संस्था में ऐसी रीति से रखा जाएगा जिसे राज्य सरकार या स्थानीय निकाय उचित समझे और इस अधिनियम के उपबंध किशोर को ऐसे लागू होंगे मानो उसे बोर्ड द्वारा, यथास्थिति, ऐसे विशेष गृह या संस्था को भेजने का आदेश दिया गया हो या इस अधिनियम की धारा 16 की उपधारा (2) के अधीन संरक्षित देखरेख में रखने का आदेश दिया हो ।

65. बंधपत्रों के बारे में प्रक्रिया – दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 33 के उपबंध, इस अधिनियम के अधीन लिए गए बंधपत्रों को यावत्शक्य लागू होंगे ।

66. शक्तियों का प्रत्यायोजन – राज्य सरकार, साधारण आदेश द्वारा, यह निदेश दे सकेगी कि, इस अधिनियम के अधीन उसके द्वारा प्रयोक्तव्य कोई शक्ति उन परिस्थितियों में और ऐसी शर्तों के अधीन, यदि कोई हो, जो आदेश में विहित की जाएं, उस सरकार या स्थानीय प्राधिकारी के अधीनस्थ किसी अधिकारी द्वारा भी प्रयोक्तव्य होंगी ।

67. सद्भावपूर्वक की गई कार्रवाई के लिए संरक्षण – इस अधिनियम के या उसके अधीन बनाए गए किन्हीं नियमों या किए गए आदेश के अनुसरण में सद्भावपूर्वक की गई या की जाने के लिए आशयित किसी बात के बारे में कोई वाद या विधिक कार्यवाही राज्य सरकार या गृह चलाने वाले किसी स्वैच्छिक संगठन या इस अधिनियम के अनुसरण में नियुक्त किसी अधिकारी या कर्मचारिवृन्द के विरुद्ध नहीं की जाएगी ।

68. नियम बनाने की शक्ति – (1) राज्य सरकार, इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियम बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी विषयों या किन्हीं विषयों के लिए, उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(i) बोर्ड के सदस्यों की पदावधि और वह रीति जिसमें ऐसा सदस्य धारा 4 की उपधारा (4) के अधीन पद त्याग सकेगा ;

(ii) बोर्ड के अधिवेशनों का समय और धारा 5 की उपधारा (1) के अधीन इसके अधिवेशन में कारबार के संव्यवहार की बाबत प्रक्रिया के नियम ;

(iii) संप्रेक्षणगृहों का प्रबंध, जिसके अंतर्गत उनके द्वारा दी जाने वाली सेवाओं के मानक और विभिन्न किस्में भी आती हैं तथा वे परिस्थितियां जिनमें और वह रीति जिसमें संप्रेक्षणगृह का प्रमाणपत्र अनुदत्त किया जा सकेगा या वापस लिया जा सकेगा और ऐसे अन्य विषय जो धारा 8 में निर्दिष्ट हैं ;

(iv) विशेषगृहों का प्रबंध, जिसके अंतर्गत उनके द्वारा दी जाने

वाली सेवाओं के मानक और विभिन्न किस्में भी आती हैं तथा वे परिस्थितियां जिनमें और वह रीति जिसमें विशेषगृह का प्रमाणपत्र अनुदत्त किया जा सकेगा या वापस लिया जा सकेगा और ऐसे अन्य विषय जो धारा 9 में निर्दिष्ट हैं ;

(v) वे व्यक्ति जिन के द्वारा विधि का उल्लंघन करने वाला कोई किशोर बोर्ड के समक्ष पेश किया जा सकेगा और ऐसे किशोर को धारा 10 की उपधारा (2) के अधीन किसी संप्रेक्षणगृह में भेजने की रीति ;

(vi) धारा 19 के अधीन किशोर की दोषसिद्धि से लगी हुई उसकी निरर्हता को हटाने से संबंधित विषय ;

(vii) अध्यक्ष और सदस्यों की अर्हताएं तथा पदावधि जिसके लिए उन्हें धारा 29 की उपधारा (3) के अधीन नियुक्त किया जा सकेगा ;

(viii) समिति के अधिवेशनों का समय और धारा 30 की उपधारा (1) के अधीन इसके अधिवेशनों में कारबार के संव्यवहार की बाबत प्रक्रिया के नियम ;

(ix) पुलिस को और समिति को रिपोर्ट करने की रीति तथा बालक को, धारा 32 की उपधारा (2) के अधीन जांच के लंबित रहते बालगृहों को भेजने और सौंपने की रीति ;

(x) बालगृहों का प्रबंध जिसके अंतर्गत उनके द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं के मानक और उनकी प्रकृति और वह रीति जिसमें बालगृह का प्रमाणपत्र, या किसी स्वैच्छिक संगठन को मान्यता, धारा 34 की उपधारा (2) के अधीन अनुदत्त की जा सकेगी या वापस ली जा सकेगी ;

(xi) बालगृहों के लिए निरीक्षण समितियों की नियुक्ति, उनकी अवधि और वे प्रयोजन जिनके लिए निरीक्षण समितियां नियुक्त की जा सकेंगी तथा ऐसे अन्य विषय जो धारा 35 में निर्दिष्ट हैं ;

(xii) धारा 37 की उपधारा (3) के अधीन आश्रयगृहों द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली सुविधाएं ;

(xiii) धारा 42 की उपधारा (3) के अधीन बालकों के पोषण देखरेख कार्यक्रम की स्कीम को कार्यान्वित करना ;

(xiv) धारा 43 की उपधारा (2) के अधीन बालकों के प्रयोजन

की विभिन्न स्कीमों को कार्यान्वित करना ;

(xv) धारा 44 के अधीन पश्चात्वर्ती देखरेख संगठन से संबंधित विषय ;

(xvi) धारा 45 के अधीन बालक के पुनर्वास और समाज में पुनः मिलाने के लिए विभिन्न अभिकरणों के बीच प्रभावी संबंध सुनिश्चित करना ;

(xvii) वे प्रयोजन और रीति जिनमें निधि को, धारा 61 की उपधारा (3) के अधीन प्रशासित किया जाएगा ;

(xviii) कोई अन्य विषय जो विहित किए जाने के लिए अपेक्षित है या किया जाए ।

(3) राज्य सरकार द्वारा इस अधिनियम के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र उस राज्य के विधान मंडल के समक्ष रखा जाएगा ।

69. निरसन और व्यावृत्ति – (1) किशोर न्याय अधिनियम, 1986 (1986 का 53) इसके द्वारा निरसित किया जाता है ।

(2) ऐसे निरसन के होते हुए भी, उक्त अधिनियम के अधीन की गई कोई बात या कार्रवाई इस अधिनियम के तत्स्थानी उपबंधों के अधीन की गई समझी जाएगी ।

70. कठिनाइयों को दूर करने की शक्ति – (1) यदि इस अधिनियम के उपबंधों को प्रभावी करने में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है तो केन्द्रीय सरकार, ऐसे आदेश द्वारा, जो इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत न हो, उस कठिनाई को दूर कर सकेगी :

परन्तु ऐसा कोई आदेश इस अधिनियम के प्रारंभ से दो वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् नहीं किया जाएगा ।

(2) तथापि, इस धारा के अधीन किया गया कोई आदेश किए जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाएगा ।

किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) संशोधन अधिनियम, 2006

(2006 का अधिनियम संख्यांक 33)

[22 अगस्त, 2006]

किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 का संशोधन करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के सतावनवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

1. संक्षिप्त नाम – इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) संशोधन अधिनियम, 2006 है ।

2. बृहत् नाम का संशोधन – किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 (2000 का 56) (जिसे इसमें इसके पश्चात् मूल अधिनियम कहा गया है), के बृहत् नाम में, "इस अधिनियमिति के अधीन स्थापित विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से उनके अंतिम पुनर्वास के लिए समेकन और संशोधन करने के लिए अधिनियम" शब्दों के स्थान पर, "उनके अंतिम पुनर्वास के लिए समेकन और उससे संबंधित या उसके आनुषंगिक विषयों का संशोधन करने के लिए अधिनियम" शब्द रखे जाएंगे ।

3. धारा 1 का संशोधन – मूल अधिनियम की धारा 1 में, –

(i) पार्श्व शीर्ष में, "और प्रारंभ" शब्दों के स्थान पर, "प्रारंभ और लागू होना" शब्द रखे जाएंगे ;

(ii) उपधारा (3) के पश्चात्, निम्नलिखित उपधारा अंतःस्थापित की जाएगी, अर्थात् :–

> "(4) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम के उपबंध, ऐसे सभी मामलों को लागू होंगे जिनमें ऐसी अन्य विधि के अधीन विधि का उल्लंघन करने वाले किशोरों का निरोध, अभियोजन, शास्ति या कारावास का दंडादेश अंतर्वलित है ।"।

4. धारा 2 का संशोधन – मूल अधिनियम की धारा 2 में, –

(i) खंड (क) के पश्चात्, निम्नलिखित खंड अंतःस्थापित किया जाएगा, अर्थात् :–

'(कक) "दत्तक ग्रहण" से वह प्रक्रिया अभिप्रेत है जिसके द्वारा दत्तक बालक अपने जैविक माता-पिता से स्थायी रूप से अलग कर दिया जाता है और अपने दत्तक माता-पिता का उन सभी अधिकारों, विशेषाधिकारों और दायित्वों के साथ जो उस नातेदारी के साथ संलग्न हैं, धर्मज संतान बन जाता है ;' ;

(ii) खंड (घ) में, –

(I) उपखंड (i) के पश्चात्, निम्नलिखित उपखंड अंतःस्थापित किया जाएगा, अर्थात् :–

"(iक) जो भीख मांगते हुए पाया जाता है, या जो आवारा बालक है या श्रमजीवी बालक है ;";

(II) उपखंड (v) में "परित्याग" शब्द के पश्चात् "या अभ्यर्पण" शब्द अंतःस्थापित किए जाएंगे ;

(iii) खंड (ज) में, "सक्षम प्राधिकारी द्वारा" शब्दों के स्थान पर, "सक्षम प्राधिकारी की सिफारिश पर राज्य सरकार द्वारा" शब्द रखे जाएंगे ;

(iv) खंड (ठ) के स्थान पर, निम्नलिखित खंड रखा जाएगा, अर्थात् :–

'(ठ) "विधि का उल्लंघन करने वाला किशोर" से ऐसा एक किशोर अभिप्रेत है जिसके बारे में यह अभिकथन है कि उसने कोई अपराध किया है और ऐसा अपराध करने की तारीख को उसने अठारह वर्ष की आयु पूरी नहीं की है ;';

(v) खंड (ड) का लोप किया जाएगा ।

5. कतिपय पदों का लोप – मूल अधिनियम में, "स्थानीय प्राधिकारी" और "या स्थानीय प्राधिकारी" शब्दों का, जहां-जहां वे आते हैं, लोप किया जाएगा ।

6. धारा 4 का संशोधन – मूल अधिनियम की धारा 4 की उपधारा

(1) में "राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, उस अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किसी जिले या जिलों के समूह के लिए" शब्दों के स्थान पर "किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) संशोधन अधिनियम, 2006 के प्रारंभ की तारीख से एक वर्ष की अवधि के भीतर राजपत्र में अधिसूचना द्वारा प्रत्येक जिले के लिए" शब्द, कोष्ठक और अंक रखे जाएंगे ।

7. धारा 6 का संशोधन – मूल अधिनियम की धारा 6 की उपधारा (1) में "या जिलों के समूह" शब्दों का लोप किया जाएगा ।

8. नई धारा 7क का अंतःस्थापन – मूल अधिनियम की धारा 7 के पश्चात् निम्नलिखित धारा अंतःस्थापित की जाएगी, अर्थात् :–

"**7क. – किसी न्यायालय के समक्ष किशोरावस्था का दावा किए जाने पर अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया** – (1) जब कभी किसी न्यायालय के समक्ष किशोरावस्था का कोई दावा किया जाता है या न्यायालय की यह राय है कि अभियुक्त व्यक्ति अपराध कारित होने की तारीख को किशोर था तब न्यायालय ऐसे व्यक्ति की आयु का अवधारण करने के लिए जांच करेगा, ऐसा साक्ष्य लेगा जो आवश्यक हो (किन्तु शपथ-पत्र पर नहीं) और इस बारे में उसकी निकटतम आयु का कथन करते हुए निष्कर्ष अभिलिखित करेगा कि वह व्यक्ति किशोर या बालक है अथवा नहीं :

परंतु किशोरावस्था का दावा किसी न्यायालय के समक्ष किया जा सकेगा और उसे किसी भी प्रक्रम पर, यहां तक कि मामले के अंतिम निपटान के पश्चात् भी, मान्यता दी जाएगी और ऐसे दावे का इस अधिनियम में और उसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों के अनुसार अवधारण किया जाएगा, भले ही उसकी किशोरावस्था इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख को या उससे पहले समाप्त हो गई हो ।

(2) यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि कोई व्यक्ति उपधारा (1) के अधीन अपराध कारित करने की तारीख को किशोर था, तो वह उस किशोर को समुचित आदेश पारित किए जाने के लिए बोर्ड को भेजेगा, और यदि न्यायालय द्वारा कोई दंडादेश पारित किया गया है तो यह समझा जाएगा कि उसका कोई प्रभाव नहीं है ।" ।

9. धारा 10 का संशोधन – मूल अधिनियम की धारा 10 की उपधारा

(1) के स्थान पर निम्नलिखित उपधारा रखी जाएगी, अर्थात् :–

"(1) जैसे ही विधि का उल्लंघन करने वाला कोई किशोर पुलिस द्वारा गिरफ्तार किया जाता है तभी वह विशेष किशोर पुलिस बल एकक या अभिहित पुलिस अधिकारी के प्रभार के अधीन रखा जाएगा जो किशोर को समय नष्ट किए बिना चौबीस घंटे के भीतर किशोर की गिरफ्तारी के स्थान से यात्रा में लिए गए आवश्यक समय को छोड़कर बोर्ड के समक्ष प्रस्तुत करेगा :

परंतु किसी भी दशा में, विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर को पुलिस हवालात या जेल में नहीं रखा जाएगा ।"।

10. धारा 12 का संशोधन – मूल अधिनियम की धारा 12 की उपधारा (1) में, "प्रतिभू सहित या रहित जमानत पर छोड़ दिया जाएगा," शब्दों के पश्चात् "या किसी परिवीक्षा अधिकारी के पर्यवेक्षण के अधीन या किसी उपयुक्त संस्था या किसी उपयुक्त व्यक्ति की देखरेख के अधीन रखा जाएगा" शब्द अंतःस्थापित किए जाएंगे ।

11. धारा 14 का संशोधन – मूल अधिनियम की धारा 14 को उसकी उपधारा (1) के रूप में पुनर्संख्यांकित किया जाएगा और इस प्रकार पुनर्संख्यांकित उपधारा (1) के पश्चात्, निम्नलिखित उपधारा अंतःस्थापित की जाएगी, अर्थात् :–

"(2) मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट प्रत्येक छह मास पर बोर्ड के समक्ष लंबित मामलों का पुनर्विलोकन करेगा और बोर्ड को अपनी बैठकों की आवृत्ति बढ़ाने का निदेश देगा या अतिरिक्त बोर्डों का गठन करा सकेगा ।" ।

12. धारा 15 का संशोधन – मूल अधिनियम की धारा 15 की उपधारा (1) के खंड (छ) के स्थान पर निम्नलिखित खंड रखा जाएगा, अर्थात् :–

"(छ) किशोर को तीन वर्ष की अवधि के लिए विशेष गृह में भेजने के लिए निदेश देने वाला आदेश कर सकेगा :

परंतु यदि बोर्ड का यह समाधान हो जाता है कि अपराध की प्रकृति और मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उन कारणों से, जो लेखबद्ध किए जाएं, ऐसा करना समीचीन है, तो बोर्ड

रोक आदेश की अवधि को ऐसी अवधि तक घटा सकेगा जो वह ठीक समझे ।" ।

13. धारा 16 का संशोधन – मूल अधिनियम की धारा 16 में, –

(i) उपधारा (1) में, "या आजीवन कारावास का" शब्दों के स्थान पर, "या ऐसे किसी कारावास का जिसकी अवधि आजीवन कारावास तक की हो सकेगी," शब्द रखे जाएंगे ;

(ii) उपधारा (2) के परंतुक के स्थान पर, निम्नलिखित परंतुक रखा जाएगा, अर्थात् :–

"परंतु इस प्रकार आदिष्ट निरोध की कालावधि किसी भी दशा में इस अधिनियम की धारा 15 के अधीन उपबंधित की गई अधिकतम कालावधि से अधिक नहीं होगी ।" ।

14. धारा 20 का संशोधन – मूल अधिनियम की धारा 20 में निम्नलिखित परंतुक और स्पष्टीकरण अंतःस्थापित किए जाएंगे, अर्थात् :–

"परंतु बोर्ड किसी ऐसे उपयुक्त और विशेष कारण से जो आदेश में वर्णित किया जाए, मामले का पुनर्विलोकन कर सकेगा और ऐसे किशोर के हित में उपयुक्त आदेश पारित कर सकेगा ।

स्पष्टीकरण – किसी न्यायालय में विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर से संबंधित सभी लंबित मामलों में जिनके अंतर्गत विचारण, पुनरीक्षण, अपील या कोई अन्य दांडिक कार्यवाहियां भी हैं, ऐसे किशोर की किशोरावस्था का अवधारण धारा 2 के खंड (ठ) के निबन्धनानुसार किया जाएगा भले ही किशोर इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख को या उससे पहले किशोर न रहा हो और इस अधिनियम के उपबंध ऐसे लागू होंगे मानो उक्त उपबंध सभी प्रयोजनों के लिए और सभी तात्विक समयों पर प्रवर्तन में थे जब ऐसा अभिकथित अपराध किया गया था ।" ।

15. धारा 21 के स्थान पर नई धारा का प्रतिस्थापन – मूल अधिनियम की धारा 21 के स्थान पर निम्नलिखित धारा रखी जाएगी, अर्थात् :–

"21. **इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही में अंतर्वलित विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर या देखरेख और संरक्षण की आवश्यकता वाले बालक के नाम आदि के प्रकाशन का प्रतिषेध** –

(1) किसी समाचारपत्र, पत्रिका या समाचार पृष्ठ या दृश्य माध्यम में इस अधिनियम के अधीन विधि का उल्लंघन करने वाले किशोर या देखरेख और संरक्षण की आवश्यकता वाले बालक के बारे में किसी जांच की कोई रिपोर्ट किशोर या बालक का नाम, पता या विद्यालय या कोई अन्य विशिष्टियां जिनसे किशोर या बालक का पहचाना जाना प्रकल्पित हो, प्रकट नहीं की जाएगी और न ही ऐसे किशोर या बालक का कोई चित्र ही प्रकाशित किया जाएगा :

परंतु जांच करने वाला प्राधिकारी ऐसा प्रकटन ऐसे कारणों से जो लेखबद्ध किए जाएंगे तब अनुज्ञात कर सकेगा जब उसकी राय में ऐसा प्रकटन किशोर या बालक के हित में हो ।

(2) उपधारा (1) के उपबंधों का उल्लंघन करने वाला कोई व्यक्ति ऐसी शास्ति के लिए दायी होगा, जो पच्चीस हजार रुपए तक की हो सकेगी ।" ।

16. धारा 29 का संशोधन – मूल अधिनियम की धारा 29 की उपधारा (1) में, "राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, अधिसूचना में विनिर्दिष्ट प्रत्येक जिले या जिलों के समूह के लिए" शब्दों के स्थान पर "किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) संशोधन अधिनियम, 2006 के प्रारंभ की तारीख से एक वर्ष की अवधि के भीतर राजपत्र में अधिसूचना द्वारा प्रत्येक जिले के लिए" शब्द, कोष्ठक और अंक रखे जाएंगे ।

17. धारा 32 का संशोधन – मूल अधिनियम की धारा 32 में, –

(क) उपधारा (1) में, –

(i) खंड (iv) में, "राज्य सरकार द्वारा प्राधिकृत" शब्दों का लोप किया जाएगा ;

(ii) निम्नलिखित परंतुक अंत में, अंतःस्थापित किया जाएगा, अर्थात् :–

"परंतु बालक को समय नष्ट किए बिना चौबीस घंटे की अवधि के भीतर यात्रा में लिए गए आवश्यक समय को छोड़कर समिति के समक्ष पेश किया जाएगा ।";

(ख) उपधारा (2) में "पुलिस को और" शब्दों का लोप किया जाएगा ।

18. धारा 33 का संशोधन – मूल अधिनियम की धारा 33 में, –

(क) उपधारा (1) में, "या कोई पुलिस अधिकारी या विशेष किशोर पुलिस एकक या अभिहित पुलिस अधिकारी" शब्दों का लोप किया जाएगा ;

(ख) उपधारा (3) के स्थान पर निम्नलिखित उपधाराएं रखी जाएंगी, अर्थात् :–

"(3) राज्य सरकार, प्रत्येक छह मास में समिति के समक्ष लंबित मामलों का पुनर्विलोकन करेगी और समिति को अपनी बैठकों की आवृत्ति को बढ़ाने के लिए निदेश देगी या अतिरिक्त समितियों का गठन करा सकेगी ।

(4) जांच के पूरा हो जाने के पश्चात् यदि समिति की यह राय है कि उक्त बालक का कोई कुटुम्ब या उसका कोई दृश्यमान सहारा नहीं है या उसे देखरेख या संरक्षण की लगातार आवश्यकता है, तो वह बालक को तब तक बालगृह या आश्रयगृह में रहने की अनुज्ञा दे सकेगी जब तक उसका उपयुक्त पुनर्वास नहीं हो जाता या जब तक वह अठारह वर्ष की आयु प्राप्त नहीं कर लेता है ।" ।

19. धारा 34 का संशोधन – मूल अधिनियम की धारा 34 की उपधारा (2) के पश्चात्, निम्नलिखित उपधारा अंतःस्थापित की जाएगी, अर्थात् :–

"(3) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट किसी बात पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, सभी संस्थाएं, चाहे वे राज्य सरकार द्वारा या स्वैच्छिक संगठनों द्वारा देखरेख और संरक्षण की आवश्यकता वाले बालकों के लिए चलाई जाती हैं, किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) संशोधन अधिनियम, 2006 के प्रारंभ की तारीख से छह मास की अवधि के भीतर इस अधिनियम के अधीन, ऐसी रीति में, जो विहित की जाए, रजिस्ट्रीकृत की जाएंगी ।" ।

20. धारा 39 का संशोधन – मूल अधिनियम की धारा 39 के स्पष्टीकरण के स्थान पर, निम्नलिखित स्पष्टीकरण रखा जाएगा, अर्थात् :–

'**स्पष्टीकरण** – इस धारा के प्रयोजनों के लिए "बालक का प्रत्यावर्तन और संरक्षण" से, –

(क) माता-पिता ;

(ख) दत्तक माता-पिता ;

(ग) पोषक माता-पिता ;

(घ) संरक्षक ;

(ङ) उपयुक्त व्यक्ति ;

(च) उपयुक्त संस्था,

को प्रत्यावर्तन अभिप्रेत हैं ।' ।

21. धारा 41 का संशोधन – मूल अधिनियम की धारा 41 में, –

(i) उपधारा (2), उपधारा (3) और उपधारा (4) के स्थान पर, निम्नलिखित उपधाराएं रखी जाएंगी, अर्थात् :–

"(2) ऐसे बालकों के पुनर्वास के लिए, जो अनाथ, परित्यक्त या अभ्यर्पित हैं, ऐसे तंत्र के माध्यम से, जो विहित किया जाए, दत्तक ग्रहण का सहारा लिया जाएगा ।

(3) राज्य सरकार या केन्द्रीय दत्तक ग्रहण संसाधन अभिकरण द्वारा समय-समय पर जारी किए गए और केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिसूचित दत्तक ग्रहण के लिए विभिन्न मार्गदर्शक सिद्धांतों के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए, किसी न्यायालय द्वारा बालकों को, ऐसे बालकों को दत्तक में देने के लिए यथाअपेक्षित किए गए अन्वेषणों के संबंध में अपना समाधान हो जाने के पश्चात्, दत्तक गृह में दिया जा सकेगा ।

(4) राज्य सरकार, प्रत्येक जिले में अपनी एक या अधिक संस्थाओं अथवा स्वैच्छिक संगठनों को, विशेषज्ञ दत्तक ग्रहण अभिकरणों के रूप में, ऐसी रीति में जो उपधारा (3) के अधीन अधिसूचित मार्गदर्शक सिद्धांतों के अनुसार दत्तक ग्रहण के लिए अनाथ, परित्यक्त या अभ्यर्पित बालकों के नियोजन के लिए विहित की जाए, मान्यता देगी :

परंतु देखरेख और संरक्षण की आवश्यकता वाले बालकों के लिए, जो अनाथ, परित्यक्त या अभ्यर्पित हैं, राज्य सरकार या किसी स्वैच्छिक संगठन द्वारा चलाए जाने वाले बाल गृह और

संस्थाएं यह सुनिश्चित करेंगी कि ये बालक समिति द्वारा दत्तक ग्रहण के लिए उपलब्ध घोषित किए गए हैं और सभी ऐसे मामले, उस जिले में दत्तक ग्रहण अभिकरण को, उपधारा (3) के अधीन अधिसूचित मार्गदर्शक सिद्धांतों के अनुसार दत्तक ग्रहण में ऐसे बालकों के नियोजन के लिए निर्दिष्ट किए जाएंगे ।" ;

(ii) उपधारा (6) के स्थान पर निम्नलिखित उपधारा रखी जाएगी, अर्थात् :–

"(6) न्यायालय बालक को दत्तक ग्रहण में, –

(क) किसी व्यक्ति को उसकी वैवाहिक स्थिति को विचार में लाए बिना ; या

(ख) जीवित स्वयं से उत्पन्न (जैविक) पुत्रों या पुत्रियों की संख्या को विचार में लाए बिना समान लिंग के बालक को दत्तक ग्रहण के लिए माता-पिता को ; या

(ग) निःसंतान दंपत्ति को,

दिए जाने के लिए अनुज्ञात कर सकेगा ।" ।

22. धारा 57 के स्थान पर नई धारा का प्रतिस्थापन – मूल अधिनियम की धारा 57 के स्थान पर निम्नलिखित धारा रखी जाएगी, अर्थात् :–

"**57. अधिनियम के अधीन बालगृहों और भारत के विभिन्न भागों में ऐसी ही प्रकृति के बालगृहों के मध्य अंतरण** – राज्य सरकार, यह निदेश दे सकेगी कि कोई बालक या किशोर राज्य के भीतर किसी बालगृह या विशेषगृह से राज्य से बाहर किसी अन्य बालगृह, विशेषगृह या ऐसी ही प्रकृति की संस्था या ऐसी संस्थाओं को संबद्ध राज्य सरकार के परामर्श से, यथास्थिति, समिति या बोर्ड की पूर्व सूचना से अंतरित किया जाए और ऐसा आदेश उस क्षेत्र के समक्ष प्राधिकारी के लिए जहां बालक या किशोर को भेजा जाता है प्रवर्तन में माना जाएगा ।" ।

23. धारा 59 का संशोधन – मूल अधिनियम की धारा 59 की उपधारा (2) में, "अधिकतम सात दिन के लिए" शब्दों के स्थान पर "ऐसी अवधि के लिए जो साधारणतया सात दिन से अधिक न हो," शब्द रखे

जाएंगे ।

24. नई धारा 62क का अंतःस्थापन – मूल अधिनियम की धारा 62 के पश्चात्, निम्नलिखित धारा अंतःस्थापित की जाएगी, अर्थात् :–

"**62क. अधिनियम के कार्यान्वयन के लिए उत्तरदायी बाल संरक्षण एकक का गठन** – प्रत्येक राज्य सरकार, इस अधिनियम के कार्यान्वयन को, जिसके अंतर्गत गृहों की स्थापना और उनका अनुरक्षण, इन बालकों के संबंध में सक्षम प्राधिकारियों की अधिसूचना और उनका पुनर्वास तथा संबद्ध विभिन्न सरकारी और गैर-सरकारी अभिकरणों से समन्वय करना भी है, सुनिश्चित करने की दृष्टि से देखरेख और संरक्षण की आवश्यकता वाले बालकों और विधि का उल्लंघन करने वाले किशोरों से संबंधित मामलों पर विचार करने के लिए राज्य के लिए बालक संरक्षण एकक और प्रत्येक जिले के लिए ऐसे एककों का गठन करेगी, जिसमें ऐसे अधिकारी और अन्य कर्मचारी होंगे, जो उस राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किए जाएं ।" ।

25. धारा 64 का संशोधन – मूल अधिनियम की धारा 64 में, –

(i) "यह निदेश दे सकेगा" शब्दों के स्थान पर, "यह निदेश देगा" शब्द रखे जाएंगे ;

(ii) निम्नलिखित परंतुक और स्पष्टीकरण अंतःस्थापित किए जाएंगे, अर्थात् :–

"परंतु, यथास्थिति, राज्य सरकार या बोर्ड किसी ऐसे पर्याप्त और विशेष कारण से जो लेखबद्ध किया जाए, ऐसे कारावास का दंडादेश भोग रहे विधि का उल्लंघन करने वाले ऐसे किशोर के मामले का जो इस अधिनियम के प्रारंभ पर या उससे पूर्व किशोर नहीं रहा है पुनर्विलोकन कर सकेगा और ऐसे किशोर के हित में समुचित आदेश पारित कर सकेगा ।

स्पष्टीकरण – ऐसे सभी मामलों में जिनमें इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख को विधि का उल्लंघन करने वाला किशोर किसी भी प्रक्रम पर कारावास का कोई दंडादेश भोग रहा है, किशोरावस्था के विवाद्यक सहित उसका मामला इस अधिनियम की धारा 2 के खंड (ठ) में अंतर्विष्ट निबंधनों और उसके अधीन बनाए गए नियमों के अन्य उपबंधों के अनुसार इस तथ्य के होते

हुए भी कि वह ऐसी तारीख को या उससे पूर्व किशोर नहीं रहा है विनिश्चित किया गया माना जाएगा और तद्नुसार वह दंडादेश की शेष अवधि के लिए, यथास्थिति, विशेषगृह या उपयुक्त संस्था में भेजा जाएगा किन्तु ऐसा दंडादेश किसी भी दशा में इस अधिनियम की धारा 15 में उपबंधित अधिकतम अवधि से अधिक का नहीं होगा ।" ।

26. धारा 68 का संशोधन – मूल अधिनियम की धारा 68 में, –

(क) उपधारा (1) में निम्नलिखित परंतुक अंतःस्थापित किया जाएगा, अर्थात् :–

"परंतु केन्द्रीय सरकार, उन सभी या किन्हीं विषयों के संबंध में जिनकी बाबत राज्य सरकार, इस धारा के अधीन नियम बना सकेगी, आदर्श नियम बना सकेगी और जहां ऐसे किसी विषय के संबंध में ऐसे आदर्श नियम बनाए गए हैं, वहां वे राज्य को लागू होंगे जब तक कि उस विषय के संबंध में राज्य सरकार द्वारा नियम नहीं बना दिए जाते और कोई ऐसे नियम बनाए जाते समय जहां तक व्यवहार्य हो वे ऐसे आदर्श नियम के अनुरूप होंगे ।";

(ख) उपधारा (2) में, –

(i) खंड (x) में "ली जा सकेगी" शब्दों के पश्चात्, निम्नलिखित शब्द, कोष्ठक और अंक अंतःस्थापित किए जाएंगे, अर्थात् :–

"और उपधारा (3) के अधीन संस्थाओं के रजिस्ट्रीकरण की रीति";

(ii) खंड (xii) के पश्चात्, निम्नलिखित खंड अंतःस्थापित किया जाएगा, अर्थात् :–

"(xiiक) धारा 41 की उपधारा (2) के अधीन दत्तक ग्रहण में पुनर्वास तंत्र का प्रत्यावर्तित किया जाना उपधारा (3) के अधीन मार्गदर्शक सिद्धांतों की अधिसूचना और उपधारा (4) के अधीन विशेषज्ञ दत्तक ग्रहण अभिकरणों को मान्यता की रीति ।";

(ग) उपधारा (3) को उसकी उपधारा (4) के रूप में पुनःसंख्यांकित किया जाएगा और इस प्रकार पुनःसंख्यांकित उपधारा (4) से पहले निम्नलिखित उपधारा अंतःस्थापित की जाएगी, अर्थात् :–

"(3) इस अधिनियम के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् यह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा । किन्तु नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।"।